भारतीय साहित्य

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ का मुखपत्र)

अप्रैल १९५७
[वर्ष–२ : अंक–२]

सम्पादक
डा० विश्वनाथ प्रसाद
अध्यक्ष
आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ

मुद्रक
एच० के० कपूर, आगरा यूनीवर्सिटी प्रेस, आगरा
प्रकाशक
डा० विश्वनाथ प्रसाद,
अध्यक्ष, आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, आगरा

[प्रकाशन-तिथि, सितम्बर १९५७]

विषय-सूची

भारतीय साहित्य

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ का मुख पत्र)

वर्ष २] अप्रैल १९५७ [अंक २

विद्यापीठ-समाचार

शुक्रवार वैशाख २७, शक सं० १८७९, ता० १७ मई १९५७ को सायंकाल ५।। बजे हमारे माननीय कुलपति श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के द्वारा विद्यापीठ के भवन का उद्घाटन बड़ी उमंग और उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। प्रारम्भ में विद्यापीठ के प्राध्यापक श्री रमेशचन्द्र दुबे ने सरस्वती-वन्दना की। अनन्तर, विद्यापीठ के संचालक डा० विश्वनाथप्रसाद ने कुलपति महोदय से भवन का उद्घाटन करने के लिए निवेदन करते हुए कहा,—"इस भवन के रूप में मुंशीजी की ही एक विराट् भावना साकार खड़ी है।" उन्होंने आशा प्रकट की कि मुन्शीजी की उस मंगलमयी भावना का प्रतीक यह विद्या-भवन 'विभिन्न भाषाओं और साहित्यों के सम्मिलित अध्ययन और संगम के द्वारा यहाँ सबके लिए एक नीड़ के रूप में परिणत होकर सारे देश में ज्ञान की अभिनव ज्योति का विकास करता रहेगा।'

भवन के उद्घाटन के उपरान्त कुलपति महोदय ने भवन का निरीक्षण किया और वहाँ पर संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों, विभिन्न यन्त्रों तथा विद्यापीठ के प्रकाशनों को रुचिपूर्वक देखा।

मुन्शीजी के सम्मानार्थ इस अवसर पर जलपान का भी प्रबन्ध किया गया था। इस अवसर पर उपकुलपति श्री भटनागर जी ने मुन्शीजी का अभिनन्दन करते हुए कहा,—"हम आपके अनुगृहीत हैं, आपने कार्यकारिणी के इस प्रस्ताव को कि हिन्दी विद्यापीठ का नाम 'कन्हैयालाल मुंशी इन्स्टिच्यूट अफ़् 'हिन्दी स्टडिज्' कर दिया जाय, स्वीकार करने की कृपा की है।" उपकुलपति महोदय ने कहा कि मुंशी जी अपने कार्य-काल में हमारे मित्र और मार्गदर्शक रहे हैं। विद्यापीठ की स्थापना उन्हीं की मूल प्रेरणा का फल है। उसकी भावी उन्नति के लिए भी उनके सत्परामर्श की महती आवश्यकता सदा बनी रहेगी।

इसके बाद संचालक महोदय ने अपने भाषण में कहा,—"राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसके साहित्य के संबंध में आपकी जो व्यापक समन्वय-भावना है, उसी के फलस्वरूप

इस विद्यापीठ की स्थापना हुई है । आपके संरक्षण में हम अब तक अपने इस लक्ष्य की ओर उत्साह के साथ बढ़ते गये हैं ।"

इसके उपरान्त, अध्ययन-अध्यापन, हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, अनुसन्धान, प्रकाशन आदि विद्यापीठ के विभिन्न कार्यों की प्रगति का विवरण देते हुए इन क्षेत्रों में विद्यापीठ के महत्वपूर्ण प्रयत्नों का उल्लेख उन्होंने किया । उन्होंने कहा,—"हमारे उपकुलपति श्री कालकाप्रसाद भटनागर हमारे इन सभी प्रयत्नों में अधिकाधिक बल भरते रहे हैं ।

रजिस्ट्रार महोदय ने अपने संक्षिप्त भाषण में बताया कि उत्तरप्रदेश के विश्वविद्यालयों के इतिहास में मुंशी जी के योगदान का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जायगा ।

अन्त में श्री मुंशी जी ने अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए कहा कि आज आप लोगों से मिलते हुए मुझे आनन्द भी हो रहा है और खेद भी । पिछले पाँच वर्षों से विश्वविद्यालय के साथ मेरा अत्यन्त स्नेहपूर्ण सम्बन्ध रहा है । यहाँ मुझे उपकुलपतियों, विद्यार्थियों, मन्त्रियों—सभी से स्नेह मिला । ऐसी भूमि से जाने के समय दुःख होता ही है । उन्होंने इस बात पर सन्तोष व्यक्त किया कि कटु आलोचनाएँ होने पर भी उनके प्रयासों से उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालय आज बहुत कुछ आगे बढ़े हैं । आगरा विश्वविद्यालय में अध्यापन का समारम्भ हो गया है । यहाँ दो इंस्टिच्यूटों की स्थापना बहुत महत्वपूर्ण कार्य है । हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना का महत्त्व इस बात से और बढ़ जाता है कि वह ब्रजभाषा के क्षेत्र में अवस्थित हुआ है । जैसा कि संचालक महोदय ने बहुत नम्रतापूर्वक कहा है, यह विद्यापीठ सारे देश में अपने ढंग का अकेला ही है । मुझे इस बात का गर्व रहेगा कि हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना मे मूल प्रेरणा मेरी थी । मुझे आशा है कि विद्यापीठ साहित्य, विज्ञान, दर्शन, राजनीति आदि ज्ञान के सभी क्षेत्रों में नया और मौलिक साहित्य हिन्दी में लाने की चेष्टा करेगा । जैसा कि संचालक महोदय ने कहा, मैं चाहता हूँ कि यह विद्यापीठ हिन्दी में सारे संसार की श्रेष्ठतम कृतियों का संकलन उपलब्ध करे । उन्होंने कहा कि विद्यापीठ ने इतने अल्पकाल में जितना शोध-कार्य प्रस्तुत किया है, वह विश्वविद्यालय के लिए गर्व की बात है । उन्होंने आशा प्रकट की कि विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में हमारे जो मित्र यहाँ रहेंगे, वे विश्वविद्यालय के कार्य को प्रगति देते रहेंगे, तथा संचालक और उपकुलपति विद्यापीठ के कार्यों को आगे बढ़ाते रहेंगे । मुझे इसकी प्रगति से संतोष होगा ।

इस समारोह का पूर्ण विवरण भारतीय साहित्य के 'मुन्शी अभिनन्दन अंक' में प्रकाशित होगा ।

[र० च० दु०]

श्री चन्द्रकान्त

तमिल के संघकालीन साहित्य में भक्ति के विभिन्न रूप

तमिल का भक्ति साहित्य इतना विशाल है कि उसे काल की सीमा में निर्धारित करना कदाचित् सम्भव नहीं है। तथापि श्री पूर्णलिंग पिल्लै और श्री सुब्रमण्य पिल्लै आदि विद्वानों ने तमिल साहित्य को विभिन्न कालों में विभाजित किया है। अध्ययन की सुविधा के लिये तमिल साहित्य को निम्नलिखित विभागों मे विभाजित करना समुचित होगा। (१) संघपूर्व काल, (२) संघकाल, (३) संघोत्तर काल, (४) भक्ति काल, (५) कंबनकाल या प्रबन्ध काव्य काल, (६) मध्यकाल और (७) आधुनिक काल।

इन विभिन्न कालों में विभाजित तमिल साहित्य के अनुसंधान से पूर्व इस साहित्य से सम्बन्धित तमिल भाषा, तमिल शब्द का अर्थ, तमिल लिपि, तमिल भाषा की प्राचीनता, तमिल प्रदेश, तमिल-जनता, तमिल साहित्य का स्वरूप और इस साहित्य के संरक्षण और संवर्धन करने वाले विख्यात तीन कवि संघों के सम्बन्ध में यत्किञ्चित् परिचय कर लेना अनावश्यक न होगा।

विशाल भारतवर्ष की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं को भाषा विज्ञान के आधार पर भाषा वैज्ञानिकों ने दो भाषा परिवारों में विभाजित किया है। विन्ध्य पर्वत के उत्तर की ओर फैली समस्त भाषाऐं (ब्राहुई को छोड़कर) आर्य भाषा परिवार की तथा विन्ध्य के दक्षिण की ओर फैली भाषा (मराठी कोंकणी के सिवा) द्रविड भाषा परिवार की कही जाती हैं। आर्य भाषा परिवार के अन्तर्गत हिन्दी, बंगाली, गुजराती, मराठी, असामी, उड़िया एवं पंजाबी आदि भाषाऐं गिनी जाती हैं। इन भाषाओं की मूल भाषा या आदि स्रोत संस्कृत है। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम्, तुलु आदि भाषाऐं द्रविड भाषा परिवार के अन्तर्गत हैं। तमिल के अतिरिक्त तेलुगु, कन्नड और मलयालम् का साहित्य संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित है। दक्षिण की भाषाओं में तमिल ही सर्वाधिक प्राचीन समझी जाती है। पुरातन द्रविड़ संस्कृति का परिचय पाने के लिये तमिल भाषा में उपलब्ध संघकालीन साहित्य, शिलालेख और ताम्रपत्र ही एक मात्र साधन हैं।

भारतीय संस्कृति को समग्र रूप से जानने के लिये तमिल और संस्कृत भाषा के साहित्य का सांगोपांग अध्ययन तथा अनुशीलन अत्यावश्यक है। ये दोनों भाषाएँ भारत माता के दो नेत्रों के सदृश हैं। दक्षिण और उत्तर की ये दोनों भाषाएँ कई सहस्राब्दियों से ज्ञान-वारिधि का केन्द्र बनी हुई हैं।

तमिल भाषा के सौन्दर्य से आकृष्ट एक कवि के हृदय से जो उद्‌गार निकला है उसका भावानुवाद इस प्रकार है:—

तमिल भाषा मधु से भी अधिक मधुर है और नवनीत से भी अधिक कोमल है। इसका स्वाद उत्तरोत्तर आनन्दप्रद है। इसका व्याकरण वैज्ञानिक और सारगर्भित है। प्राकृतिक सुषमाओं के वर्णन से युक्त, तमिल साहित्य रूपी उपवन के कुसुमित सुमनों का परिमल, समस्त संसार में फैला हुआ है। अनन्त गुणों से युक्त तमिल साहित्य के अध्ययन और मनन से अनिर्वचनीय आनन्द की धारा पाठकों के हृदय में बहती है। सकल कलाओं की केन्द्रीभूत तमिल अपनी अनेक विशेषताओं के कारण बिना किसी अन्य भाषा की सहायता से नाना गूढ़ार्थों की अभिव्यंजना करने में समर्थ है।

संख्या तथा अक्षर की दृष्टि से तमिल सुन्दर है। गेय की दृष्टि से तमिल अतीव ललित है। समस्त विश्व की भाषाओं में तमिल पुरातन एवं साहित्य-निधि से सम्पन्न है। रमणीय, मनोमुग्धकारी एवं निष्कलंक तमिल साहित्य श्रेष्ठतर और माधुर्य से परिपूर्ण है।[१]

नाटककार श्री सुन्दरम् पिल्लै ने तमिल भाषा की गतिशीलता एवं नव यौवनता पर जो वन्दनात्मक पद्य बनाया है उसका भाव इस प्रकार है—

कारण भूत अनादि परम शक्ति से कार्यात्मक सृष्टि का सर्जन, पालन तथा संहरण होता है। चराचरात्मक कार्य सृष्टि के परिवर्तन होने पर भी कारणात्मक परम-शक्ति का जैसे नाश नहीं होता है वैसे ही द्रविड भाषा-परिवार के कारणात्मक तमिल का है। अर्थात् अन्य भाषाओं के समान उसका रूप परिवर्तन नहीं हुआ है।
तमिल ही आज भी अपने मौलिक रूप की रक्षा कर रही है।

आर्य भाषा (संस्कृत) के समान मृतावस्था को न प्राप्त करने वाली हे विकास-शीले तमिल ! तेरे नव-यौवन को देख कर हम विस्मय विमुग्ध होकर, तुम्हारा यशोगान करते हैं ।।मनोन्मणीय नान्दीपाठ ।।

तमिल भाषा

द्रविड भाषा परिवार में तमिल सर्व प्राचीन तथा समृद्ध भाषा है। संसार की प्राचीन-तम भाषाओं में तमिल प्रमुख भाषा समझी जाती है। इस भाषा की प्रथम साहित्यिक रचना कब हुई, यह कहना कठिन है। प्राप्त प्रमाणों से इतना निश्चित है कि ईसा से

---

१. देखो—कॉल्डवेल-कम्परेटिव ग्रामर ऑव ड्रेवेडियन लैंग्वेजज की भूमिका।

कई सौ वर्ष पूर्व तमिल भाषा सुसंस्कृत एवं सुव्यवस्थित थी और इस में उत्तमोत्तम रचनाएँ हो चुकी थीं। ईसवी पूर्व रचित उत्कृष्ट एवं वैज्ञानिक व्याकरण और उत्तर कालीन महाकाव्य, नीति-ग्रन्थ, भक्ति साहित्य, दार्शनिक साहित्य, संगीतशास्त्र एवं जीवनोपयोगी अन्यान्य विषयों के ग्रन्थ तमिल में विद्यमान हैं। पाणिनि के व्याकरण से भी पुराने कहे जाने वाले 'तोलगाप्पियम्' नामक तमिल व्याकरण के अध्ययन से जाना जाता है कि ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व ही तमिल भाषा का वाङ्मय सम्पन्न एवं सम्मार्जित हो चुका था और वह जीवन के लक्ष्य भूत धर्म, अर्थ और काम से सम्बन्धित समस्त भावों को व्यक्त करने में कई सहस्र वर्ष पूर्व ही समर्थ थी।

तमिल शब्द का अर्थ

तमिल भाषा के नाद-सौन्दर्य से अपरिचित लोग तमिल की उपमा कठोर पत्थरों की गड़गड़ाहट से देते हैं। किन्तु तमिल शब्द का अर्थ 'मधुर' है। तमिल के प्राचीन साहित्य में तमिल का अर्थ मधुर ही पाया जाता है। तमिल से मिलते जुलते पद 'तमु' का अर्थ सान्सिवर देश की स्वाहिली भाषा में मधुर ही है। फारसी भाषा में भी 'तमु' के सदृश पद 'दमिस' है जिसका अर्थ ज्ञान या बुद्धि है।[1] मधुर तथा ज्ञान के केन्द्र होने के कारण पुरातन तमिल जनता ने इस भाषा का साभिप्राय नाम तमिल रखा होगा।

भाषा को व्यक्त करने वाला यह तमिल पद कालान्तर में उस भाषा के बोलने वाले लोगों तथा उन लोगों के भू प्रदेश के लिए भी प्रयोग में आने लगा। साहित्य में देश और जनता के अर्थ में तमिल पद का प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है।

भाषा और साहित्य का प्रभाव मानव मन पर अवश्य पड़ता है। मधुर-शब्द और मधुरार्थ वाली तमिल भाषा-भाषी जनता का दैनंदिन व्यवहार भी मधुमय एवं सरस होने का विपुल प्रमाण संघ साहित्य में उपलब्ध है। अपने घर या देश में आने वाले अतिथियों के साथ भी तमिल जाति का व्यवहार माधुर्यपूर्ण एवं स्नेहयुक्त रहा। अतिथि-सत्कार का प्रचुर विवरण तमिल साहित्य में उपलब्ध हुआ है। सर्वोत्कृष्ट एवं सब आश्रमों के आधार भूत गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने का मुख्य प्रयोजन तमिल साहित्य के अनुसार अतिथि-धर्म का पालन करना है।

तमिल लिपि

भारतीय भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन कुछ वर्षों से होने लगा है। पाश्चात्य मनीषियों तथा एतद्देशीय विद्वानों के सतत अध्ययन और अनुसंधान के कारण यह सत्य आज सर्वविदित है कि दक्षिण की भाषाओं का उदय स्थान संस्कृत नहीं है। द्रविड भाषाओं में पाये जाने वाले संस्कृत शब्दों के प्रचुर प्रयोग को देखकर कुछ भारतीय विद्वान संस्कृत भाषा को ही समस्त भारतीय भाषाओं की जननी कहते रहे। भाषाओं के वैज्ञा-

---

१. तमिल इलक्कियम—रामसामी नायडु। पृ. २.

निक अध्ययन के कारण भाषा विषयक यह भ्रम आज दूर हो चुका है। हिन्दी तथा अंग्रेजी में प्रकाशित अनेक ग्रन्थों में अब यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि द्रविड भाषाएँ आर्यभाषाओं से सर्वथा भिन्न है। किन्तु लिपि के सम्बन्ध मे अभी तक गम्भीर अनुसंधान नहीं हो सका है। तमिल लिपि के सम्बन्ध में भाषा वैज्ञानिकों में विभिन्नमत फैले हुए हैं। कुछ विद्वान ब्राह्मी लिपि को जो देवनागरी लिपि का आधार है, तमिल लिपि की भी जननी सिद्ध करते हैं। डा० बहादुरचन्द छावडा महोदय ने "ब्राह्मी लिपि का विकास और देवनागरी की उत्पत्ति" नामक लेख में इस प्रकार लिखा है :—"मूल ब्राह्मी लिपि से ही देवनागरी, शारदा, बँगला, गुजराती, तेलुगु, तमिल आदि आधुनिक लिपियों के रूप एक क्रमिक विकास के परिणामस्वरूप विकसित हैं।"[1]

तमिल के विद्वान इस विचार से सहमत नहीं है। तमिल भाषा और संस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान न० सि० कन्दय्यापिल्लै का विचार इस प्रकार है :—

हरप्पा तथा महनजोदारो की संस्कृति आर्येतर अर्थात् द्रविड संस्कृति है। वहाँ की खुदाई में एक प्रकार के चूने के पाषाण पर मुद्रित कुछ अक्षर प्राप्त हुए हैं। सुमेरन तथा बेबिलोन आदि स्थानों में प्रचलित अक्षरों का सिंधु सभ्यता के अक्षरों से महान् सादृश्य पाया जाता है। महनजोदारो के अक्षर के सामान अक्षर तिरुनेलवेलो तथा दक्षिण हैदराबाद की समाधियों में पाये गये हैं। इन अक्षरों के तुलनात्मक अध्ययन से श्री. न. सी. कन्दय्यापिल्लै की दृढ़ धारणा है कि आर्यों के भारत आगमन से पूर्व ही तमिल जनता अक्षरों तथा लेखन-कला से परिचित थी। आर्य ऋषिगण अक्षर तथा लेखन-कला से अनभिज्ञ होने के कारण ही बहुत समय तक वेदों की रक्षा कर्णपरम्परा से करते रहे।[2] प्रसिद्ध विद्वान् राघवय्यंगार ने तमिल लिपि को स्वतन्त्र लिपि माना है। उनके कथनानुसार तमिल लिपि प्राचीन मिश्रलिपि के समान चित्रमय होती थी। कालक्रम से वही चित्रमयी लिपि वर्त्तमान रूप को प्राप्त हुई।

संघ साहित्य में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग बहुत कम है। धर्म, अर्थ और काम की व्याख्या करनेवाले तिरुक्कुरल के १३०० दोहों में केवल ५० संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। तृतीय संघ के अन्तिमकाल में उत्तरापथ के वैदिक, बौद्ध और जैन धर्मों का प्रचार दक्षिणापथ मे हुआ। इन धर्मों के प्रचार के साथ-साथ संस्कृत और पालि भाषा का प्रचार तथा प्रचलन दक्षिण मे हुआ है, उसी समय से संस्कृत और तमिल का सम्मिश्रण होने लगा है। इस सम्मिश्रण काल में संस्कृत के नादाक्षर और महाप्राणाक्षरों के यथार्थ उच्चारण तथा लेखन के लिए नागरी अक्षरों के समान 'ग्रन्थ' नामक अक्षरों तथा लिपि का प्रयोग और प्रचलन तमिल प्रदेश में हुआ। तमिल में बारह स्वर तथा अठारह व्यंजन हैं। नागरी की भाँति द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ (ख, ग, घ) अक्षर तमिल के और किसी

१. देखो—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ४६। अक १—४ सं (२००१)

२. तमिल विलक्कम पृ० २।

भी वर्ग में नहीं हैं। वर्गों के प्रथम, पञ्चम और य र ल व अक्षर नागरी में लिखे जा सकते हैं। ऴ, ळ, ऱ., ऩ ये वर्ण तमिल के विशेष वर्ण हैं जिनके सदृश वर्ण नागरी में नहीं हैं। [ऴ.] अक्षर तमिल का विशेष अक्षर है। इस का उच्चारण ऋग्वेद या मराठी के ळ के समान होता है। संस्कृत के शब्दों के उच्चारण के लिए ही ज, श, ष स, ह—इन अक्षरों का प्रयोग तमिल में किया गया है। तमिल भाषा के अक्षराभ्यास की पोथी में इन अक्षरों को आज भी उत्तरभाषाक्षर के नाम से व्यवहार किया गया है।

तमिल की प्राचीनता

तमिल का सर्व प्राचीन ग्रन्थ 'तोलगाप्पियम्' नामक व्याकरण है। इस ग्रन्थ तथा तमिल के प्रमुख काव्य शिलप्पदिकारम् आदि ग्रन्थों में अगस्त्यमुनि की चर्चा पायी जाती है। तमिल का इतिहास अगस्त्यमुनि से प्रारम्भ होता है। अगस्त्य का काल बहुत लम्बा समझा जाता है। दाक्षिणात्य कलानिधि मा. ना. अय्यर का विश्वास है कि अगस्त्यमुनि ने प्रथम और द्वितीय संघ काल में तमिल का अनुशीलन किया। तमिल साहित्य के विख्यात तीन कवि संघों के स्थितिकाल के सम्बन्ध में अलग विचार किया जायगा। बाल्मीकि रामायण-किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४७ श्लोक १९ के आधार पर यह निर्णीत है कि द्वितीय कवि संघ का काल वाल्मीकि रामायण के समकाल है। किष्किन्धा काण्ड में सीता की खोज के लिये बानरों को भेजते हुए सुग्रीव ने इस प्रकार कहा है:—

ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणि-विभूषितम्।
युक्तं कपाटं पाण्डयानां गता द्रक्ष्यथ वानराः॥

चाणक्य ने भी स्वकीय अर्थशास्त्र में पाण्डयराजा के कपाटपुर तथा वहाँ प्रचुर-मात्रा में प्राप्त मोती का उल्लेख किया है।[1] इन प्रमाणों से इतना स्पष्ट है कि द्वितीय कविसंघ का आधारभूत कपाटपुर विश्व में विख्यात था। और वह रामायण और महाभारत के समकाल नगर था।

महाभारत के द्रोण पर्व में संसप्तक-वध में सागरध्वज नाम के पाण्डय राजा का वर्णन है, जो पाण्डवों के पक्षमें कौरवों के विरुद्ध लड़ा था। इस वर्णन में कहा गया है कि कपाटपुर के ध्वस्त होने के बाद वह अपने शेष राज्य को सुदृढ़ करके उस पर शासन करता था।

तमिल मुनि अगस्त्य के सम्बन्ध में तमिल साहित्य में बहुत ही रोचक कहानी प्रचलित है। भगवान् शङ्कर के पार्वती-परिणय काल में विवाह-उत्सव को देखने के लिए विश्व के समस्त लोग हिमवान् पर्वत की ओर चल पड़े। भार से भूमि असंतुलित होकर डांवाडोल होने लगी। पृथ्वी के संतुलन को स्थिर रखने के लिए भगवान् शंङ्कर ने अगस्त्य

---

१ तमिल और उसका साहित्य पृ० १५-२ वही

को दक्षिण की ओर भेजा है। उस समय समस्त दक्षिण में तमिल भाषा ही प्रचलित थी। अगस्त्य की भाषा-अनभिज्ञता की कठिनाई को जानकर भगवान् शङ्कर ने उन्हें तमिल भाषा का उपदेश दिया। भगवान् के मुखारविन्द से उपदिष्ट तमिल भाषा का सांगोपांग अध्ययन अगस्त्य ने किया। इस भाषा की गौरव गरिमा एवं माधुर्य से प्रभावित होकर अगस्त्य मुनि ने अपने नाम से अगस्त्य व्याकरण बनाया है। (पलय तिरुविल-याडल पुराणम्)।

इस कहानी से यह सिद्ध किया गया है कि उत्तरापथ से अगस्त्य के दक्षिणापथ गमन से पूर्व ही तमिल भाषा खूब प्रचलित थी।

अगस्त्य मुनि ने तमिल भाषा का विभाग कर तदनुसार व्याकरण की रचना की। उन्होंने तमिल को (१) इयल (पाठ्य साहित्य), (२) इसै (गेय-साहित्य) और (३) नाटकम् (नाटक साहित्य) इन तीन विभागों में विभाजित किया है। पुरातन तमिलगम् में तमिल भाषा के साहित्य की धारा ने इन त्रिवेणियों में बहकर समुन्नत अवस्था को प्राप्त किया। अगस्त्य का वह महत्त्वपूर्ण व्याकरण आज उपलब्ध नहीं है। अगस्त्य के कुछ सूत्र उत्तरवर्त्ती व्याकरण के ग्रन्थ तोलगाप्पियम में मिले हैं जिन का आशय इस प्रकार है:—

"साहित्य में जो परम्पराएँ प्रचलित हैं वे ही पश्चात् कालीन व्याकरण या लक्षणों का रूप ग्रहण करती हैं। साहित्य या लक्ष्य ग्रन्थ के न होने पर व्याकरण या लक्षण ग्रन्थ बनना असम्भव है। बिना तिल के तेल निकालना सम्भव नहीं है। वैसे ही साहित्य या काव्य के बिना काव्य का लक्षण बनाना सम्भव नहीं है।"

अगस्त्य मुनि के सम्बन्ध में अनेक विवादास्पद बातें फैली हुई हैं। कुछ विद्वान इस बात को नहीं मानते कि वे उत्तरापथ से दक्षिण आये और उन्होंने तमिल भाषा का व्याकरण बनाया। इस विचार के विद्वान अगस्त्य का जन्म तमिल प्रदेश में ही मानते हैं। अगस्त्य मुनि किसी देश के हों। किन्तु इतना सब मानते हैं कि अगस्त्य नामक व्यक्ति ने तमिल का प्रथम व्याकरण बनाया।

तमिल की प्राचीनता वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड के ३० वें सर्ग के श्लोकों से भी प्रमाणित होती है। जनकतनया की खोज में हनुमानजी लंका गये। अशोकवृक्ष के बीच मशोका सीता को देखकर हनुमानजी ने अपना परिचय संस्कृत भाषा में न देकर दक्षिण की भाषा में ही दिया, इसका वहाँ उल्लेख है।

रावण सीता को पाने के विविध उपाय कर रहा था। सीता रावण के व्यवहार से व्यथित एवं शोकमग्न थी। हनुमानजी ने गुप्त रूप से इन बातों को देखा। रावण संस्कृत में ही सीता से वार्तालाप कर रहा था। रावण के चले जाने के पश्चात् यदि तुरन्त उसी संस्कृत भाषा में ही सीता से बात करने पर, वह हनुमानजी को रावण का ही अनुचर समझ सकती थी। अतः हनुमान जी ने संस्कृत में न बोलकर वहाँ की भाषा में ही

बात की[1]—यहाँ यह स्मरणीय है कि कविपुंगव वाल्मीकि ने उक्त प्रसंग में मधुरां विशेषण पद लगा कर तमिल को मधुर बताया है[2] ।।

तमिल प्रदेश

आज का तमिल प्रदेश ५० हजार वर्ग मील के विस्तार में १२ जनपदों में बँटा हुआ है। तमिल भाषा बोलनेवालों की आज की संख्या ३ करोड़ हैं। पुरातन तमिल प्रदेश आज से बहुत ज्यादा विस्तृत था। कन्याकुमारी के दक्षिण की ओर का तमिल प्रदेश ४९ भागों में विभक्त था। तमिल का वह भूभाग, अनेक नदी, पर्वत और वन सागर के गर्भ में विलीन हो गये। तोलगाप्पियम् के वाक्य के अनुसार—वडवेंगडम् तेन कुमरी आइठैत् तमिल कूरुं नल्लूलगम्—तमिल प्रदेश की उत्तर सीमा वेंकटपर्वत, (तिरुपति-पर्वत) है। पुरातन तमिल का बहुत बड़ा भाग सागरान्तर्गत हो चुका है। विलुप्त भूप्रदेश के नगर, राज्य, पर्वत, नदी तथा वनों का विवरण शिलप्पदिकारम्, पुरनानूरु आदि पुराने ग्रन्थों में पाया जाता है।

तमिल जनता, भाषा, साहित्य और संस्कृति का केन्द्र वही सागरमग्न भाग है जिसे लुप्त लेमूरिया के नाम से विद्वानों ने व्यवहार किया है। तमिल साहित्य के गतिविधि निरीक्षक कवि संघों की स्थापना इसी सागरमग्न भूप्रदेश में हुई थी। तमिल संस्कृति का प्रधान भूभाग एवं विशाल वाङ्मय सागरमग्न हो जाने से तमिल जाति की गौरवपूर्ण गाथा का यथार्थ परिचय होना अब सम्भव नहीं है।

तमिल जाति

यद्यपि विद्वानों ने आर्य और द्रविड़ जाति की आदि निवास भूमि के सम्बन्ध में बहुत छान-बीन की है किन्तु इस विषय में अभी तक कोई सर्वमान्य निर्णय न हो सका। कुछ लोग बिना परिश्रम किये सरलता से यह बात कह देते हैं कि उत्तर भारतीय आर्य और दक्षिण भारतीय द्रविड़ हैं। इस प्रकार की अविचारित बातों को विचारशील विद्वान् अब नहीं मानते हैं। यातायात के साधन सुलभ होने से लोग सुविधा के अनुसार आजकल कहीं भी जाकर निवास करने लग जाते हैं। इस समय की भारतीय जनता मिश्रित हो गई है। अतः आकृति या जीविका के आधार पर आर्य और द्राविड़ या ब्राह्मणादि वर्ण निश्चय करना कठिन होता जा रहा है। प्राचीन साहित्य के अनुशीलन के आधार पर आर्य और द्राविड़ संस्कृति का स्वरूप समझा जा सकता है।

१.　यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिवसंस्कृतम् ।
　रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ।।
　वानरस्य विशेषण कथं स्यादाभिभाषणम् ।
　अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ।।
　　वा० रा० कि० का० स० ३० श्लोक १८, १९

२. श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन् गिरम् ।
　　श्लोक ४३.

तमिल जनता के आदि निवास स्थान के सम्बन्ध में जो भिन्न-भिन्न विचार सुने जाते हैं उनका सारांश इस प्रकार है:—(१) तमिल जनता का पश्चिम से भारत आना, (२) एशिया से भारत आना, (३) कन्याकुमारी के दक्षिण में सुदूर दक्षिण तक फैले हुए लेमूरिया का निवासी होना, (४) असिरिया से समुद्र के मार्ग से आकर विन्ध्य पर्वत तक फैल जाना और (५) हिमालय से लंका तक के भूभाग का आदिवासी होना आदि इतने प्रकार के विचार हैं।[1]

तमिल साहित्य

रसात्मक वाक्य को काव्य कहा गया है। तमिल साहित्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि पुरातन तमिल जन जीवन और साहित्य अत्यन्त सरस था। तमिल साहित्य में शृंगार तथा वीर—ये ही दो रस प्रचुरमात्रा में पाये जाते हैं। साहित्य समाज का दर्पण है। संघ साहित्य से पुरातन तमिल जनता की सभ्यता, संस्कृति और प्रेम जीवन का सम्यक् परिचय मिलता है।

हडसन नामक पाश्चात्य लेखक ने भाषा के द्वारा जन जीवन की व्याख्या को साहित्य कहा है। उन्नत विचारों की सरस रचना को एमर्सन ने साहित्य माना है। संस्कृत के लक्षणग्रन्थ काव्य प्रकाश में काव्य के अनेक प्रयोजन बताते हुए व्यवहार, कान्तासम्मित तथा उपदेश आदि कहे गये हैं। पाश्चात्य तथा भारतीय आलोचकों के सभी कमनीय विचार तमिल के संघ साहित्य में पाये जाते हैं। कवि संघों के नियंत्रण के कारण तमिल में समुन्नत एवं परिष्कृत काव्य ही पनप सके। कामोद्दीपक एवं नख-शिख वर्णन तमिल के संघ साहित्य में नहीं पाया जाता है। तमिल के पुराने साहित्य के पढ़ने से मनोवृत्तियों का परिष्कार एवं भावना का विकास होता है।

तीन कवि संघ

पुरातनकाल में कुमरी प्रदेश ४९ भागों में विभक्त था। पाण्डियों की राजधानी दक्षिण मधुरा राजनीति के साथ सकल कलाओं की केन्द्र थी। तमिल साहित्य की प्रथम कवि परिषद् इसी दक्षिण मधुरा में स्थापित हुई। इस संघ का संस्थापक काय्चिन वलुदि नामक पाण्डिय राजा था। अगस्त्य मुडिनागराय आदि ५४९ कवि इस परिषद् के सदस्य थे। ८९ पाण्डिराजाओं के क्रमिक शासनकाल में ४४४० वर्ष तक यह प्रथम कवि परिषद् साहित्य निर्माण की गतिविधि का निरीक्षण करती रही। ४४४९ कवि अपनी अपनी रचनाओं को इस परिषद् से प्रमाणित करा के सम्मानित हुए। पह्ुली नदी के तट पर स्थित दक्षिण मधुरा, सागर प्रलय के कारण नष्ट हो गई। इस सागर प्रलय के कारण चिरकाल से संवर्धित तमिल साहित्य, संघ और समस्त रचनायें लुप्त हो गईं।

प्रथम कविसंघ के सहित दक्षिण मधुरा सागर के गर्भ में विलीन होने के कारण उस समय के पाण्डियराजा 'कडंगोन' ने पह्ुली नदी और कुमरी नदी के मध्यगत प्रदेश में ताम्रवर्णी नामक नदी के तट पर कपाटपुरम नामक नगर की स्थापना की और यहीं

१. रामसामी नायडु—तमिल इलक्कियम् पृ० ४

पाण्डियों की राजधानी भी बनी। इस राजा ने अपने पूर्वजों का अनुकरण करते हुए द्वितीय कवि परिषद् की स्थापना की। ५९ पाण्डियराजाओं के आनुक्रमिक शासन काल में ३७०० वर्ष तक द्वितीय कवि संघ काव्य-निर्माण का काम करता रहा। इस संघ के सदस्य ५९ थे। ३७०० कवियों ने स्वकीय कृतियों को इस परिषद् से प्रमाणित कराया। सागर प्रलय के कारण ही द्वितीय कवि संघ का भी विलय हुआ। कपाटपुरम् के नष्ट हो जाने से कुछ समय तक मणवूर पाण्डियों की राजधानी थी। जल प्रवाह के कारण अधिक समय तक वहाँ राज्य न रह सका। अन्त में आज की मथुरा नगरी को पाण्डिय राजा तिरुमारन ने अपनी राजधानी बनायी और तृतीय कवि परिषद् की स्थापना की।

इस संघ के ४९ सदस्य थे। ४९ पाण्डियराजाओं के आनुपूर्विक शासन काल में १८५० वर्ष तक यह परिषद् सुचारु रूप से काव्य-निर्माण का कार्य करती रही। ४४९ कवियों ने अपनी रचनाओं को इस संघ से प्रमाणित कराया। इन तीनों संघों का विवरण प्रसिद्ध एवं प्रामाणिक कवि नक्कीरर के इरैयनारकप्पोरुलुरै नामक ग्रन्थ में है। इस विवरण के अनुसार १९७ राजाओं के क्रमिक शासन काल में ९९९० वर्ष तक तीनों कवि परिषद् क्रमशः चलती रहीं। इन तीनों संघों की सत्ता और इनके कार्यकाल के सम्बन्ध में कदाचित कुछ लोगों को अविश्वास या सन्देह हो सकता है। उपलब्ध तमिल साहित्य की खोज करने से अनेक प्रमाण मिलते हैं कि पुरातन तमिलगम् में कवि संघ अवश्य विद्यमान थे। ई० सन् ७वीं सदी के वागीश्वर (तिरुनावुक्करसु) ने अपने तेवारम में संघ की चर्चा की है। ८वीं सदी के आण्डाल ने 'संघमुत्तमिल' कह कर संघ का उल्लेख किया है। आठवीं सदी के ही तिरुमगैथालवार ने संघमुत्तमिल अर्थात संघ के तीन प्रकार की तमिल भाषा की चर्चा की है। प्रामाणिक एवं सर्व प्राचीन व्याकरण तोलगाप्पियम् की टीका से जाना जाता है कि संघ अवश्य विद्यमान था। नक्कीरर और नच्चिनार्किनियार आदि प्रामाणिक टीकाकार संघ के होने में दृढ़ विश्वास रखते हैं। तमिल के सुप्रसिद्ध काव्य शिलप्पदिकारम् तथा मणिमेखलै संघ कालीन काव्य ही समझे जाते हैं। शिलप्पदिकारम् का टीकाकार अडियाकुनल्लार भी अपनी टीका में कवि संघ की चर्चा करते हैं। इस काव्य में सागर प्रलय का भी उल्लेख है। संघ की विद्यमानता का समर्थन करने वाला प्रमाण यह भी है कि "चिन्नमनूर ताम्रपत्र में—महाभारत को तमिल भाषा में कराने वाला यह मदुरापुरी संघ"—ऐसा उल्लेख पाया गया है।

संघ की विद्यमानता पर सन्देह करने वालों को समय-समय पर हुए सागर प्रलय पर भी विश्वास नहीं होता है। ऐसे लोगों को स्काट एलियट के सागर प्रलय सम्बन्धी ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिये। उन के कथनानुसार प्रथम सागर प्रलय १० लाख वर्ष पूर्व, द्वितीय सागर प्रलय ८ लाख वर्ष पूर्व, तृतीय सागर प्रलय २ लाख वर्ष पूर्व, चौथा सागर प्रलय ८० हजार वर्ष पूर्व और पाँचवाँ सागर प्रलय ९५०० वर्ष पूर्व हुआ है।

साहित्य के विवरण तथा स्काट एलियट के कथन पर विचार करने पर यह सम्भव प्रतीत होता है कि कुमरी प्रदेश में सागर खण्ड-प्रलय अनेक बार हुए होंगे। इस प्रकार के

जल प्रलय का उल्लेख लंका के ऐतिहासिक ग्रन्थ महावंश, दीपवंश और राजावली आदि में भी पाया जाता है। अतः तमिल साहित्य के कथनानुसार सागर प्रलय और तीन विख्यात कवि संघों के होने में अब सन्देह करने की गुंजाइश नहीं रही।

प्राप्त संघ साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों की कहानी और ऐतिहासिक वृत्तान्त का प्रचार संघ काल में ही दक्षिण में फैल गया था। संघ काल तक तमिल भाषा पर संस्कृत भाषा का प्रभाव बहुत कम था। संघोत्तरकाल में बौद्ध और जैनों के आगमन और धर्म प्रचार के कारण तमिल भाषा और साहित्य पर संस्कृत और पाली का प्रभाव बहुत पड़ा।[1]

संघ साहित्य

तीन कविपरिषदों का विवरण पीछे दिया गया है। तमिल वाङमय का उदय इन्हीं कवि परिषदों से होता है। अगस्त्य मुनि का 'अगत्तियम्' नामक व्याकरण प्रथम संघकाल की रचना है जो अब उपलब्ध नहीं है। प्राप्त तमिल वाङमय में तोलगाप्पियर का तोलगाप्पियम् नामक व्याकरण ग्रन्थ ही प्रथम और प्रमुख रचना समझी जाती है। इस ग्रन्थ के समकालीन ग्रन्थों का पता अब तक न चल सका। तृतीय संघकालीन साहित्य संप्रति उपलब्ध है। इसीको विद्वान् लोग संघ-साहित्य कहते हैं। महामहोपाध्याय उ० वे० सामिनादय्यर के अथक परिश्रम और सतत प्रयास से एट्टुत्तोगै (आठ पद्य-ग्रन्थों का संग्रह), पत्तुप्पाट्टु (दस लम्बी कवितायें) और पदिनेण्कील कणक्कु (अठारह नीति सम्बन्धी लघु कवितायें) ये ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। अन्तिम कविपरिषद ई० प्रथम शताब्दी तक जीवित रही। अन्तिम कविपरिषद् की समाप्ति का कारण ज्ञात नहीं है। इस काल के उत्तरापथ के आर्य 'कृण्वन्तोविश्वभार्यम्' की भावना से प्रेरित होकर आर्य संस्कृति के प्रचारार्थ दक्षिणापथ की ओर अग्रसर हो गये। आर्य या वैदिक धर्मी, बौद्ध और जैनों का धर्म प्रचार, प्रभाव और प्रतिक्रिया पर आगे विचार किया जायगा। इस अध्याय में प्रतिपादनीय विषय (तमिल संघ साहित्य में भक्ति के विभिन्न रूप) से सम्बन्धित संघ साहित्य का सामान्य परिचय हमारे लिये अत्यावश्यक है। प्राप्त संघ कालीन वाङ्मय में तमिल व्याकरण तोलगाप्पियम् ही सर्व प्राचीन ग्रन्थ है। तमिल जनता की सभ्यता, संस्कृति, ईश्वर विश्वास एवं भक्ति के स्वरूप को जानने के लिये यह प्रामाणिक ग्रन्थ समझा जाता है।

अतः इसी ग्रन्थ का अनुशीलन यहाँ प्रथमतः किया है।

तोलगाप्पियम्

तोलगाप्पियम् के रचयिता पुरातन काप्पयकुल में उत्पन्न हुए। 'काप्पियारु' इन का जन्मस्थान कहा जाता है। स्वकीय जन्मस्थान और कुल को परिचित कराने के लिये लेखक ने स्वरचित ग्रन्थ का नामकरण अपने कुल के नाम पर किया। तोल शब्द का अर्थ पुरातन है। इसी पुरातन अर्थ 'तोल' और काव्य-अर्थ के बोधक 'काप्पिय' से तोलगाप्पियम् यह समस्त पद बनता है जिसका अर्थ है—पुरातन काव्य। तोलगाप्पियम के रचयिता तोल-

१. विस्तार के लिये "अगस्त्य इन तमिलनाड" लेखक शिवराज पिल्लै देखिये।

गाप्पियर के नाम से स्मरण किये जाते हैं। इन के सम्बन्ध में यह कथन प्रचलित है कि ये जमदग्नि के पुत्र हैं और इनका अपर नाम तिरणधूमाग्नि है। जमदग्नि के पुत्र होने से तोलगाप्पियर परशुराम के भाई भी माने जाते हैं। यह कहानी प्रचलित है कि अगस्त्य ने भगवान् शङ्कर से तमिल भाषा सीखी। और उन्होंने अपने बारह शिष्यों को तमिल सिखाई। उन बारह शिष्यों में से तोलगाप्पियर भी एक हैं। इसी कहानी से सम्बद्ध एक और कहानी इस प्रकार है कि शङ्कर के परिणय काल में समस्त देवगण हिमालय में एकत्रित हुए। इस कारण हिमालय पर अधिक भार पड़ा। इस भार के कारण उत्तर दिशा निम्न और दक्षिण दिशा उन्नत हो गई। दक्षिण दिशा की उन्नतता को दबा कर समानता लाने के लिये अगस्त्य से दक्षिण जाने की प्रार्थना की गई। देवताओं की प्रार्थना पर वे दक्षिण गये। जाते समय अगस्त्य ने गंगा नदी से कावेरी और जमदग्नि से उनके पुत्र तिरणधूमाग्नि को ले लिया। उसी समय लोपामुद्रा को अगत्स्य ने अपनी पत्नी बनाया। इस प्रकार उत्तर से अगस्त्य दक्षिण गये और उन्होंने वहाँ के वन वनान्तरों को साफ कर नगर बसाया। वे स्वयं पोदिय पर्वत में रहने लगे। अगस्त्य मुनि के संगीत के प्रभाव से रावण वश में हो गया। और उसी समय से रावण और अन्य असुरों ने अगस्त्य निर्मित प्रदेश में आना ही छोड़ दिया। कहानी और भी लम्बी है। तमिल के विद्वान इस कहानी में आस्था नहीं रखते हैं। किन्तु वे इस बात को मानते हैं कि तोल-गाप्पियर दो भाषाएँ अर्थात् तमिल और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। वे संस्कृत के व्याकरणशास्त्र से सुपरिचित थे।

तोलगाप्पियर का काल

इनके काल निर्णय के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अभिप्राय फले हुए हैं। तोलगाप्पियम् की अनेक टीकाओं में नच्चिनार्किनियार की टीका सबसे अधिक प्रामाणिक समझी जाती है। उक्त टीकाकार का कथन है कि आजकल उपलब्ध ऋग्, यजु, साम और अथर्व वेदों के निर्माण से पूर्व तोलगाप्पियम् बना। वेदों के लिये तमिल में 'नान्मरै' (वेदचतुष्टय) शब्द का प्रयोग होता है। तोलगाप्पियर नान्मरै में निष्णात थे। नान्मरै से टीकाकार का अभिप्राय वर्त्तमान कालीन वेदों से पूर्व के तैत्तिरीयम्, पौडिकम्, तलवकारम् और साम ये ग्रन्थ हैं। अतः तोलगाप्पियम् की रचना आजकल के वेदचतुष्टय के निर्माण से पूर्व हुई।

तोलगाप्पियम् के रचना काल के सम्बन्ध में दूसरा मत यह है कि तोलगाप्पियम् द्वितीय कवि संघ की रचना है। द्वितीय कवि संघ आज से ७३०० वर्ष पूर्व स्थापित हुआ। अतः तोलगाप्पियम् आज से ७३०० वर्ष (वेद काल ई० पू० १५००) पूर्व की रचना है। कुछ लोग ज्योतिषशास्त्र के आधार पर प्रतिपादित करते हैं कि तोल-गाप्पियम् में वर्षा ऋतु (श्रावण और भाद्रपद) से वर्ष का प्रारम्भ माना गया है। ज्योतिषशास्त्र की गणना के अनुसार श्रावण से वर्ष का आरम्भ और आषाढ़ से वर्ष की समाप्ति आज से ५००० वर्ष पहले मानी जाती रही। अतः कम से कम ५००० वर्ष

पूर्व तोलगाप्पियम् बना होगा । चौथा मत का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है कि लोहा, सोना और चांदी आदि धातुओं का प्रयोग ई० पू० ५००० वर्ष बाद ही हुआ है । तोलगाप्पियम् में इन धातुओं का उल्लेख है । अतः तोलगाप्पियम् की रचना ई० पू० ५००० वर्ष के बाद ही हुई है । पांचवां मत जो अधिकाश विद्वानों का मान्य मत है वह तर्कयुक्त है । उसके अनुसार तोलगाप्पियम् का रचना काल ई० पू० ४०० अर्थात् पाणिनि से पूर्व है । तोलगाप्पियम् की भूमिका लेखक पनम्बारनार ने तोलगाप्पियम् को एंद्र प्रभावित व्याकरण कहा है । तमिल वाङ्मय में एंद्र व्याकरण का उल्लेख कहीं नहीं है । संस्कृत वाङ्मय में एंद्र व्याकरण का उल्लेख पाया जाता है । इस आधार पर वे तोलगाप्पियम् को एंद्र व्याकरण के उत्तरकालीन रचना मानते है । पाणिनि का स्थिति काल ई० पू० ४०० माना गया है । पाणिनि का प्रभाव तोलगाप्पियम् में नहीं पाया जाता है । अतः तोलगाप्पियम् पाणिनि व्याकरण से पूर्व बना होगा और यही मत इस समय सर्वाधिक प्रचलित है ।[१]

इस ग्रन्थ में १६०० सूत्र हैं । ग्रन्थ को तीन विभागों मे बांटा गया है:—(१) एलुत्तधिकारम् (वर्ण विचार), (२) शोल्लधिकारम् (शब्द विचार), और (३) पोरूल-धिकारम् (अर्थ विचार) । प्रत्येक अधिकार को नौ उप-विभागों में विभक्त किया गया है । वर्ण विचार के अधिकार में अक्षरों का परिचय, उच्चारण विधि, ध्वनि भेद और संधि आदि पर विचार किया गया है । शब्द विचार के प्रकरण में शब्दों की व्युत्पत्ति और प्रकृति प्रत्यय का विचार किया गया है । इस प्रकरण में तोलगाप्पियर ने शब्दों के चार विभाग किये हैं । वे चार भेद इस प्रकार हैं—इयलशोल (भाषा के ठेठ शब्द) तिरिशोल (तद्भवशब्द) वडशोल (उत्तर के शब्द अर्थात् संस्कृत भाषा के शब्द) और दिशैशोल (अन्य भाषा के शब्द) शब्दों के इस विभागीकरण से तोलगाप्पियर की दूरदर्शिता ज्ञात होती है । भाषा के विकास क्रम को ध्यान में रखकर उन्होंने तमिल में अन्य भाषा शब्दों के प्रवेश के लिये भी मार्ग खोल दिया है । इन का स्त्रीलिंग और पुल्लिग सम्बन्धी विचार विशेष ध्यान देने योग्य है । तमिल भाषा में स्त्रीलिंग और पुल्लिग का प्रयोग देव और मनुष्यों के लिये ही है । पशु पक्षी और निर्जीव पदार्थों के बोध कराने के लिये नपुंसक लिंग का ही प्रयोग किया जाता है । तोलगाप्पियम् का तृतीय प्रकरण पोरूल-धिकारम् इस अध्याय के प्रतिपादनीय विषय की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है । संस्कृत के लक्षण ग्रन्थ साहित्य दर्पण और काव्य प्रकाश के समान पदार्थों का विमर्श इस प्रकरण में किया गया है ।

तोलगाप्पियर ने समस्त साहित्य को इयल (पाठ्य साहित्य) इसै (गेय साहित्य) और नाटक (नाटक साहित्य) इन तीन विभागों में बाँटा है । इस प्रकरण (तोलगाप्पियम) में केवल पाठ्य साहित्य और उसके गुणों पर ही विचार किया गया है । काव्योपयोगी

१. देखो—Article by S. S. Bharathi—Age of Tolgappiam.

अलंकार, छन्द, रस, कवि समय आदि का सूक्ष्मतया यहाँ विश्लेषण किया गया है। काव्य प्रकाश के समान यहाँ भी आठ ही रस माने गये हैं। काव्य को अहम् और पुरम् (विषयी प्रधान और विषय प्रधान) इन दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रेम, विरह, करुणा, भक्ति आदि हृदय के कोमल भावों की कवितायें तमिल में अहम् के अन्तर्गत माना जाती हैं। विषय प्रधान या वर्णनात्मक कवितायें पुर काव्य के अन्तर्गत हैं जिनमें युद्ध, शासन, नीति आदि की बातें कही जाती हैं।

पुरातन तमिल कवियों ने भूमि को पांच भागों में बांटा है---कुरिंजि (पर्वत-क्षेत्र), मुल्लै (वन प्रदेश), मरूदम् (उजाऊ खेत या समतल भूमि), नेयदल (समुद्रवर्ती प्रदेश) और पालै (ऊजड़ या विषम प्रदेश)। तमिल साहित्य में इस भूविभाजन का विशेष अर्थ समझा गया है। पर्वत प्रदेश नायक नायिका के मिलन का प्रदेश समझा जाता है। नैसर्गिक प्राकृतिक सुषमा में अवश्य ही समान गुण वाले प्रेमी प्रेमिकाओं का मन मिलन के लिये आतुर होता होगा। मिले हुए लोग पारस्परिक स्नेह संवर्धनार्थ चिरकाल तक वन प्रदेश में रहना चाहते होंगे। घने वन में अलग न रहकर एकत्र रहने का भाव ही बढ़ता गया होगा। समतल प्रदेश मान करने के लिये उपयोगी है। समतल उपजाऊ भूमि में नायक कहीं भी जा सकता है। नायक के इस प्रकार के चले जाने पर नायिका अवश्य मान करती रहेगी। नायिका के मान-निवारण के लिये नायक का भगीरथ प्रयास और मान निवृत्त हो जाने पर नायक नायिका की मधुर बातें सभी सरस रहती होंगी। नेयदल समुद्रवर्ती क्षेत्र है। समुद्रतट के निवासियों को जीविकोपार्जन के लिये समुद्र की यात्रा करनी पड़ती थी। जहाज वापस आने तक नायिका के मन में संशय और व्याकुलता होना स्वाभाविक है। इस प्रकार नायक के वियोग में नायिका को वियोग-व्यथा सहन करनी पड़ती थी। ऊबड़ खाबड़ या विषम प्रदेशवासी का जीवन विषम ही रहता था। वहाँ के निवासियों के जीवन में शोक और करुणा अधिक पाई जाती थी। इन पांच प्रदेशों की भिन्न-भिन्न विशेषतायें मानी गई हैं। प्राचीन तमिल कवियों का यह भूविभाजन सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण और गम्भीर सहृदयता द्योतक माना गया है।

व्याकरण और साहित्य सम्बन्धी अनेक बातों के साथ पुरातन इतिवृत्त, आचार-विचार, धार्मिकता और ईश्वर-भक्ति आदि का ज्ञान भी तोलगाप्पियम् से प्राप्त होता है। तमिल प्रदेश के ईसवी पूर्व की सामाजिक दशा और ईश्वर भक्ति का परिचय कराने वाला प्रथम ग्रन्थ तोलगाप्पियम् ही है। इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि तोलगाप्पियर काल की जनता परम ईश्वरवादी थी। उस समय के प्रचलित अनेक देवी-देवताओं की जनता उपासना करती थी। ईश्वर-भक्ति और भगवद्-भजन तमिल संस्कृति का अटूट अंग है।

काव्य के क्षेत्र में भूविभाजन का जो महत्व देखा गया है वह भक्ति के क्षेत्र में भी है। तोलगाप्पियर ने कुरिञ्जि आदि प्रदेशों में विख्यात देवताओं का भी निर्देश किया

है। उनके कथनानुसार वन प्रदेश के वासियों का उपास्य देव मायोन[1] अर्थात् विष्णु है। कुरिञ्जि या पर्वत क्षेत्र के लोगों का पूज्य देव शेयोन या षण्मुख है। मरूद या उपजाऊ समतल प्रदेश के लोग इन्द्र की पूजा करते थे। नेय्दल या समुद्रतटवर्ती जनता वरुण भगवान की स्तुति करते थे। पालै या विषम प्रदेश के लोगों के उपास्य देवों के बारे में तो कुछ कहा नहीं गया है। किन्तु अन्य ग्रन्थोंसे से जाना जाता है कि वे काली को और सूर्य, अग्नि की उपासना करती थी। प्राचीन काल में लोग राजा को विष्णु के समान मानकर स्तुति किया करते थे[2]। युद्ध में विजय पाने पर युद्ध वीर कालीदेवी की पूजा बलि देकर किया करते थे[3]। उनका विश्वास था कि काली (कोट्रवै) युद्ध मे सहायता करती है। तोलगाप्पियर काल में तमिल जनता सूर्य, चन्द्र, अग्नि को ईश्वर मानकर पूजा करती थी[4]। यह प्रथा तोलगाप्पियर से पूर्व ही थी। जनता में प्रचलित प्रथा और परम्परा का उल्लेख तोलगाप्पियम में किया गया है। वेदों में सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण और विष्णु आदि की स्तुति के मन्त्र हैं।

आर्य लोग वेद काल में जिन इन्द्रादि देवों और अग्नि आदि प्रतीकों की उपासना करते रहें उन्हीं देवों और प्रतीकों की पूजा सुदूर दक्षिण मे तमिल जनता करती रही। आजकल दक्षिण और उत्तर की संस्कृति के नाम पर विवाद और संघर्ष देखा जाता है। संस्कृति के मूलभूत ईश्वर पूजा और भगवद्-भजन का प्रकार आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व समान ही पाया जाता है। यह सत्य वेद और तोलगाप्पियम के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है। तमिल भाषा में ईश्वर के लिये 'कडवुल' पद का प्रयोग किया गया है। इस पद का अर्थ है—मनोवाक्काय से परे का तत्त्व—विश्वातीत और अन्तर्यामी। यही आशय ईश्वर के लिये उपनिषद् के—यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा

---

१. मायोन् मेय काडुरै उलगमुम्
शेयोन् मेयमैवरै उलगमुम्
वेन्दन् मेय तीम्बुनल् उलगमुम्
वरुणन् मेय पेरुमणल उलगमुम्
मुल्लै, कुरिञ्जि, मरुदम् नेयदलनच्
चोल्लिय मुरैयाल चोल्लवुम् पडुमे
तो० पो० अंक ५.

२. मायोन् मेय मन्पेरुम् शिरप्पिन्
तावा विळ्प्पुगळ्प्पूवै निलैयुम्

३. मरम् कडै कूट्टिय तुडिनिलै चिरन्द
कोट्रवै निलैयुम् अत्तिणैप्पुरने.

४. कोडिनिलै, कन्दळि वल्लि एन्र
वडुनीङ्गचिरप्पिन् मन्निय मून्रुम्
कडवुल् वाळ्त्तोडु कण्णिय वरुमे.
तोलगाप्पियम्

सह—इस वाक्य से भी प्रकट होता है । अतः भारतीय संस्कृति में मौलिक एकता का भाव कई सहस्र वर्ष पूर्व ही से चला आ रहा है ।

तोलगाप्पियम् के समकालीन ग्रन्थ मापुराणम्, इसैनुणुक्कम्, कूत्तु, शीरेशै और पेरिशै नामक ग्रन्थ आज अप्राप्य हैं । तृतीय संघकाल के काव्य ग्रन्थ—एट्टुत्तोगै, पत्तुप्पाट्टु और पदिनेण्कीलकणक्कु आदि ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर संघकालीन भक्ति का अनुशीलन यहाँ किया जायगा ।

एट्टुत्तोगै

एट्टुत्तोगै में आठ काव्य ग्रन्थों का संकलन है । उनके नाम इस प्रकार हैं—कलित्तोगै, कुरून्तोगै, अगनानूरु, पुरनानूरु, एंगुरुनूरु, नट्रिणै, पदिट्रुप्पत्तु और परिपाडल ।

इन आठों ग्रन्थों में से पदिट्रुप्पत्तु और पुरनानूरु वर्णनात्मक कविताएँ हैं । परिपाडल में कुछ कविताएँ विषयी प्रधान और कुछ विषय प्रधान हैं । शेष पांच ग्रन्थ मानसिक कोमल भावों को अभिव्यक्त करने वाली विषयी प्रधान कविताएँ हैं । संघ काल के कवि वीर और शृंगार रस की कविताएँ ही रचा करते थे । वीरता के द्वारा राष्ट्ररक्षा और शृंगार के द्वारा इहलौकिक सुख का उपभोग करना ही उनको अभीष्ट था ।

एट्टुत्तोगै में चारसौ कवियों की ६०० कविताएँ संकलित हैं । कुमरी प्रदेश से लकर बेंकट पर्वत तक की सभी जाति और देश के कवि और कवियित्रियों की कविताएँ इस संग्रह में पाई जाती हैं । इन कविताओं में तत्कालीन राजाओं का शौर्य, दान, शील, ईश्वर भक्ति, पर्वत, वन, नदी और समुद्र आदि का वर्णन है । प्रेम का चित्रण, पुराणवृत्त, तमिल राजाओं का युद्ध और विजय, नवनन्दों की चर्चा, पाटलीपुत्र और शोण नदी का भी यहाँ उल्लेख पाया जाता है ।

(१) कलित्तोगै में अंग्रेजी के सानट जैसे कविताओं का संग्रह है । (२) एंगुनूरु में चेर राजाओं की प्रशस्तियों का संकलन है । (३) नट्रिणै में प्रेम गीतों का संग्रह है । (४) पुरनानूरु में बाह्य जगत की वर्णनात्मक ४०० कविताएँ हैं । इन कविताओं में संघ युग के राजाओं और सरदारों के राजसी वैभव, शौर्य, औदार्य और विजयों का वर्णन है । तत्कालीन देश की सीमा, राज्य, जनता, शिक्षा, धर्म, कला और छोटे-बड़े राजाओं का विवरण इस ग्रन्थ में पाया जाता है । (५) अगनानूरु में अन्तर्जगत् या भावात्मक कविताओं का संकलन है । बाह्य और अन्तर्जगत् का सूक्ष्म निरीक्षण अगनानूरु की कविताओं मे बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है । मानसिक जगत की विभिन्न परिस्थितियों, भाव परिवर्त्तनों, उद्गार-उमंगों और प्रेमी-प्रेमिकाओं की आह-कराहों का मार्मिक विश्लेषण इस ग्रन्थ का विषय है । तमिल जाति की पुरातन पाणिग्रहण पद्धति का परिचय भी इस ग्रन्थ के अध्ययन से होता है । ब्राह्म, दैव, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच । इन आठ प्रकार के विवाहों में गान्धर्व विवाह ही तमिल साहित्य में प्रचलित है । तोलगाप्पियम् तथा साहित्य के अन्य

ग्रन्थों में दो प्रकार के विवाह—कलवु और कर्पु विख्यात हैं। तमिल साहित्य में प्रसिद्ध कलवु विवाह गन्धर्व विवाह के सदृश है। समान गुण और शील के युवक और युवती के भाग्यवश परस्पर आकर्षण के कारण प्रेमपाश से आबद्ध होकर माता-पिता और समाज की अनुमति के बिना भी जीवन चलाने पर उन के सम्बन्ध को कलवु (चोरी) कहा जाता है। उनका कलवु माता-पिता और समाज में ज्ञात हो जाने पर वे नियमानुसार पाणिग्रहण कर लेते थे। उसी का नाम कर्पु या पातिव्रत्य विवाह है। कलवु नामक गांधर्व पद्धति का विवाह पातिव्रत्य विवाह का सहायक ही होता है। तमिल विवाह पद्धति में दहेज, पुरोहित, यज्ञ, दक्षिणा आदि की प्रथा नहीं थी। विद्वानों का मत है कि उत्तरापथ के आर्यों के आगमन के कारण पुरोहित और दक्षिणा एवं वर्ण व्यवस्था का तमिल प्रदेश में प्रवेश हुआ—[1]

कुरुंतोगै ४०१ कविताओं का संकलन है। इस में २०१ कवियों की रचनाएँ हैं। शब्दार्थ सौन्दर्य इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता है। तन्वो के केशों में नैसर्गिक परिमल होता है। केश विषयक प्रसिद्ध कविता इसी ग्रन्थ के अन्तर्गत है। 'पदिट्रुप्पत्तु में चेरवंश के राजाओं का वर्णन है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्व माना गया है। दो सहस्र वर्ष पूर्व की राजनैतिक परिस्थिति, धार्मिक दशा एवं शासन प्रणाली का ज्ञान इस ग्रन्थ के अनुशीलन से होता है। एट्टुत्तोगै में भक्ति की दृष्टि से पारिपाडल नामक ग्रन्थ ही विवेच्य है। संघ कालीन शिव-विष्णु भक्त का हृदयाकर्षक वर्णन परिपाडल का मुख्य विषय है।

परिपाडल

'परि' नामक छन्द से रचे जाने के कारण इस ग्रन्थ का नाम परिपाडल है। यह छन्द गीतात्मक होने से विशेष रूप से गाया जाता है। तमिल संगीत शास्त्र के विशेषज्ञ परिपाडल की कविताओं को संगीत के विभिन्न उपकरणों के साथ गाते देखा जाता है। इस छन्द में २५ से ४०० पंक्ति तक की कविता बनाई जा सकती है। संघपूर्व काल में इस शैली के अनेक ग्रन्थ विद्यमान रहे होंगे। वर्त्तमान परिपाडल की प्रौढ रचना से यह अनुमान किया जाता है कि इस ग्रन्थ के मार्ग दर्शक ग्रन्थ अवश्य थे। गेय साहित्य के उदाहरण रूप संप्रति यही एक परिपाडल प्राप्त है। इस ग्रन्थ मे ७० कविताएँ थी। किन्तु आज कल केवल २२ ही कविताएँ प्राप्त हैं। परिपाडल की ७० कविताओं का विवरण एक वेण्बा (चतुष्पदी) के अनुसार इस प्रकार है—विष्णु के लिये ८, मुरुग (कार्त्तिकेय) के लिये ३१, दुर्गा के लिये १, वैगैनदी के लिये २६, और मदुरा के लिये ४ कविताएँ। पुरानी टीकाओं में से दो कविताएँ और कुछ पंक्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। प्राप्त २२ कविताओं में सं० १, २, ३, ४, १३, १५ की कविताएँ मायोन अर्थात मायावी विष्णु की भक्ति में गाई गई हैं। स० ५, ८, ९, १४, १७, १८, १९ और २१ की कविताएं शेयोन (लोहितवर्ण कार्त्तिकेय) की स्तुति में गाई गई हैं। शेष कविताओं में वैये नदी और मदुरा नगरी का ओजपूर्ण वर्णन है। वैगै नदी के वर्णन में नायक-नायिका को जल क्रीडा आदि का साम

१. तोलगाप्पियम्. सामी चिदम्बरम्।

वर्णन शृंगार प्रधान है। शिव और विष्णु भक्ति की उत्तम कविताओं के साथ वर्षा, पर्वत, नदी, नगर आदि की वर्णनात्मक कविताएँ भी इस ग्रन्थ में हैं। तमिलराष्ट्र की सभ्यता, धर्मार्थकाममोक्ष, सामाजिक व्यवहार, वेषभूषा, अस्त्र-शस्त्र, यान, जातियाँ, उत्सव, त्योहार, पक्षी, पर्वत, प्राकृतिक दृश्य और पौराणिक बातों की सूचक कविताएँ अनुशीलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन कविताओं के रचयिताओं के नाम ये हैं—

नल्लन्दुवनार, इलंपेरुवलुदियार, कडुवन्-इलवेयिनार, करुंपिल्लैभूतनार, कीरन्दैयार, कुन्रंभूतनार, नप्पण्णनार, नल्लच्चुतनार, केशवनार, नल्ललुसियार, नल्लेलुनियार, नलवलुदियार, मैयोडक्कण्णनार।

भगवान् विष्णु की भक्ति में निर्मित कविताओं का भावानुवाद नीचे दिया जाता है।

पद्य सं० १

हे विष्णो! सहस्रफणी शेषनाग तेरे मस्तक पर अलंकृत है। लक्ष्मी तुम्हारी छाती पर आसीन है। स्वच्छशंख के तुल्य शरीर गजयुक्तपताका हलायुध और मुरली को धारण किये तुम बलदेव के तुल्य हो।

कमल के समान शरीर, नीलोत्पल के समान नेत्र, लक्ष्मी के आसन योग्य वक्षस्थल, और उसमें शोभायमान कौस्तुभमणि, और पीताम्बर को तुम धारण करते हो। गरुड़ को पताका में धारण करने वाले तुम्हारी महिमा के गाने में वेद भी अवाक् है।

युद्ध लोलुपों को ध्वस्त करने वाले हे विजयशील! तुम काम और ब्रह्मा के जनक हो। हे सर्वाभरणभूषित! तुम्हारी महिमा को समझने में मंत्रद्रष्टा ऋषिगण भी असमर्थ हैं। अतः तुम्हारे अनिर्वचनीय गुणगरिमा का वर्णन हम कैसे कर सकेंगे।

लक्ष्मी और मरु (गन्धवान हरित किसलय) को वक्षस्थल में धारण करने वाले वैकुण्ठनाथ! तेरी पुण्यगाथा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना हमारे लिये सम्भव नहीं है। तुम्हारे प्रति अटूट श्रद्धा होने के कारण टूटी फूटी वाणी में हम अपनी भक्तिभाव को व्यक्त करते हैं। हे नाथ हमारी इस भावाञ्जलि को स्वीकार करो।

ब्राह्मणों (ब्रह्मज्ञानियों) का धर्म और भक्तों की भक्ति तुम हो। सन्मार्ग से भ्रष्ट जनों को सुधारने वाले तुम हो और दुश्मनों को दण्ड भी तुम ही देते हो। आकाश में दृष्टिगोचर सूर्य और चन्द्र तुम हो। पञ्चमुख परमेश्वर और उसका संहार भी तुम ही हो। वेद, ब्रह्मा और ब्रह्मा का सृष्टि कार्य तुम हो। मेघ, आकाश, भूमि और हिमालय तुम हो। समस्त उत्कृष्ट तत्त्वों का आधार भी तुम ही हो। तुम्हारे समान या तुम से बड़ा इस विश्व में और कोई नहीं। तुम निरुपम हो। सोने के रंग के चक्र को दक्षिण हस्त में धारण करने वाले तुम ही समस्त प्राणि जगत का आदि कारण हो। तुम्हारी महिमा अनन्त है।

तुम्हारे समान तुम ही हो। सुवर्ण निर्मित परिधान, गरुड़पताका, धवलशंख, शत्रुनाशक चक्रायुध, नीलमणि के तुल्य सुन्दर शरीर, अपरिमित यश और शोभनवक्षस्थल ये

तुम्हारी विशेषताएँ हैं। तुम्हारा स्तवन हम करते हैं हम अपने वन्धु-बांधव सहित तुमसे शाश्वत भक्ति की याचना करते हैं। अनुग्रह करो।

पद्य २

हे परंधाम ! प्रलयकाल में भूलोक और स्वर्गलोक का नाश हुआ। साथ ही सूर्य, चन्द्र और आकाश का विलय हुआ। आकाश, वायु, अग्नि, अप्, और पृथ्वी का पुनः सर्जन तुम ने ही क्रमशः किया। सहस्रों वर्ष तक यह भूमि पानी में थी। जीव जगत् के सर्जन एवं कल्याण के लिये तुम वराहरूप धारण कर, पानी में डूब कर, पृथ्वी को ऊपर लाये हो। इसी कारण उस कल्प का नाम वराहकल्प हुआ। यह नाम तुम्हारे उस कर्त्तव्य का ही स्मारक है। तुम्हारे अनेकों कार्यों में से यह एक है। पुरातन काल में तुम्हारे द्वारा किये गये अनेक कल्प हैं जिन्हें कोई नहीं जानते हैं। हे सृष्टि के आदिकारण ! हम तुम्हारी बन्दना करते हैं।

हे भक्तवत्सल ! तुम्हारे वक्षस्थल का आभूषण इन्द्रधनुष के समान है। उसके मध्यगत मुक्ताभरण चन्द्रमा के तुल्य है। शशी कलंक के समान लक्ष्मी तुम्हारे वक्षस्थल पर बैठी है।

तुम्हारे शरीर की कान्ति की तुलना नीलमणि के, नेत्र कमल के, बल सूर्य के, क्षमा पृथ्वी के, और करुणा जलधर मेघ के तुल्य है। तुम्हारे गुणगणों का गान वेद मे इसी प्रकार किया गया है। तुम अन्तर्यामी के रूप में सर्वत्र विद्यमान हो।

हे गरूडपताक ! यज्ञ ही तुम्हारा शरीर है। यज्ञीय पशु का आलम्बन ही तुम्हारा अन्न है। यज्ञानुष्ठान ही तुम्हारी पूजा है। तुम्हारी यज्ञीयाग्नि को देखकर नास्तिक भी तुम्हारी सत्ता में विश्वास करेगा। सागर का मंथन कर, देवताओं को अमृत देने के तुम्हारे चिन्तन मात्र से, जन्म व्याधि मरण से वे मुक्त हो गये। इससे तुम्हारा यश सर्वत्र फैला।

हे प्रशस्तगुणाकर ! हमारी बुद्धि का परिष्कार हो और हम सन्मार्ग में प्रवृत्त हों। हम पर दया करो।

पद्य ३

हे भगवन् ! भक्तों के जरामरण व्याधि का निवारण तेरे चरणामृत से होता है। तुम्हारी शरीर-कान्ति उज्ज्वलनीलमणि के तुल्य है। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, यजमान्, मंगलादिग्रह, असुर, द्वादश-आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, अश्विनी कुमार, यम, यम के अनुचर, सत्ताईस लोक, और इन लोकों के निवासियों का आदि कारण तुम ही हो। वेद तुम्हारी महिमा इसी प्रकार गाता है, अतः हम भी वैसे ही कहते हैं। कमलोद्भव ब्रह्मा और उसके पिता तुम ही हो। देवताओं के पास से अमृत लाकर विनता की विपत्ति का निवारण करनेवाला वैनतेय तुम्हारा वाहन है। और वही तुम्हारा ध्वज चिह्न भी है। तुम्हारे चरण की पूजा न करनेवाला कोई नहीं है। तुम सप्त लोकों को नापनेवाले हो। सृष्टिकाल में वराहावतार लेकर जलान्तरगत भूदेवी को तूने लकड़ी से उठाया है। मेघ की वर्षा के कारण गिरनेवाले पानी को तुमने हंस का रूप धारण कर

अपने पक्ष से रोका। इससे देव और मुनिगण तुम्हारा यशोगान करते हैं। पूर्वजों का अनुकरण करते हुए, हम भी तुम्हारी स्तुति करते हैं।

तुम ही वेद कर्ता हो। आगम, मन, चित्त और अहंकार से तुम जाने नहीं जाते हो। शशीकला का उपभोक्ता देवादिदेव तुम ही हो। तुम्हारे स्वरूप का गान सामवेद इस प्रकार करता है कि अग्नि में ज्वाला, सुमन में सौरभ, पाषाण में मणि, वाणी में ओज, वेदों में उपनिषद् पञ्चभूतों में आकाश, सूर्य मे उष्ण और चन्द्र में शैत्य तुम हो। सभी वस्तुओं में तुम ही व्यापक हो। तुम सर्वगामी होने से सदा सर्वत्र रहते हो। लोक कल्याणार्थ तुम ने सभी प्रकार के जन्म लिये हैं, किन्तु तुम्हारा जन्मदाता कोई नहीं।

पंचभूत, पंच कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च तन्मात्राएँ, मन, चित्त, अन्तःकरण, मूलप्रकृति और पुरुष इन पच्चीस तत्त्वों को चारों युगों में अनुसंधान करने का श्रेय तुम ही को प्राप्त है।

लोहिताक्ष वासुदेव! श्यामाक्ष संकर्षण! सुवर्णकाय प्रद्युमन। हरित देही अनिरुद्ध। गोपवधूओं के साथ रासक्रीड़ा करते समय तुम बारम्बार दाँये बाँये होते रहे। घटनृत्य के समय तुमने घट उठा लिया। हे हलायुध! तुम चक्रवर्त्ती हो और सब का रक्षण तुम ही करते हो। किन्तु हम लोगों के लिये तुम अज्ञात तत्व बने हुए हो। तुम भक्तों के हृदय में सदा निवास करते हो। तुम सनातन पुरुष हो, विश्वराट् हो, क्रान्त-दर्शी कवि हो, गीत शिखा मणि हो, वनमालधारी हो, और शंख और पीताम्वरधारी लक्ष्मीपति हो। हे चक्रधर! तुम्हारे चक्र की छाया में संसार सुखी है। तुम्हारा करुणा-कटाक्ष हमें प्राप्त हो।

पद्य ४

हे विष्णो! माया से पृथक् होकर, मैत्री-करुणामुदिता और उपेक्षा का सतत अभ्यास करनेवाले यम नियमादि अष्टांगयोग के अनुयायो ऋषियों ने तुम्हारी महिमा की विशद व्याख्या की है। यह कोई विस्मय की बात नहीं है कि आपकी महिमा अनन्त है। योगा-भ्यास से पराङमुख हम लोग, मनमानी और त्रुटिपूर्णढंग से तुम्हारा यशोगान करते हैं। हमारी अज्ञता और अकुशलता देखकर तुम्हारा हंसना उचित है। लेकिन तुम्हारे उपहास से निरुत्साहित होकर, तुम्हारी भक्ति के मार्ग से हम हटेंगे नहीं। तुम्हारे शरीर की शोभा; नील वर्ण, निस्तरंग सागर और जलधर मेघ के तुल्य है। श्यामवर्ण के तुम, सुवर्णवर्ण के वस्त्र परिधान से बहुत ही शोभित होते हो।

तुम निसर्गतः लोहितनेत्रधारी हो। आर्त प्रह्लाद के आह्वान पर तुम ने खम्भे से प्रकट होकर हिरण्य के वक्षस्थल को विदीर्ण किया। जलमग्न भूमि को ऊपर लाने का तुम्हारा कृत्य मेरु पर्वत के समान है[१]। तुम्हारा उष्ण और प्रकाश सूर्य के, शीत और कोमलता

१. समुद्र मंथन में मेरु ने मथनी का काम किया। तभी से मेरु का यश समस्त विश्व में विदित हुआ।

चन्द्र के, करुणा और दानशीलता मेघ के, रूप और नाम आकाश के, गमन और आगमन वायु के पास देखे जाते हैं। अतः गोचरभूत समस्त गुण और क्रियाओं का केन्द्र तुम ही हो। प्राकृतिक सूर्यादि शक्तियां सृष्टिकाल में तुम ही से अभिव्यक्त होती हैं और प्रलयकाल में तुम में ही विलीन हो जाती हैं।

क्रोध, करुणा, पक्षपात और तटस्थता आदि गुणों के धारण करनेवालों के साथ तुम्हारा अनुरूप व्यवहार होता है। तुम स्वयं तटस्थ हो। तुम्हारा न कोई मित्र है न शत्रु जीवों के शत्रु-मित्र गुणों के कारण ही तुममें शत्रु-मित्र भावना प्रतीत होती है। यह तुम्हारा सहज भाव नहीं है। भक्तों के हृदय में भासित रूप ही तुम्हारा यथार्थ रूप है। नीलमणि के तुल्य सुरभित तुलसी माला, सुवर्णवर्ण का श्रीवत्स और नीलोत्पलवत् नेत्र को धारण किये तुम अतीव मनोज्ञ मालूम होते हो। तुम्हारी महिमा असीम है।

तुम्हारे मोक्षधाम से भी श्रेष्ठ तुम्हारा चरणारविन्द है। ऐश्वर्यभाव से पूर्ण तुम अनेक नैसर्गिक कल्याण गुणों को धारण किये हो। मुनियों के मनन योग्य उपनिषदों में तुम्हारे गुणों की व्याख्या है। हम तुम्हारे यथार्थ गुणों को नहीं जानते।

बट और कदम्बवृक्ष, नदी और पर्वत आदि स्थानों में विभिन्न रूपों में विद्यमान अनेक नामधारी तुम हो। सर्वत्र तुम व्याप्त हो। भक्तों के भक्तिपूर्ण सम्पुटकरों में तुम शान्तरूप से आसीन हो। भक्ति में प्रेरित कर हमारे सुकृत्यों की रक्षा तुम ही करते हो। हम पर करुणा करो।।

पद्य ५

रमणीय पीताम्बर, मणिमण्डित किरीट, सुरभित माला, गरुड़ युक्त पताका और चन्द्र की दानशीलता को धारण किये हुए तुम्हारी शोभा निरुपम है। सूर्य और चन्द्र को दोनों ओर धारण करने वाले मेघ के समान शंख और चक्र को धारण करने वाले तुम्हारे पाणिपद्म सहित वक्षस्थल की वन्दना करने वाले भक्त को वैकुण्ठ प्राप्त होता है। रसना आदि ज्ञानेन्द्रिय तुम हो। शब्द स्पर्शादि का उपभोक्ता भी तुम ही हो। शब्द से ज्ञात आकाश, शब्द-स्पर्श से ज्ञात वायु, शब्द-स्पर्श रूप से ज्ञात तेज, शब्द-स्पर्श रूपरस से ज्ञात अप् और शब्द-स्पर्श रूपरस गन्ध से ज्ञात पृथ्वी तुम हो। अतः मूल प्रकृति, धर्म, अनादिकाल, आकाश, वायु और तेज से युक्त तीनों सप्तलोक के प्राणी तुम्हारी कुक्षि में हैं। तुम क्षीरसागर के मध्य सहस्रमणी आदि शेष पर दीर्घनिद्रा करने वाले हो। ऋतु के उल्लंघन करने वाले दुश्मन का प्राणापहरण कर उनके वक्षस्थल पर हल चलाते हो। वेद तुम्हारा यशोगान करते हैं। जलधर मेघ, नीलवर्ण का सुमन, सागर, अंधकार और नीलमणि इन पांचों के समान तुम्हारी शरीरकान्ति है। तुम्हारी वाणी शंख और वेदघोष के समान है। क्रोध कालीन तुम्हारा उद्घोष मेघगर्जना के तुल्य है। तुम्हारा स्तुतिपाठक शाश्वत मुक्ति पाता है। तुम्हारा चित्त प्राणियों के परिपालन में ही रमता है। पूर्व जन्म के सुकृत के कारण इस जन्म में तुम्हारे कल्याण गुणों का हम चिन्तन करते हैं। उत्तरोत्तर अनवरत भक्ति करने की प्रेरणा देकर हमें तुम अनुगृहीत करो।

पद्य ६

अन्त में उस पर्वत (तिरुमालिरुं चोलै विष्णु का निवास पर्वत) का वर्णन किया जाता है।

इस भूमण्डल में नाना पर्वत हैं जिनकी विशेषताओं से मानव अज्ञात हैं। सूक्ष्म निरीक्षण से यह जाना जाता है कि कुछ पर्वत पृथ्वी को स्थिर करने के लिये हैं। कुछ अन्य पर्वत प्राणिजगत की बुभुक्षा निवारण करने में समर्थ हैं। कुछ श्लाघनीय पर्वत वे हैं जिनमें अनेक देव निवास करते हैं। उन पर्वतों में बलराम और विष्णु के निवास योग्य चोलै पर्वत सर्वश्रेष्ठ है।

यहां बलदेव के वक्षस्थल की श्वेत कदम्बमाला के तुल्य जलस्रोत के गिरने से शिलम्बा नदी मनोमुग्धकारी है। विष्णु का यह निवास पर्वत समस्त विश्व में विख्यात है। हे भक्तगण ! इस पर्वत की रमणीयता का ध्यान कर इसकी विशेषता को तुम लोग गुनो।

यहाँ के समस्त सरोवरों में नीलोत्पल विकसित हैं। चारों तरफ अशोक और वेंगैवृक्ष कुसुमित सुमनों से भरे हैं। इस आकर्षक प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य यह पर्वत स्वयं ही विष्णुतुल्य है। इसके दर्शन से अज्ञान का निवारण होता है। भगवान् विष्णु की भक्ति से पराङ्मुख तुम लोग पर्वत का दर्शन कर भगवद्भक्ति में लगो।

इस पर्वत में शिशु से आश्लेषित बानरी शिखरों पर कूद कर क्रीड़ा कर रही है। पारिजात पुष्प का परिमल चारों ओर फैल रहा है। मयूर नृत्य में लीन है। प्रतिस्पर्धा मे कोकिल मधुर तान छेड़ रहा है। इन सबकी प्रतिध्वनि पर्वत कन्दराओं में उठ रही है। तुम लोग धर्मपत्नी, मातापिता, सन्तान और बन्धु बान्धवों सहित उस विष्णुपर्वत की ओर आगे बढ़ो और भक्ति में प्रवृत्त हो।।

आज से कतिपय सहस्रवर्ष पूर्व सुदूर दक्षिण में विष्णुभगवान् की स्तुति और वन्दना किस प्रकार की जाती रही, यह परिपाडल की ६ अनूदित कविताओं से जानी जा सकती है। विष्णु भक्ति की चर्चा और मन्दिरों की सूचना संघ कालीन साहित्य-अगनानूरु, पुरनानूरु, पदिट्रुप्पत्तु, कलित्तोगै, पेरुम्बाणाट्रुप्पडै, शिरुपाणाट्रुप्पडै, शिलप्पदिकारम् और मणिकलै आदि ग्रन्थों में मिलती है।[1]

शिवोपासना

विष्णु भक्ति और वैष्णव धर्म के समान शिव की भक्ति और शैव धर्म का भी प्रचार तमिल प्रदेश में संघ काल में ही था। उपलब्ध संघ साहित्य के एट्टुत्तोगै, पत्तुप्पाट्टु और

१ अगनानूरु पंक्ति--५९, ७०, १३७, १७५, २२०; पुरनानूरु ५६, ५७, ५८,१७४, १९८, ३७८; पदिट्रुप्पत्तु—सातवां दशक पद्य ३१; कलित्तोगै ०३, १०४, ११०५, १२६, पेरुम्बाणाट्रुप्पडै ३०२, ३७३, ३९१, ३९२; शिलप्पदिकारम्-नाडुकाण्कदै ९—१०; काडुकाण्कदै ३५–५१; मणिमेकलै १९, ६५–६६।

पदिनेणकोलकणक्कु में शिव के स्वरूप का वर्णन पाया जाता है। संघ साहित्य में शिव को दीर्घ जटाधारी, वटवृक्षवासी, चन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाला—चन्द्रशेखर, त्रिनेत्र-धारी, त्रिपुरदाहक, त्रिशूलधारी, ऋषभध्वजी और नीलकण्ठ कहा गया है। पुरनानूरु (पं १६६) के एक पद्य में शिव का दीर्घ जटाधारी एवं पुरातन पुरुष कहा गया है। अन्तिम संघ की प्रसिद्ध कवयित्री औवै ने भगवान् शंकर की स्तुति (पुर० ना० ६१) करते हुए उसे भस्मधारी और श्वेतभाल वाला कहा है। पुरनानूरु (५५) में शिव के त्रिपुरदाह का भी उल्लेख किया गया है। (शिरुपाणाट्रुप्पडै ६६-६६) में शिव को वटवृक्षवासी कहा गया है कलित्तोगै (पद्य ३८) में रावण की शिव भक्ति का उल्लेख है। वह बहुत ही उत्साही एवं भावुक भक्त है। उसकी इच्छा थी कि कैलाश को लंका में ले जाकर रखा जाय। तदर्थ रावण ने भगीरथ प्रयास किया। सफलता न पाने पर उसने भगवान् शंकर की पूजा शुरू की। रावण की शाश्वत भक्ति पर आशुतोष शंकर प्रसन्न हो गये। अगनानूरु (पं० १८१) में शिव को त्रिनेत्रधारी एवं वेदोपदेशक कहा गया है। संघ साहित्य एवं संघोत्तरकालीन साहित्य में शिव और शिवकुमार की स्तुति में रचित सहस्रों पद्य और अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं, जिनसे तमिल जनता की शिव भक्ति और कार्तिकेय भक्ति का ज्ञान होता है।

पत्तुप्पाट्टु

पत्तुप्पाट्टु म दस काव्य ग्रन्थों का संकलन है। संकलित ग्रन्थों के नाम ये हैं—(१) पोरुनरार्ट्रुप्पडै, (२) पट्टिनप्पालै, (३) मुल्लैप्पाट्टु, (४) पेरुम्पाणाट्रुप्पडै, (५) शिरुपाणार्ट्रुप्पडै, (६) नेडनलवाडै, (७) कुरिञ्जिप्पाट्टु, (८) मदुरैक्कांजि, (९) मपलैडुकडाम् और (१०) तिरुमुरुगार्ट्रुप्पडै।

पत्तुप्पाट्टु में संकलित सभी ग्रन्थ जगबीती विषयों से सम्बन्ध रखने वाले वर्णनात्मक काव्य हैं। इनमें भक्ति की दृष्टि से तिरुमुरुगार्ट्रुप्पडै ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अतः उसी का यहाँ विशद विचार किया जायगा। अन्य ग्रन्थों में चेर, चोल और पाण्डिय राजाओं के राज्य विस्तार, शासननीति, युद्ध, विजय, वीरता, काव्यप्रेम, कवि सत्कार, दानशीलता, उदारता, प्रेम, विरह, पर्वत, वन और नदी का प्राकृतिक दृश्य एवं जनजीवन का मनोमोहक ढंग से वर्णन किया गया। इन ग्रन्थों का आलोचनात्मक परिचय देना भक्ति की दृष्टि से यहाँ आवश्यक नहीं है।

तिरुमुरुगार्ट्रुप्पडै के रचयिता नक्कीरर

इस ग्रन्थ के रचयिता महाकवि नक्कीरर हैं। इनके पिता का नाम ज्ञात नहीं है कन्तु वे मदुरा में रहते थे और मदुरा के बाद्दियार (अध्यापक) के नाम से विख्यात थे। नक्कीरर अन्दणर (ब्राह्मण) था। वे भी मदुरा में ही रहते थे। अन्तिम कवि संघ के प्रमुख कवियों में इनकी गणना होती थी। नक्कीरर की कविताएँ पत्तुप्पाट्टु और एट्टुत्तोगै आदि संघ काव्यों में संकलित हैं। संघ कालीन शिव भक्ति का परिचायक काव्य तिरुमुरुगार्ट्रुप्पडै से इस कवि की भावुकता एवं भक्ति का ज्ञान होता है। इस भक्ति काव्य में

भगवान् कार्तिकेय (मुरुगन्) के विभिन्न निवास स्थलों का भक्तिपूर्ण वर्णन है। तमिल प्रदेश की शिवानुयायी भक्ति जनता इस काव्य को महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थ मानती है। अतः इसका पाठ मन्दिरों, मठों और शैव पाठशालाओं में किया जाता है।

कवि नक्कीरर प्रौढ़पाण्डित्य, काव्यमर्मज्ञता एवं भावुकता के लिये विख्यात थे। इनके शब्द सौन्दर्य अर्थ गम्भीरता एवं विषय प्रतिपादन कौशल को देखकर परवर्ती कवियों ने इनके नाम से 'वदन्ती' प्रचलित कर दी— धनुष में चेरन, वाणी में कीरन (नक्कीरर) संस्कृत के कवि बाणभट्ट के समान नक्कीरर भी तमिल भाषा में 'वश्यवाणी कवि चक्रवर्ती' समझे जाते हैं। नक्कीरर के सम्बन्ध में संघोत्तकालीन पुराणों में एक रोचक कहानी पाई जाती है। उनके भावुक हृदय और मुरुगभक्ति को समझने में वह पुराणोक्त कहानी सहायक होगी। अतः उस कहानी का उल्लेख यहाँ किया जाता है। कहानी इस प्रकार है:—

सायंकाल की वेला थी। शीतलमन्द सुगन्ध पवन बह रहा था। मरीचिमाली दिन भर की यात्रा से श्रान्त होकर, स्नान करने के लिये पश्चिम सागर की ओर तेजी से जा रहा था। पाण्डिय राजा राजप्रासाद की अट्टालिका में आसीन होकर दक्षिणपवन का आनन्द ले रहा था। प्रवहमान दक्षिण पवन में पूर्व अननुभूत परिमल के आकस्मिक अनुभव से राजा आश्चर्य में पड़ गया। बादमें विदित हुआ कि पार्श्वस्थ पदमादेवी महिषी के केशपाश से यह गन्ध आरही है। कुलीन कन्याओं के केशपाश में नैसर्गिक गन्ध होने का राजा ने अनुमान किया।

दूसरे दिन पूर्व दिन के अनुभूति परिमल का कारण दरबारी कवियों से पूछा। कोई कवि समुचित समाधान न कर सका। यथार्थ कारण बताने वाले को एक सहस्र सुवर्ण मुद्रा देने की राजा ने घोषणा की।

सुन्दरेश्वर की भक्ति में प्रवृत्त एक पुजारी ने राजा के अभिप्राय के अनुसार परिमल के यथार्थ कारण बताकर सहस्रकार्षापण प्राप्त कर अपना विवाह करना चाहता था। जिससे उसकी सन्तान भी अविछिन्न रूप से भगवान् सुन्दरेश्वर की पूजा करती।

भगवान की कृपा से प्राप्त कविता को पाण्डिय राजा को समक्ष रखकर, सहस्रकार्षापण पाने को वह निर्धन पुजारी राजा के पास गया। कविता में परिमल के यथार्थ कारण— कुलीन कन्या के केशपाश हैं। यह जान कर घोषणा के अनुसार पाण्डिय राजा उस गरीब पुजारी को इनाम देने लगा। इस घटना से कवि परिषद् के कवियों ने अपना तिरस्कार समझा। नक्कीरर उस समय के प्रमुख एवं प्रकाण्ड विद्वान् समझे जाते थे। उनके रहते एक साधारण व्यक्ति का राज सम्मान पाना वे उसे ठीक नहीं समझते थे। अतः नक्कीरर ने उस कविता में दोष दिखाकर उसके रचयिता को विवाद के लिये आह्वान किया। वह गरीब ने विवाद से डरे हुए भागकर भगवान् के चरणों में आश्रय पाया और उनसे घटना का वर्णन किया। कवि नक्कीरर से विवाद करने के लिये भगवान् स्वयं कवि का वेष धारण कर विवाद मण्डप तक पहुँचे और विवाद करने के लिये सन्नद्ध हो गये। "कुलीन नारियों के केशपाश में नैसर्गिक परिमल है" यही विवाद का विषय था। नक्कीरर तथा

कवि वेषधारी में विवाद तथा महान् संघर्ष हुआ। कुलीन कन्यायें, देव बालाएँ, इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती के केशपाशमें भी परिमल न होने का दुराग्रह नक्कीरर ने किया। नक्कीरर के दुराग्रह और दुरभिमान का निवारण करने के लिये भगवान ने अपने तृतीय नेत्र को खोला। भगवान् की कोपाग्नि से नक्कीरर का शरीर जला और वे छोड़कर सुवर्ण कमल वाले सरोवर में गिरे। नक्कीरर की इस दुर्दशा से भगवान् करुणा से आप्लावित हुए और स्वयं भगवान ने नक्कीरर को सरोवर से उठाया। कवि का सारा शरीर कुष्ट रोग से व्याप्त हुआ। रोगनिवारणार्थ कैलाश दर्शन का उपाय बताकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

कुष्टरोग से मुक्त होने के लिये कवि ने कैलाशयात्रा शुरू की। वे मदुरा से चलकर तिरूप्परं-कुन्रम् पहुँचे कि शिवपूजा का समय हो गया। पास के एक तड़ाग के तट पर वटवृक्ष के नीचे नक्कीरर ने पूजा प्रारम्भ की। उसी समय वृक्ष से एक पत्ता नीचे गिरा। उस पत्ते का अर्धांश तट पर था और दूसरा अर्धांश पानी में था। वे दोनों अर्धांश पक्षी और मछली के रूप में परिणत होकर एक दूसरे को अपनी ओर खींचने लगे। नक्कीरर उस अतिशय पूर्ण मायावी घटना के देखने के कारण शिव पूजा से विचलित हुए। उसी समय पथभ्रष्टों को पकड़ने वाला 'र्ककिमुखी' नामक भूत ने नक्कीरर को पकड़ ले जाकर पर्वत कन्दरा में बन्द कर दिया। नक्कीरर से पूर्व शिव पूजा से भ्रष्ट ९९९ व्यक्ति वहाँ थे। इन के वहाँ आने से, पथभ्रष्ट व्यक्तियों की संख्या एक हजार हो गयी। भूत १००० की संख्या पूर्ण होने पर सब को एक साथ खाना चाहता था। १००० की संख्या पूर्ण न होने के कारण ९९९ व्यक्ति वहाँ निर्भय रहते रहे। अब नक्कीरर के कारण खाये जाने का भय सब को होने लगा।

भक्त रक्षक भगवान् कार्तिकेय, कवि नक्कीरर की स्तुति के कारण प्रकट हुए और उस र्ककिमुखी भूत को मारकर भगवान ने उन सब लोगों की रक्षा की।

इस संकट ग्रस्त अवस्था में उसी पर्वत में रहने वाले करुणानिधि भगवान् कार्तिकेय की स्तुति करके नक्कीरर आपत्ति से मुक्त हुए।

"इस प्रकार संकटापन्न मैं कब कैलाश दर्शन कर सकूँगा" आदि शोकपूर्ण बातें कहकर भगवान् कार्तिकेय के चरणों में कवि नक्कीरर गिर पड़े। इस पर कालस्ति नामक दक्षिण कैलाश जाने से कैलाश का दर्शन तुम्हें होगा—यह कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये। नक्कीरर ने भगवान के कथनानुसार कालस्ति पर्वत जाकर दर्शन किया। उनका कुष्टरोग निवृत्त हुआ। इस प्रकार के संकट काल में रचा गया भक्तिकाव्य ही तिरुमुरुगार्टुप्पडै है। इस घटना का उल्लेख कवि ने स्वयं कहीं नहीं किया। परवर्ती पुराणकारों ने इस ग्रन्थ की महिमा को दिखाने के लिये इस प्रकार की कथा की कल्पना की होगी।

तोलगाप्पियम् तथा संघ साहित्य में पाँच प्रकार के भूविभाग तथा उपास्य देवों का उल्लेख पाया जाता है। इन भूविभागों में कुरिंजि पर्वत प्रदेश का ही प्रथमतः उल्लेख

है। पर्वत प्रदेश का ही प्रथम उल्लेख किये जाने कारण यह समझा जाता है कि प्रथमत: उन्नत पर्वत प्रदेश ही भूमण्डल में व्यक्त हुआ और यहीं जीव जन्तुओं की सृष्टि हुई। तोलगाप्पियम के अनुसार कुरिंजि प्रदेश का उपास्य देव मुरुगन (कार्तिकेय) है। मुरुग शब्द का अर्थ—सौन्दर्य, सौरभ और तारुण्य है। तमिल जनता भगवान् कार्तिकेय के सौन्दर्यादि गुणोंसे आकृष्ट होकर, पुरातन काल से ही उनकी भक्ति में प्रवृत्त हुई। इन का विश्वास है कि भगवान् कार्तिकेय सौन्दर्य, वीरता, करुणा और समस्त ऐश्वर्य के केन्द्र हैं। और वे सर्जन, रक्षण और संहरण करने में वे त्रिविधकार्य करते हैं।

ग्रन्थ के नामकरण की विशेषता

आर्ट्रुप्पडै—विशेष प्रकार की शैली से रचित काव्य को कहा जाता है। कोई कवि किसी धनिक-दानवीर से याचना कर, अभिलषितफल पाकर वह अपने समान कवि को धन पाने के लिये मार्ग दर्शन करता था। उस मार्ग दर्शन दानवीर की दानशीलता, उदारता और उसके तक जाने का मार्ग आदि का वर्णन करता था। इस प्रकार के मार्ग दर्शनात्मक काव्य ही तमिल साहित्य में आर्ट्रुप्पडै काव्य कहलाया। इस नाम के अनेक काव्य—पत्तुप्पाट्टु में संकलित हैं। अन्य आर्ट्रुप्पडै तथा इस आर्ट्रुप्पडै काव्य में कुछ अन्तर है। जिस व्यक्ति को मार्ग दर्शन किया जाता था उस व्यक्ति के नाम से ही उस आर्ट्रुप्पडै काव्य का नाम रखा जाता था। तिरूमुरुगार्ट्रुप्पडै के रचयिता कवि नक्कीरर ने उस रीति का परित्याग कर अपने काव्य में जिसका (भगवान् कार्तिकेय) परिचय कराया गया है उसके नाम से काव्य का नाम रखा है। ग्रन्थ के नामकरण के अनुसार "भगवान् कार्तिकेय तक जाने का मार्ग दर्शन।"—यह आशय है।

इस काव्य में कवि नक्कीरर ने मार्गदर्श न करते हुए भगवान् के निवास स्थान तथा उनके अनन्त कल्याण गुणों का चारुता से वर्णन किया है।

ग्रंथ का विषय

प्राचीन दिशा में अरुणोदय हो रहा है। बाल सूर्य की किरणें चारों ओर फैल रही हैं। समस्त विश्व सूर्य के प्रकाश से जागृत हो रहा है। प्राणी समूह जड़ता त्याग कर चैतन्यवान हो रहा है! सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। वयोवृद्धलोग सूर्य को ही प्रत्यक्ष ईश्वर के रूप में नमस्कार कर अर्घ्यदान कर रहे हैं। काव्य का प्रथम दृश्य यही है। सूर्यनमस्कार के समय सुदूर, नील सागर के उपरितल पर सूर्य किरणों के प्रसार को कवि ने प्रतिदिन देखा होगा। बाह्य अन्धकार के निवारक उस ज्योतिपुंज के साथ हृदयान्धकार निवारक भगवान् कार्त्तिकेय के ज्ञान प्रकाश का कवि को स्मरण हुआ। सूर्योदय के वर्णन के साथ बाल कार्तिकेय का सौन्दर्यपूर्ण वर्णन यहीं से शुरू होता है।

प्रारम्भ में कार्त्तिकेय केवल एक प्रकाशपुञ्ज के रूप में भासित होता है। उसके बाद वह नीलमयूर के साथ लोहित शरीरवान् के रूप में व्यक्त होता है। कवि ने भक्त पूर्ण होकर भगवान् कार्त्तिकेय के गुण-गणों का वर्णन ओजस्वी शब्दों में किया है। कार्त्तिकेय के दर्शनार्थी कवि के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न कर अभिलाषित फल पाने के लिये उत्साहित

करते हुए कवि नक्कीरर भगवान् के विराजमान ६ स्थानों का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। तिरुप्परंकुन्रम्, तिरुच्चीरलैंवाय, तिरुवाविनंकुडि, तिरुवेरगम्, कुन्रुदोराडल और पलमुदिचोलै ये ६ भगवान् के निवास भूमि हैं। इन ६ स्थानों में से तिरुप्परंकुन्रम् का मार्गदर्शन ही प्रथम किया गया है। मार्गदर्शन में प्रवृत्त कवि नक्कीरर पाण्डियों की राजधानी मदुरा और उसकी महिमा का वर्णन भी करते हैं। यहाँ कवि ने मदूरा का चित्ताकर्षक वर्णन किया है। मदुरा स्वयं भी सोमसुन्दर भगवान् का निवास भूमि है। कवि का मार्गदर्शन मदुरा से प्रारम्भ होता है। मदुरा के पश्चिम की ओर तिरुप्परंकुन्रम् विद्यमान् है। कुन्रम् पर्वत को कहते हैं। कवि ने इस कुन्रम् तथा पार्श्वस्थ धान के खेत, तडाग, तडाग में विद्यमान् विकसित कमल, और भ्रमरों का वर्णन किया है। इस प्रकार उस कुन्रम् तथा कुन्रम् के मार्ग और कुन्रम् के आस-पास के स्थानों का रमणीय वर्णन करते हुए कार्त्तिकेय के विराजमान स्थान का कवि ने निर्देश किया है।

भगवान् के द्वितीय स्थान तिरुच्चरलैंवाय है। इस पवित्र स्थान के वर्णन करते हुए कवि ने भगवान् कार्त्तिकेय के छः मुख और बारह करों के कृत्यों का वर्णन किया है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि से बाह्य अन्धकार ही निवृत्त होता है। अन्तःकरण का अन्धकार भगवान् के ज्ञान प्रकाश से निवृत्त होता है। भगवान् के ज्योतिर्मय मुख से अज्ञानान्धकार-निवारक ज्ञान प्रकाश निकलता है। भगवान् का दूसरा मुख भक्तों को अभीष्ट वर देता है। उनके तीसरे मुखने सूरपद्म का नाश किया। वह देवों के विरोधी असुरों का नाशक है। वह ब्राह्मणों के यागों का भी रक्षक है। चन्द्र के समान उसका चौथा मुख शास्त्रों के गूढ़ार्थ का प्रकाशक है। भगवान् कार्त्तिकेय वीरों का वीर है। उसका पाँचवाँ मुख युद्ध में विजय प्राप्त करता है। कार्त्तिकेय भगवान् का छठा या अन्तिम मुख वल्ली नामक बन कन्या का गान्धर्व विधि से परिणय कर प्रणयकेलि करता है।

छः मुखों के इन समस्त कृत्यों में भगवान् के १२ कर मुख के अनुरूप काम करते हैं।

कार्त्तिकेय का तृतीय विराजमान स्थान तिरुवाविनंकुडी है। उनके दर्शनार्थ मुनि, और देवगण आते हैं। उनके साथ शिव, विष्णु, इन्द्र एकादशरुद्र, द्वादश आदित्य, अष्टवसु, अश्विनीकुमार, यक्षरक्ष गन्धर्व, किन्नर किंपुरुष आदि लोग भी आ रहे हैं। इन सब का आने का उद्देश्य बन्दीकृत ब्रह्मा को मुक्त कराना था। एक बार ब्रह्मा ने भगवान् कार्त्तिकेय की उपेक्षा की और पूछने पर वे प्रणव का रहस्य न बता सके। इन्हीं कारणों से कार्त्तिकेय ने ब्रह्मा को बन्दी बना दिया।

भगवान् का चतुर्थ निवास स्थान तिरुवेरगम् है। षट्कर्मनिरत ब्राह्मण वहाँ उनकी स्तुति करते हैं। वे सब ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन कर वेद के अभ्यास करने वाले हैं। धर्म का सम्यक् परिपालन हो यही उनका प्रमुख लक्ष्य है। आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि की स्थापना कर वे नियमित रूप से उन अग्नियों की उपासना करते हैं। उनका जपनीय मन्त्र—ओं शिवायनमः—यह षडाक्षर मंत्र है। पुष्पाञ्जलि समर्पणपूर्वक वे भगवान् की सतत स्तुति करते हैं।

कार्त्तिकेय निसर्गत: पर्वतवासी हैं। वह प्रत्येक पर्वत में अवश्य रहता है। अत: भगवान् के पाँचवें निवास स्थान 'कुन्रुदोराडल' नामक पर्वत में भी वह रहता है। वहाँ की वासी वन्य जनता कार्त्तिकेय के विशेष अनुयायी हैं। कार्त्तिकेय की पूजा में वन्यजाति के नरनारी वन्यनृत्य (कुरवै) करते हैं। भगवान् स्वयं भी वन्यकन्याओं के साथ नृत्य करते हैं। इससे उनको अनिर्वचनीय आनन्द होता है।

कार्त्तिकेय सौन्दर्य प्रिय है। वन्य जनता के समान वह अनेक प्रकार की वस्तुओं से अपना अलंकरण करता है। निसर्गत: उनका शरीर अरुण वर्ण का है। उनका वस्त्र और आभरण भी लाल वर्ण का ही है। रक्त वर्ण के अशोक किसलय को वे अपने कानों पर रख लेता है। वह मुरली भी बजाता है। तब वह बहुत ही मनोहर लगता है। उसके वाहन अज, गज और मयूर हैं। आजानुबाहु कार्त्तिकेय कानों में कुण्डल और वाहुओं में वलय धारण करता है। भुजबल पराक्रम में निरूपम भगवान् कार्त्तिकेय वन्यकन्याओं का मधुर परिरम्भ करता है। इस प्रकार सरस वर्णन करते हुए कवि भगवान् के छठे स्थान—पलमुदिरचोलै का वर्णन करते हैं। अन्त में कवि नक्कीरर—अपने अनुभव का कथन करते हुए दर्शनार्थी कवि को प्रेरित करते हैं कि इन स्थानों में भगवान् का दर्शन करके अभीष्ट फल पावें। इन छ: स्थानों के अतिरिक्त स्थानों में भी भगवान् की व्यापकता का कवि ने उल्लेख किया है। इस काव्य में भगवान के लिये—कार्त्तिकेय, शिवकुमार, पार्वतीनन्दन, शत्रुसंहारक, दुर्गापुत्र, देवसेनापति, मालाधारी, ज्ञानपण्डित, गान्धर्ववीर, भालायुध, क्रौंचसंहारक, कवि शिखामणि, अनाथ रक्षक, विशालवक्ष, सूर संहारक, और दानशील आदि अर्थ सूचक संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

बादल, हवा और मौसम से सम्बन्धित शब्दावली

[अलीगढ़-क्षेत्र की बोली के आधार पर]

जब आकश में समुद्र का पानी भाप बन कर छा जाता है, तब उसे बादर (सं० वार्दल > बादल > बादर) कहते हैं। यदि आकाश के थोड़े-से घेरे में छोटा-सा बादल ठहरा हुआ हो तो वह बदरिया या बदरी (बदली) कहलाता है। आकाश के थोड़े से बीच में किसी एक दिशा से उठता हुआ बादल धरवा कहाता है। काले रँग का धरवा उठकर यदि सारे आकाश मे छा जाय, तो उस रूप को घटा या कारी घटा कहते हैं। घटा के सम्बंध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

कारी घटा डरपावनी, सेत भरैंगी के खेत ।।लोको० ।।[1]

यदि काली घटा अधिक समय तक आकाश में छाई रहे तो उसे जमन या जमैन कहते है। यदि दो काले धरवों के बीच में एक सफ़ेद बदरिया आ जाय तो वह थेगरो कहाती है। उठे हुए सफ़ेद धरवों को रूगालौ कहते हैं। यदि बादल घिरा हुआ हो, पानी बरसता न हो और हवा भी बन्द-सी हो तो उस वातावरण को घुमड़न या घुटन कहते हैं। आकाश के तारों के समूह को तारई (सं० तारागण > ताराइन > तारई) कहते हैं। यदि आकाश में बादलों के साथ तारई भी छिटक रही हों तो वह बादल खोलिया या तारइयाँ कहाता है।

अलीगढ़-क्षेत्र की जनपदीय बोली में बादल प्राय: चार प्रकार के प्रसिद्ध हैं— (१) भदकैला जिसमें पानी कम हों। कहीं काला और कहीं कुछ-कुछ सफ़ेद हो। (२) जमैला-जिसमें पानी अधिक हो और रँग में सारा काला हो। (३) उनैयां-जिसमें भाप धनीभूत होकर समाविष्ट हो और काफी नीचे भी आ गया हो। (४) बरसौंहा-ये बादल काले, घने और बरसाऊ होते हैं। इन्हें देखकर किसान को ध्रुव विश्वास हो जाता है कि घहधड्ड का मेंह (बड़े जोर की बर्षा) पड़ेगा।

---

१. काली घटा बरसती नहीं, बल्कि डरपाती है और सफेद खेत भरती है।

कुछ बीच में काले बादल हों और कुछ बीच में सफेद; लेकिन दोनों प्रकार के बादल एक दूसरे से मिले हुए हों तो उस वातावरण को धूपछाहीं कहते हैं। यदि आकाश में थोड़ी-थोड़ी देर में बादल छा जाँय और धूप भी निकल आवे तो उस घम-छाहीं कहलाती है।

लोकोक्ति है:—

'रात दिना घमछाहीं। अब बरखा कछु नाही।।" लोको० ।।[2]

जिन बादलों का रँग तीतर के पंखों के रँग से मिलता हो, अर्थात् जो बहुत काले न हों, वे तीतरबन्ने (सं० तित्तिरवर्णक) कहाते हैं। तीतरबन्नी बदरिया अवश्य मेह बरसाती है:—

"तीतर बन्नी बादरी, विधवा काजर-रेख।
वह बरसै यह घर करै, जामें मीन न मेख।।" लोको० ।।[3]

कबीर ने भी 'तीतरबानी बादरी' का उल्लेख किया है और उससे मेह का बरसना बताया है[4]।

जब पूरे दिन आकाश में बादल छाये हुए रहे, नाम को भी धूप के दर्शन न हों, मौसम कुछ ठंड का हो; लेकिन वर्षा न हुई हो, तो उस वातावरण को उनमनि कहते हैं। यदि मौहासों (जाड़ों के दिन) में ऐसी दशा एक अठवारे (सं० अष्टवारक=आठ दिन की अवधि) तक रहे तो खेती पीली पड़ जाती है, और उस समय बेचारे किसान के गोड़[5] टूट जाते हैं। निराश एवं हतोत्साह के अर्थ में 'गोड़ टूटना' मुहावरा प्रचलित है। यदि निरन्तर एक दिन और एक रात (२४ घंटे तक) आकाश में बादल छाये हुए रहें और रिमझिम रिमझिम मेह भी बरसता रहे अर्थात् थोड़ी-थोड़ी बूँदें भी इस तरह पड़ती रहें कि गिरारों (गलिहारों) में कीच कांद (सं० कर्दम>काँद) भी हो जाय, तो वह वातावरण गोहच कहाता है। आकाश में बादल चलता हो तो उसे बदल चल (खुर्जे में) कहते हैं। छोटे-छोटे ओलों को कंकरी कहते हैं। छोटे समय कुछ ही समय पड़कर फिर तुरन्त बन्द हो जायँ तो उस तरह ओलों का बरसना छाल कहाता है। बड़े-बड़े ओलों का गिरना 'खिसलना' कहलाता है।

---

२. आकाश में दिन रात घमछाहीं रहे तो वर्षा नहीं होगी।

३. जिस बदली का रंग तीतर के पंखों का-सा होगा, वह अवश्य मेह बरसाएगी। जो विधवा स्त्री आँखों में बारीक काजल लगायेगी, वह अवश्य ही किसी पुरुष के साथ भाग जाएगी। इन दोनों बातों के होने में कोई सन्देह नहीं है।

४. "कबीर गुण की बादरी, तीतर बानी छाँहि।
बाहिर रहे ते ऊबरे, भीगे मन्दिर माँहि।। क० ग्रं०, माया कौ अंग, दो० १३।

५. मृच्छकटिक (निर्णय सागर, १९१६ ई०, पृ० १२०) में पाँव के अर्थ में 'गोड़' शब्द प्राकृत में प्रयुक्त हुआ है—प्रा० गोड>गोड्ड>हिं० गोड़।

बादल की आवाजों के लिए जनपदीय बोली में गड़गड़, दूँकन, तड़कन, गरजन और लरजन शब्द खूब चलते हैं। बिजली चमकने के अर्थ में लहकना, चमकना, और कौंधना धातुएँ प्रचलित हैं। यदि बिजली बहुत पतली रेखा के रूप में चमकती है तो उसे लहकना कहते हैं और यदि अधिक प्रकाश और बहुत बड़े रूप के साथ चमकती है, तो उस समय कौंधना धातु का प्रयोग होताहै जैसे—बीजुरी कौंध रही है या कौंधा मार रही है। अचानक कहीं पर बिजली का गिर जाना, 'गिरई' पड़ना कहलाता है। पुरवाई (सं० पुरोवात) चल रही हो और बादल चमकता हुआ पश्चिम दिशा से उठे, तो उसे उलटा धरवा कहते हैं। पुरवा हवा चलते समय यदि बादल पूरब दिशा से उठे तो उसे सीधाधरवा कहते हैं। उलटे धरवे पर एक लोकोक्ति भी प्रचलित है:—

"उल्टौ धरवा जो चढ़ै, राँड़ मूँड ते न्हाइ।
घाघ कहै सुन घाघिनी, वह बरसै यह जाइ॥" लोको० ॥[६]

पश्चिम दिशा से चलने वाली हवा पछैयां, पछहियां या पछादिया (अत० में) कहलाती है। पश्चिम दिशा को पछांह कहते हैं। यदि पछैयाँ चल रहा हो और पछाँह से ही बादल उठे तो उन्हें पछाँये बादर कहते हैं। इनसे वर्षा की आशा बहुत कम होती है प्रसिद्ध है—

"पछाँयौ बादर। लबार कौ आदर॥" लोको० ॥[७]

अलीगढ़-क्षेत्र की जनपदीय बोली में वर्षा के भी अनेक नाम हैं। यदि ऐसी घनघोर वर्षा हो कि मिट्टी के बड़े-बड़े ढेर और मामूली-सी छोटी दीवालें तक रेला (पानी के प्रबल वेग) के प्रभाव से बह जायँ तो उसे पनियाढार मेह कहते हैं। उससे कुछ हल्की वर्षा मूसलाधार और मूसलाधार से हल्की मुसकधार (फ़ा० मशक=पानी के लिये काम आने वाला बकरी की खाल का एक थैला) कहाती है। वर्षा के सम्बन्ध में एक लोक-गीत भी प्रचलित है—

"मेघ मालनु ते कह्यौ ललकार।
ब्रज पै बरसैं पनियाँढार॥
उमड़ि घुमड़ि ब्रज घेरिकें, उठी घटा घन घोर।
चम-चम चमकें बीजुरी, चौंके ब्रज के मोर॥
मुसकधार जल रेला के सँग सुरपति बरसायौ।
धरि नख पै गिर्राज नामु गिरधारी है पायौ॥"

—(हाथरस से प्राप्त एक लोक गीत)

६. यदि उल्टा धरवा चढ़े अर्थात् पुरवा हवा चलते समय बादल पश्चिम से पूरब को जायँ तो वर्षा अवश्य होगी। यदि राँड़ (सं० रण्डा) स्त्री सिर खोलकर न्हावै तो यह निश्चय है कि वह किसी के साथ अवश्य भाग जाएगी। ऐसा घाघ अपनी स्त्री से कहते हैं।

७. पछवा हवा के समय पश्चिम दिशा से उठा हुआ बादल लबार (झूठा) व्यक्ति के आदर की भाँति व्यर्थ है।

मेह यदि एक दम बरसकर फिर तुरंत ही बन्द हो जाय तो उसे झला या झलूकरा कहते हैं। दो-चार बूँदों का थोड़ी-थोड़ी देर में पड़ना बूँदें किनफना कहलाता है। कुछ समय के लिए जब हवा के साथ लहराती हुई नन्ही-नन्ही बूँदें बरसती हैं तब उन्हें लहरुए कहते हैं। हवा के साथ कुछ भारी बूँदों का पड़ना पौछार या बौछार कहलाता है। छोटी-छोटी बारीक-सी बूँदें कुछ देर बरसती रहें तो उस वर्षा को झन्ना (झरना) कहते हैं। यदि बहुत समय तक झन्ना झरता रहे तो वर्षा का वह रूप रिमझिम, मेहासिन या झिनमिन कहाता है। सबेरे से साँझ तक अथवा निरन्तर दो-तीन दिन तक थोड़ा-थोड़ा मेंह बरसता रहे तो उसे झरलगना कहते हैं। झर बन्द हो जाने के बाद भी आकाश में यदि बादल छाये हुए रहें तो उस वातावरण को 'भर' कहते हैं।

एक साथ यदि ऐसा मेह पड़े कि किसानों के खेत भर जायँ तो उसे भन्न कहते हैं। उस भन्न से चार छः जिलों में एकसी ही वर्षा हुई हो तो वह जगभन्न कहलाती है। बड़ी-बड़ी बूँदें कुछ देर तक ही पड़े तो उन्हें बूँदाकड़े (खुर्जे में) या सरभरे कहते हैं। कालिदास ने बुँदाकड़ों के लिए 'वर्षाग्रबिन्दु' शब्द का प्रयोग किया है।[८]

वर्षा की मात्रा के अनुसार किसानी बोली में मेह के कई नाम हैं। कूँड-भरौआ; किरिआ भरौआ; पिछौरियानिचोर, मेंड़तोड़ और तालतोड़ आदि वर्षा के जनपदीय नाम हैं। यदि एक मेह किसी जगह पड़ जाय लेकिन ४-६ कोस की दूरी पर न बरसे तो उसे बूँदाबांदी कहते हैं। असाढ़, सावन, भादों और क्वार के महीने चौमासे (चतुर्मास) कहाते हैं। चौमासे के आरम्भ में मेंह का एक दम बरसन दौंगरा कहाता है। दौंगरे का मेंह काफी देर तक झल्ले के साथ बरसता है, फिर बन्द हो जाता है। जायसी ने इसी के लिए पद्मावत में 'दवँगरा'[९] शब्द का प्रयोग किया है।

यदि इतनी घनघोर वर्षा हो कि खेती पानी से गलने लगे तो उसे गरकियामेंह कहते हैं। गैल (रास्ता) और गिरारों (गलिहारा=गली का रास्ता) में जब वर्षा का पानी भर जाता है, तब मनुष्य और पशु आदि के चलने से जो ध्वनि होती है, पानी की उस ध्वनि को छपर-छपर कहते हैं।

आकाश में बादल निरन्तर दो-तीन दिन तक ऐसे छाये रहें कि सूर्य के दर्शन तक न हों और वर्षा भी होती रहे; तो फिर एक दिन आकाश स्वच्छ हो जाय और सूर्य का प्रकाश भी दिखाई देने लगे तो उस वातावरण को ऊझनौ या उघार कहते हैं। 'उघार' से नाम धातु 'उघरना' प्रचलित है। उघार देखकर किसान कह उठता है कि—'अब तो बादरु उघरिगयौ' अथवा अब तौ ऊझनौ है गयौ।

---

८. "वैश्यास्त्वत्तो नखपदमुखान् प्राप्यवर्षाग्रबिन्दून्।"
डा० वासुदेव शरण अग्रवाल : मेघदूत एक अध्ययन, पूर्वमेघ श्लोक, ३५।

९. 'दीठि दवँगरा मेरवहू एका।"
—रामचन्द्र शुक्ल (संपादक): जायसी-ग्रन्थावली, पद्मावत, काशी ना० प्र० सभा, ३०-१४-७

हवाएँ

रेत के बवँडर के साथ चलने वाली तेज हवा आंधी कहाती है। हवा तेज न हो लेकिन आकाश में धूल पूरी तरह छा गई हो तो उसे अन्ध कहते हैं। यदि आँधी के साथ-साथ मेह भी पड़ने लगे तो वह अंरवाउ कहाता है। वर्ष भर में जितनी हवाएँ चलती हैं, उनके नाम अलीगढ़ क्षेत्र की बोली में अलग-अलग यहाँ पर लिखे जाएँगे।

जेठ के महीने में वह तेज झोंकेदार गर्म हवा चलती है, वह झांक या झाय कहलाती है। झांकें लू (आग की लपट) के साथ चला करती हैं। अथर्ववेद (१२–१–५१) में 'मातरिश्वा'[१०] वायु का वर्णन आया है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'पृथिवी-पुत्र' (पृ० २१४) में मातरिश्वा को भारतीय मानसून या मौसमी हवा के लिए प्रयुक्त प्राचीन शब्द माना है। अलीगढ़ क्षेत्र की जनपदीय बोली में 'मातारिश्वा' को हम झांकें कह सकते हैं। जेठ के अन्तिम दिनों की झाँकें तपा कहलाती हैं। जब चिल-चिलाती धूप की गर्मी के साथ जेठ की इन दस तपाओं अर्थात् दस दिनों (आद्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक) में निरन्तर झाँकें चलती रहें तो वह तपा तपना कहाता है। यदि किसी कारण उक्त दस दिनों में किसी दिन दस-पाँच बूँदें पड़ जायँ तो उसे तपा तूना या तपा तुइजाना कहते हैं। तपाओं के दस दिनों में यदि किसी दिन बादल हो जाते हैं, तो वह तपा बिगड़ना कहाता है। तपा तुइ-जाना या तपा बिगड़ना अच्छा नहीं माना जाता क्योंकि इससे संवत् बिगड़ता ही है। लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"तपा जेठ मे जो तुइ जाय। तौ बरखा हेठी परिजाय ॥" लोको०[११]

"जेठ उजारे पाख में, अद्रा सँगदस रिच्छ।
बरसै तो सूखा परै तपै तौ संवत् अच्छ ॥" लोको०[१२]

---

१०. यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्या वयंश्च वृक्षान्। वातस्य प्रवामुप वामनु वार्त्यचि ॥ अथर्ववेद १२–१- ५१।

अर्थात् जिस पृथ्वी पर धूल के बँधने (बवंडर) उठाता हुआ और बड़े-बड़े वृक्षों को गिराता हुआ मातरिश्वा पवन बड़े वेग से बहता है और जिसके साथ आग की लपटें अर्थात् लुएँ भी चला करती हैं।

११. मृगशिर नक्षत्र व्यतीत हो जाने पर ज्येष्ठ में दस तपाओं में से यदि एक तुइ जाय तो निश्चय ही चौमासों में वर्षा अच्छी नहीं होती।

१२. ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष में आर्द्रा, पुनर्वसु, पुण्य, श्लेषा, मघा, पूर्वा, फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्र और स्वाति नक्षत्र बरस जायँ तो चौमासों में सूखा पड़ेगी और यदि ये उक्त दस नक्षत्र निरन्तर तपते रहें, तो वर्ष अच्छा रहेगा।

जायसी ने भी 'दस तपाओं' का उल्लेख किया है।[१३]

एक दखिन पछोहीं ब्यार (दक्षिण पश्चिम की दिशा से चलने वाली हवा) हड़होड़ा कहलाती है। अवध के गाँवों में इसे ही हउँहरा या होहरा (सं० हविधारक=हवि+धारक; हवि=आँच, लू, लपट) कहते हैं। जौनपुर आदि अन्य पूर्वी जिलों में यही हवहरा, हउहरा या हड़हवा के नाम से प्रसिद्ध है।[१४] हड़होड़ा हवा बहुत गर्म होती है। इसके प्रबल झोंके वृक्षों को झकझोर डालते हैं। इसे चलता हुआ देखकर किसान वर्षा की ओर से निराश हो जाता है और समझ लेता है कि अब हाल के जूए का नरा या नारा (चमड़े की एक मोटी पटार जिससे हर्स में जूआ बाँधा जाता है) खोलकर रख देना चाहिए और हल चलाना छोड़कर अन्य कोई कार्य करना चाहिए। इसीलिए हड़होड़ा हवा को नराटँगनी या नारेटाँगनी भी कहते हैं। हड़होड़ा के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रचलित है--

"कै हड़होरा हाड़ बखेरै। कै घोंटुन तक पानी फेरै।।" लोक०।।[१५]

हड़होड़ा हवा को हाड़ा (अतरौली में), हुड्डा (खुर्जे में) नेरती (इगलास में) सं० नैर्ऋतिका—नैरती) या टेढ़रिया (सादा० में) कहते हैं। हड़होड़ा कुछ रुकरुककर तो चलती हो, लेकिन उसके झोंके जौंहर (फा० जोर) के होते हैं। लोकोक्ति है--

"पुरब-पछैयाँ पूरी-पूरी। हड़हड़होड़ा की बान अधूरी।।" लोको०।।[१६]

फागुन के दिनों में एक शीतकारक, तेज, झोंकेदार तथा हड़कंपी हवा चलती है, जिसे फग्गुन ब्यार कहते हैं। जौनपुर के जिले में यही फगुनहटा के नाम से पुकारी जाती है। संभवतः इसके लिए ही 'जायसी' ने झकोरा पवन लिखा है[१७]।

---

१३. "काह भएउ तन दस दिन डहा। जौ बरखा सिर ऊपर अहा।।"
डा० माताप्रसाद गुप्त (सं०): जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत ४२८।५
"दिन दस जल सूखा का नंसा। पुनि सोइसरवर सोई हंसा।।" वही, ३४३।७

१४. डा० वासुदेवशरण अग्रवालः पृथिवी-पुत्र पृ० १७३।

१५. हड़होड़ा हवा चलेगी तो वह दो में से एक प्रभाव अवश्य दिखाएगी। या तो सूखट डालेगी जिससे बेचारे किसान की मौत सी हो जायगी और शरीर की हड्डियाँ-सी बिखर जायँगी। यदि ऐसा नहीं करेगी तो फिर इतनी वर्षा लायेगी कि खेतों और गलिहारों में घुटनों तक पानी ही पानी दीखेगा।

१६. पुरवा हवा और पछुआ हवा तो एक गति से पूरे समय तक चलती है; किन्तु हड़होड़ा आधी चाल के साथ चलती है। उसकी बान (आदत) ही अधूरी गति से चलने की है।

१७. "फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइनहिं सहा।।"
—रामचन्द्र शुक्ल (संपादक): जायसी, ग्रंथावली, पद्मावत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, ३०।१२।१

उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा से एक हवा चलती है, जिसे सूअरा, सूअरी या सूरा (माँट में) कहते हैं। यही चंडौसा[18] (संभवतः सं० चण्डवर्षक—चंडौसा—खैर-खुर्जे में) उत्तरखण्डी (हाथरस में) या हरद्वारी (अतरोली में कहाती है।) सूअरी ब्यार (शूकरी वायु) के सम्बन्ध में कई लोकोक्तियाँ प्रचलित है :—

"ब्यार चलैगी सूअरा। नाजु न खांगे कूकुरा।।" लोको०[19]

"सावन में सूअरा चलै; भादों में पुरवाइ।
क्वार पछैयां जो चलै कातिक साख सवाइ। लोको०[20]

"चली सूअरा ब्यार खुड़ी में पानी प्यावै।" लोको०[21]

इस लोकोक्ति की व्याख्या के सम्बन्ध में एक लघु लोककथा प्रचलित है जो इस प्रकार है—

"एक पोत[22] असाढ़ लगतई एक सूअरियाने आठ बच्चा डारे और अपनी खुड़ी (सूअरों के रहने का स्थान जो छोटी सी कोठरी की भाँति होता है।) में परी रही। ब्याइबे के बाद ग्वाइ[23] बड़े जौंहर (जोर) की प्यास लगी और सूअर ते वोली—नेंक मेरेलें पानी लै आऔ, प्यास के मारें मेरी जान निकर रही ऐ। सूअर ने जा घड़ी सूअरिया की बात सुनी, ताई घड़ी गँगाई लँग[24] (= गंगा नदी की ओर अर्थात् उत्तर दिशा में) आगासऐ[25] देखन लग्यौ। गँगाई लँग की सीरी-सीरी सूअरा (सूअरिया) ब्यार चलति भई देखिकें सूअर सूअरिया ते कहन लगौ—'नेंक देर को बातऐ, धीरजु धरि, अब सूअरा ब्यार चलन लगी है; सो तू निसाखातर रहि (निश्चिन्त रह)। ईसुर नैं चाही तो एक लहमा (लमहा = क्षणमात्र) में ही ऐसौ मेहु मारैगौ कि तरी खुड़ी पानी ते तलातल[26] भरजायगी। तब तू खूब झिककैं (तृप्ति के साथ) पानी पी लय्यो (पी लेना)।"

---

१८. चंडौस नाम का एक गाँव भी है जो खैर से उत्तर पश्चिम दिशा में है।
१९. यदि सूअरा हवा चलेगी तो घोर वर्षा के कारण इतना अनाज पैदा होगा कि रोटियाँ खाते-खाते कुत्ते भी ऊब जायँगे। भाव यह है कि संवत् बहुत अच्छा होगा।
२०. यदि श्रावण मास में सूअरा हवा, भाद्रपद में पुरबाई और आश्विन में पछवा हवा चले तो कातिक की फसल सवाई होती है।
२१. हे सूअरिया! अब सूअर हवा चलने लगी है, अतः वह स्वयं आकर तेरी खुरी में ही तुझे पानी पिलायेगी।
२२. बार।
२३. उसे।
२४. ओर, तरफ।
२५. आकाश को।
२६. पूर्णतया, लबालब।

—(अलीगढ़ क्षेत्र की तहसील कोल में सुनी हुई)

'जौ चण्डौसा चमकैगौ तो रेलमपेला बरसैगौ ।।"

(तह० खैर से प्राप्त) लोको० ।।[२७]

"जौ चण्डौसा रमकैगौ दिन राति दनादन बरसैगो ।।"

(तह० खुर्जे से प्राप्त) लोको० ।।[२८]

पूरब दिशा से चलने वाली हवा पुरवाई (सं० पुरोवात) कहाती है। प्रभाव और गुण के विचार से यह चार प्रकार की होती है—(१) रांड़पुरवाई (२) सुहागिल पुरवाई (३) झबूकरा या झब्बरा (४) आमझूरनी।

रांड पुरवाई में गर्मी की लटक तो होती है लेकिन मेह नहीं बरसाती। सुहागिल पुरवाई में ठण्डक (शीतलता) होती है और निरन्तर चलने पर तीसरे दिन मेह बरसा देती है। लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं:—

"जो जेठ चले पुरबाई तो सावन सूखो जाई।" लोको। [२९]

"पुरवाई सीरी चलै, विधवा पान चबाइ।

वह लै आवै मेह कूँ, यह काहू करि जाइ।। लोको० ।।[३०]

× × × ×

"सावन मास चले पुरवैया। बद्ध बेचिके लेलेउ गय्या ।।" लो० ।।[३१]

जो पुरवाइ रुक रुक कर झोंकों के साथ चलती है, उसे झबूकरा या झब्बरा कहते हैं। जेठ मास में झबूकरा पुरवाई यदि अधिक दिनों तक चलती रहे तो सूखा पड़ती है; अर्थात् संवत् बिगड़ जाता है। प्रसिद्ध है—

"दिन में बद्दर रात निबद्दर। पुरवाई चले झब्बर झब्बर ।।

घाघ कहै कछु होनी होई। खेती जरामूड़ ते खोई ।। लोको० ।।[३२]

---

२७. इसका अर्थ आगे लोकोक्तियों में लिखा है।

२८. यदि चण्डौसा हवा धीरे-धीरे चलेगी, तो दिन-रात दनादन (बड़े जोर का) पानी बरसेगा।

२९. यदि जेठ मास में पुरबाई चलेगी तो सावन में सूखा पड़ेगी।

३०. यदि पुरवा हवा ठण्डी-ठण्डी चले तो मेह अवश्य पड़ेगा और यदि राँड स्त्री पान खाने लगे, तो समझलेना चाहिए कि वह अवश्य किसी पुरुष को करके भाग जाएगी। विशेष—विधवा स्त्री जब किसी की पत्नी बनना चाहती है तो 'करना' धातु का प्रयोग होता है।

३१. यदि सावन में पुरवाई चलने लगे तो बैलों को बेचकर एक गाय लेलो क्योंकि वर्षा न होने से खेती मारी जायगी; अतः अन्न और भुस नहीं होगा।

३२. यदि दिन में बादल रहें, रात को आकाश साफ रहे और झब्बरा पुरवाई झबर-झबर चलने लगे तो घाघ कहते हैं कि कुछ होनी (भवतव्यता) होगी। इन लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है कि खेती जड़मूड़ से (पूरी तरह) मारी जायेगी

बौर आ जाने के उपरान्त आम के पेड़ पर जब छोटी छोटी गोलियों की भाँति अमियाँ लगती हैं, तब उस दशा को आम के पेड़ का अमियाजाना कहते हैं। जब आम का लस (एक द्रव) पत्तियों पर बह जाता है और पत्तियाँ चमकने लगती है तब उसे आम का लसिया जाना कहते हैं। लसियाजाने पर आम गर्भ धारण नहीं करता। झबूकरा से भी तेज चलने वाली एक पुरवाई आमझूरनी कहाती है। इसके कुप्रभाव से आम अमियाना बन्द कर देते हैं। आमों के सैंकड़ों पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं और वे नंगे-से दिखाई देने लगते हैं। लेकिन वर्षा के सम्बन्ध में आमझूरनी पुरवाई बड़ी अच्छी है। प्रसिद्ध है—

"आम झूरनी" । साध पूरनी । लोको० ।।[33]

सावनी पुरवाई सं० (श्रावणीय पुरोवात) और भदैयां पछैयां (भादों की पछवा हवा) किसान की खेती के लिये आधि-व्याधि हैं। लोकोक्ति है—

"सावन पुरवाई चलै, भादों में पछियाइ ।
कन्थ ! डंगुरन बचि के, लरिका लेव जिवाइ ।।लोको०।।[34]

भादों में मेह बरसना खेती को सर्वाधिक लाभदायक है। यदि पुरवाई भादों में चलकर मेह न बरसाये तो खेती में जान नहीं आती। वह पतली और हलकी ही रहती है। प्रसिद्ध है—

'बिन भादों के बरसे, बिना माइ के परसे" ।। लो०।। [35]

भादों के पछैयाँ के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"जै दिन भादों पछिया ब्यार। तै दिन माह में परै तुसार।।"लोको०।।[36]

इसी प्रकार जेठ की पुरवाई का प्रभाव पड़ता है—

"जै दिन जेठ चलै पुरवाई, तै दिन सावन सूखो जाई ।। लोको०। [37]

सावन भादों में बड़े जोर से चलने वाली एक हवा का नाम बैंहरा है। बैंहरा आकार और प्रभाव में फग्गुन ब्यार का ही सगा भाई है। यह इकलत (लगातार) एक

---

३३. आमझूरनी पुरवाई सबके लिए साधपूरनी (सं० श्रद्धापूर्ण=इच्छापूर्ण करने वाली) है।

३४. सावन में यदि पुरवा हवा चले और भादों में पछवा, तो हे कान्त! पशु बेचकर जैसे तैसे अपने बालबच्चों को जीवित रखो क्योंकि सूखा के अकाल पड़ेगा।

३५. भादों की बरसा के बिना किसान का और माता द्वारा दिये भोजन के पेट नहीं भरती है।

३६. भादों में जितने दिन पछवा हवा चलती है, माह में उतने ही दिन पाल पड़ता है।

३७. जेठ में जितने दिन पुरवाई चलती है, सावन के उतने ही दिन सूखे रह जाते हैं अर्थात् वर्षा नहीं होती।

अठवारे तक (आठ दिन तक) चलता रहता है। बैंहरे की रेल-पेल (दररे के साथ लगाया हुआ धक्का) ज्वार, बाजरा, मक्का और बन के पोधों को केवल झुकाती ही नहीं है बल्कि हरी खेती का बिछौना बिछा देती है जिसे देखकर किसान के दिल में घूँसा-सा बैठ जाता है। प्रारम्भ में चलते समय बैंहरा कुछ गर्म होता है और फिर प्रबल शीतकारक हो जाता है। बैंहरे को चलता हुआ देखकर चिन्तित किसान अपने दिल से कहने लगता है—

"जौहर पै है बंहरा। मक्का बचै न बाजरा ।।" लोको०।।[३८]

पूस और माह के महीनों में चारों ओर से लपेटा-सा मारती हुई एक बहुत ठंडी हवा चलती है जिसे चौबाई (सं०-चतुर वात>चउवाय>चउवाई>चौवाई) कहते हैं। यह तेज होती है और थोड़ी-थोड़ी देर बाद अपनी दिशा बदलदेती है। चौथाई से गेहूँ, जौ आदि की बाल का दाना पिच्ची हो जाता है। अवध के गाँवों में ऐसी ही एक हवा "झोला" नाम की है। प्रचलित है जिसका उल्लेख जायसी ने नागमती की वियोग गाथा के वर्णन में किया है।[३९]

चौवाई के कुप्रभाव से जब खेत मे बालों के दाने पिचकर पतले पड़ जाते हैं, तब उस दशा को खेत की ब्यार निकलना कहते हैं। चौवाई खैर और इगलास में 'चमर बावरी' के नाम से भी पुकारी जाती है।

जब रेत उड़ाती हुई गोले के रूप मे हवा चलती है तो उसे बगोला (सं० वातगोल) कहते हैं। इसमें हवा का गोला सा उठता है। बैसाख-जेठ की काली पीली तेज आँधियाँ अंधड़ा भी कहलाती है। कभी कभी हवा के तेज झोके प्राय: जेठ में उठते हैं। उनके भँवरों में पड़ी हुई धूल चक्कर काटती है और ऊपर काफी ऊँचाई तक उठ जाती है। उसे भूतरा, या भभूड़ा या भभूका कहदेते हैं।

पश्चिम दिशा से चलने वाली हवा पछैयाँ कहाती है। यह खुश्क होतो है। इसके दो-एक दिन चलने से पानी से गीले दिखाई देने वाले खेत फरैरे (=मामूली सी नमी जिनमें हो) हो जाते हैं। यदि निरन्तर दस-बारह दिन तक पछैयाँ चलता रहे तो खेती सूखी-सी दृष्टिगोचर होने लगती है। किन्तु मौहासों (जाड़ों) में कभी-कभी पछैयाँ से ही घहघड्डकी (बड़ी घनघोर) वर्षा होती है। माह-पूस में पछैयाँ को रमकता हुआ (मन्द-मन्द चलता हुआ) देखकर किसान हृदय में हुलसता हुआ कह उठता है—

"पुरवाई लावै थोर-थोर। पछहैयां बरसै घोर घोर ।।" लोक०।।[४०]

---

३८. बंहरा हवा अब जोरों से चलने लगी है अतः अब न मक्का बचेगी न बाजरा।

३९. "विरह पवन होइ मोर झोला"—जायसी-ग्रन्थावली पद्मावत, काशी नागरी प्र० सभा ३०-११-५६

४०, पुरवाई थोड़ा-थोड़ा पानी बरसाती है किन्तु पछैयाँ हवा घनघोर वर्षा करती है।

सामान्यतः पछवा हवा खेती को सुखाती ही है क्योंकि यह खुश्क होती है। पछैयाँ ब्यार वास्तव में पतसोखा (सं० पत्रशोषक) है। इसके प्रभाव से खेती की बालें सूखी और ढैनियाईं (जिसकी गर्दन नीचे को लटक गई हो) हो जाती हैं। कालिदास ने 'पत्राणामिव शोषणेन मरुता' (शाकुं ३।७) लिखकर सम्भवतः पतसोखा पछैयां हवा की ओर ही संकेत किया है।[४१] निम्नांकित लोकोक्तियाँ पछैयाँ हवा के प्रभाव को ठीक तरह से व्यक्त करती हैं।

"जब परिजाइ पछैयां बेंड़ौ।
देखो मती मेह को पेंड़ौ।।" लोक०।।[४२]

× × × ×

पुरवाई बावर करै, पछवा करै उघार।।" लोको०।।[४३]

चौमासे की वर्षा से आँती (तंग, परेशान) किसान पछैयाँ की रमक (मन्दगति) देखकर हुलसता है और कह उठता है:—

"चल्यौ पछैयाँ मन-हरखैयाँ।" लोको०।।[४४]

× × × +

"चलि गई ब्यार पछैयाँ। पंछी लेत बलैयाँ।।" लोक०।।[४५]

अलीगढ़-क्षेत्र के उत्तर में गंगा नदी और दक्षिण में यमुना नदी है। अतः उत्तर दिशा से चलने वाली हवा गँगतीरा या गँगार (अनू० में) कहाती है। दक्षिण दिशा से चलने वाली हवा को जमुनाई कहते हैं। दखिन पुँवाई (दक्खिन-पूरब दिशा से चलने वाली) हवा का नाम जमराजी[४६] (यमराज से सम्बन्धित) है। किसानों का विश्वास है कि जमराजी के चलने से सूखा पड़ती है—

---

४१. "पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी।"—(कालिदास, अभिज्ञान शाकुं, अंक ३ श्लोक ७)

४२. जब पछवा हवा निरन्तर बहुत दिन तक चलती है तब उसके प्रभाव मेह की आशा नहीं रहती।

४३. पुरवा हवा से आकाश में बादल छा जाते हैं और पछैयाँ हवा से आकाश में छाये हुए बादल हट जाते हैं अर्थात् उघार हो जाता है।

४४. मन को हर्ष प्रदान करने वाला पछैयाँ चलने लगा।

४५. पछैयाँ हवा चलने लगी; अतः पक्षिगण आनन्द से अपने बच्चों की बलैयाँ लेने लगे।

४६. श्री हर्ष ने दक्षिण वायु के लिए 'कालकलत्र दिग्भवः पवनः' (नैषध २।५७) लिखा है। बाण ने भी मृत पुण्डरीक के लिए विलाप करने वाले कपिंजल के मुख से कहलाया है—'दक्षिणानिल हतक ! पूर्णस्ते मनोरथाः'
—(कादम्बरी पूर्व भाग, महाश्वेतायाः अभिसार, सिद्धान्त विद्यालय कलकत्ता द्वितीय संस्करण, पृ० ६१९)।

"जमराजी चलै जब चलै समीरा।
पड़ै काल दुख सहै सरीरा।।" लोको०[४७]

दक्षिण दिशा से चलने वाली हवा दक्खिन ब्यार भी कहाती है। लोकोक्ति है—

"जो हरि हुँगे गरसनहार। कहा करेगी दक्खिन ब्यार।।" लोको०।।[४८]

यदि यही दक्खिन ब्यार माह के महीने में चलती है तो खूब वर्षा करती है:—

"माह मास में दक्खिन चलै। भरभादौं के लच्छिन करै।।" लो०।। [४९]

× × × ×

"दक्खिनी कुलिक्खिनी। माह पूस सुलक्खिनी।।" लोको०।।[५०]

उत्तर दिशा से चलने वाली एक हवा उत्तरा कहाती है। गँगतीरा (गंगानदी की ओर से चलने वाली हवा) और उत्तरा के सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"जो ब्यार बहे गँग तीरा। तौ निर्मल होइ सरीरा।।" लो०।।[५१]

× × × ×

"ब्यार चलैगी उत्तरा। माँड़ न पींवे कुत्तरा।।" लोको०।।[५२]

उत्तर-पूरब (ईशान) के कोने से चलने वाली हवा ईसान कहाती है। जेठ में जय यह हवा चलती है तो किसान समझ लेता है कि असाढ़-सावन में खूब वर्षा होगी। इसके सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"जो कहुँ ब्यार चलै ईसान ऊँचे पूठा बओ किसान।।" लोको०।।[५३]

× × × ×

---

४७. जब जमराजी हवा चलने लगती है तब अकाल पड़ता है और शरीर दु:ख उठता है।

४८. यदि ईश्वर को मेह बरसाना स्वीकार होगा तो दक्खिन ब्यार चलकर क्या कर लेगी?

४९. यदि दक्षिण की हवा माह के महीने में चलती है तो भादों की वर्षा की भाँति ही पानी बरसाती है।

५०. दक्षिण की हवा वैसे तो कुलक्षण है लेकिन माह-पूस में चले तो सुलक्षणा बन जाती है; क्योंकि वर्षा करती है।

५१. यदि गँगतीरा नाम की ठंडी हवा चलती है तो शरीर शीतल और स्वच्छ हो जाता है।

५२. यदि उत्तरा हवा चलने लगेगी तो वर्षा के कारण इतना धान पैदा होगा कि माँड़ को कुत्ते भी न पीयेंगे अर्थात् इतनी अधिक मात्रा में धान पैदा होगा कि फिँका-फिँका फिरेगा।

५३. यदि ईशान हवा चले तो हे किसानो! ऊँचे पूठों=(टीलों की फाँति ऊँचे धरातल के ढालू खेत सं०—पृष्ठक 7 पुट्ठअ 7 पूठों) पर बीज बोओ। क्योंकि नीचे धरातल वाले खेत वर्षा के कारण गल जायेंगे।

"सावन पछियां भादों पुरवा, क्वार चले ईसान।
कातिक कन्था! कुठिला भरिगये, ऊले फिरें किसान ।।" लोको०।।[५४]

क्वार में चलने वाली एक तेज हवा हिरनबाइ कहाती है। जो मनुष्य शीघ्रता से इधर-उधर घूमता है तो उसके लिए कहा जाता है कि—वह तो हिरनबाइ हो रहा है।

मौसम

चैत से लेकर फागुन तक के महीने तीन मौसमों में बँटे हुए हैं—(१) जेठमास अर्थात् गर्मी, (२) चौमासा (सं० चतुर्मासक) अर्थात् बरसात, (३) मौहासे अर्थात् जाड़ों के दिन। गर्मी के दिन, जिनमें गर्मी खूब पड़ती है, भायटे या भाइटे कहाते हैं। जाड़े के दिनों में होने वाली बरसा माहौट (सं० माघवृष्टि) कहाती है। 'माहौट' के लिए ही जायसी ने 'महवट' शब्द लिखा है।[५५]

अगहन की वर्षा जौ, गेहूँ, चना आदि के लिए अच्छी नहीं होती। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"अगहन बरसै बूढ़ी ब्याइ।
ऐसौ देस रसातल जाइ' ।। लो०।।[५६]

जेठ की कड़ी धूप में वायु के चलने से जो कुछ काँपता हुआ सा दिखाई देता है उसे बिलैया-लोटन, बिलै-नाच या भाँइन कहते हैं। चिलचिलाती कड़ी धूप में सफेद पटपरी का रेत दूर से जब पानी सा दिखाई देता है तो उसे औचक या पँडवारी कहते हैं। ये दोनों शब्द सं० मृगमरीचिका के लिए उपयुक्त होते हैं। जेठ में यदि जाड़ा पड़े तो खेती की हानि होगी, यह किसान का विश्वास है। इसके विषय में लोकोक्ति भी प्रचलित है—

"माह में गर्मी जेठ में जाड़। घाघ कहें अब होइ उजाड़" ।। लो०।।[५७]

गर्मियों के दिनों में यदि आकाश में बादल छाये हुए हों, लेकिन धूप भी हो तो उस धूप को बदरोटी घाम (बादलों वाली धूप) कहते हैं। यह धूप दो एक घंटे में ही किसान को परेशान कर देती है। उसके पौहों (पशु) को भी बड़ी औकली (आकुलता) हो जाती है। कहावत है—

---

५४. यदि सावन में पछुआ भादों में पुरवाई और क्वार में ईसान चलेगी तो हे कान्त! कातिक में किसान अनाज से अपने कुठले (=मिट्टी से बनाया हुआ एक ऊँचा कुँआ सा) भर लेंगे और प्रसन्न हुए घूमेंगे।

५५. "नैन चुवहिं जस महवट नीरू।"—जायसी-ग्रन्थावली, पद्मावत, का० म० प्र० सभा ३०-११-५ [अवधी० महवट < सं० माघवृष्टि]।

५६. यदि अगहन में वर्षा हो और बुड्ढी स्त्री के संतान होती हो तो वह देश रसातल को चला जायगा।

५७. यदि माह में गर्मी पड़े और जेठ में जाड़ा पड़े तो उजाड़ होगा। अर्थात् वर्षा न होगी। ऐसा घाघ कहते हैं।

"काँटौ बुरौ करील कौ औ बदरौटी घाम।
सौति बुरी है चून की, अरु साझे कौ काम।।" लो०[५८]

बदरौटी घाम निकल रही हो लेकिन हवा बन्द हो तो उस वातावरण को उमस (सं० उष्मा) कहते हैं। उमस के बाद मेह पड़ता है—

"उमस और बादर कौ घमसा। कहै भड्डरी पानी बरसा"। लो०।।[५९]

जेठ की कड़ाके की धूप में दोपहर का समय टीकाटीक दुपहरी या चील अंडिया दुपहरी कहलाता है। कड़ाके की धूप की तेजी बताने के लिए यह कहा जाता है कि—इतनी तेज धूप है कि चील अंडा छोड़ रही है।

यदि कड़ाके की धूप चटक रही हो, लेकिन हवा बिल्कुल बन्द हो; तो उस गर्मी के वातावरण को घमसा या घमका (अनू० में) कहते हैं। धूप के समय बादलों की यदि साया कुछ समय के लिए हो जाय तो उसको छांह और पेड़ों की छाया को सीरक कहते हैं। भाइटों (गर्मी) और चौमासों के सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं:—

"भाइटेनु में तीन दुखारी; मोर पपैया उपासवारी"। लो०[६०]

× × × ×

"चौमासेनु में तीन दुखारी; ऊँट बकरिया बालकबारी" ।। लो० ।।[६१]

गर्मी के दिनों में जेठ मास की लूओं से भरी हुई झाँकों की लपटें लाहन कहाती हैं। तेज झाँकों का चलना लाहन मारना कहाता है। बातों ही बातों में कट जाने वाला समय बातक कहाता है। कातिक के दिन इतने छोटे होते हैं कि बातों ही बातों में व्यतीत हो जाते हैं। कातिक पूस और माह के सम्बन्ध में कुछ लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"कातिक कारौ। माह सिस्यारौ" ।। लो० ।।[६२]

---

५८. बदरौटी घाम (बादल वाली धूप) और करील (एक झाड़ी) का काँटा बहुत बुरे होते हैं। साझे का काम भी अच्छा नहीं होता, और सौत (सपत्नी) आटे की भी दुःखदायिनी होती है।

५९. यदि बादल की घमस के साथ साथ उमस (गर्मी) भी खूब हो, तो मेह खूब बरसता है। ऐसा भड्डरी कहते हैं।

६०. मोर, पपीहा और उपवास (व्रत) रखने वाली स्त्रियाँ गर्मियों के दिनों में दुःखी रहती हैं।

६१. चौमासों (चतुर्मास) में तीन व्यक्ति बहुत दुःखी रहते हैं—ऊँट, बकरी और छोटे बालकवाली स्त्री।

६२. क्वार-कातिक की धूप मनुष्यों तथा हिरनों को कालेरंग का कर देती है। माह का महीना शीत के कारण सी-सी करा देता है।

"पूस चैंकना । माह धैंकना" ।। लो० ।।[६३]
"आयौ माह । राह्यौ दाह" ।। लो० ।।[६४]

पूस के महीने में किसी एक दिन तेल में पकवान (सं०पक्वान्न) सेकते हैं। उसे पूस चैंकाना कहते हैं। आग दहकाना 'धैंकना' कहाता है। स्त्रियों में अधिक नहीं आते नहीं तो आने जाने वालों का ताँता ही लगा रहता है। माह के शीत में लोग सी-सी करते हैं। इसलिए उसे सिस्यारामाह कहते हैं।

जाड़े के अन्तिम दिनों में जब ठंड कम हो जाती है। तब वे निवाये (सं० निवात>निवाय) जाड़े कहलाते हैं। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'निवात-अवात' शब्दों का उल्लेख किया है।[६५]

"आये माह निवाये। फूहरियन ने मैल छुड़ाये" ।। लो० ।।[६६]

शीत के कारण जब हाथ काम नहीं करते तब वे सुन्न (सं० शून्य) कहाते हैं। जाड़े से शरीर या हाथों का सुन्न पड़के सिकुड़ जाना 'ठिठुग्ना' कहाता है। निवाये जाड़ों को गुलाबी जाड़ों भी कहते हैं। फागुन का महीना गुलाबी जाड़ों का ही होता है। वास्तव में गुलाबी जाड़ों के लिए 'निवाये जाड़े' शब्द ठेठ ग्रामीण है। पूस-माह के महीनों में कुछ दिनों काफ़ी तेज हवा चला करती है जिससे शीत-वृद्धि हो जाती है। फिर मकर-संक्रान्ति के बाद हवा बन्द-सी हो जाती है। फागुन लगते ही वह हवा बहुत ही मन्द हो जाती है और जाड़ा बहुत कम पड़ता है। ऐसे दिन ही निवाये (सं० निवात> निवाय=हवा रहित) कहाते हैं।

---

६३. पूस चूल्हे पर चैंकाया जाता है। (तेल के पूए, पूड़ी, मगौड़े आदि बनाना पूस चैंकाना कहाता है।) माह में अलाव (अगिहाना) में आग दहकाई जाती है (सं० अग्निधान>अगिहाना)।

६४. माह आने पर चूल्हे के राहे (चूल्हे के मध्य का तल भाग) में आग दहकाई जाती है। राहे में सदा आग दहकती रहती है। अतः माह को राहा दहकाने वाला कहा गया है।

६५. "निवाते वातत्राणे" अष्टा० ६।२।८
"निर्वाणोऽवाते" अष्टा० ८।२।५०

६६. माह मास में निवाये दिन (कम ठंड के दिन जब हवा न चले) आ जाने पर फूहड़ियाँ (गन्दी और मैली कुचैली रहने वाली स्त्रियाँ) ने भी अपने शरीरों पर से मैल छुड़ाना आरम्भ कर दिया अर्थात् अब पानी सब को सह्य हो गया।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

पदमावत के कुछ शब्दों पर पुनर्विचार

पदमावत पर 'संजीवनी' टीका प्रकाशित होने के बाद से ही साहित्यिक मित्रों ने अपने सुझाव भेजते रहने की कृपा की है। 'वादे वादे जायते तत्त्व बोध:' की नीति के अनुसार उनमें से कुछ नए अर्थ मुझे अच्छे लगे हैं। कुछ स्थलों पर स्वयं मुझे ही अर्थों को दोहराने की आवश्यकता प्रकट हुई है। उन्हें मैं पाठकों के लाभार्थ यहाँ लिख देता हूँ।

३।६ कोड—अपभ्रंश में 'कुड्ड' शब्द कौतुक के अर्थ में प्रयुक्त होता था। हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण ४।३९६ में मुझे यह दोहा मिला है—

जइ के वँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्ड करीसु।
पाणिउ णवइ सरावि जिवँ सव्वंगे पइसीसु॥

'यदि मैं अपने प्रिय को पा जाऊँ तो अपूर्व कौतुक करूँ। नए शराव में रक्खे पानी के समान मैं सर्वांग में प्रवेश कर जाऊँ।'

४।२ कीन्हेसि मंत्र हरइ जेहिं डसा—ऐसा मंत्र बनाया जो उन साँपों के डसे हुए को हर लेता है।

५।७ ओह न काहू कइ आस निरासा—उसे किसी की आशा नहीं। वह ऐसा निराश (आशा से रहित) है।

९।५ दीन्हेसि चरन अनूप चलाहीं—उसने ऐसे चरण दिए हैं जो अनुपम ढंग से (खड़ी मुद्रा में) चलाते हैं।

१०।२-५ सात सरग जौं कागर करई—इसी भाव के समकक्ष एक कल्पना मुझे ऋग्वेद १।३४।११ में मिली है—'हे इन्द्र, यदि यह पृथिवी दसगुनी बढ़ जाय और उस पर रहने वाले रात दिन बढ़ते रहें, तब भी, हे मघवन्, तुम्हारे बल का यश प्रसिद्ध रहेगा (उसका अन्त न हो सकेगा।)

१५।४ **परी नाथ कोइ छुग्रइ न पारा**—श्री हेमचंद्र जोशी ने 'परीनाथ' का एक व्याकरण विरुद्ध ग्रर्थ किया है 'जिसके नाथ पड़ी हो ग्रर्थात स्त्री ग्रौर पशु—उन्हें भी कोई छू नहीं सकता था।' यह कल्पित ग्रर्थ मुझे स्वीकार नहीं है। सीधा ग्रर्थ यही है—यदि मार्ग में नथ नाम का ग्राभूषण पड़ा हो तो भी कोई छू नहीं सकता था। नाथ की व्युत्पत्ति नस्त से नहीं, नस्ता से है पाठक ठीक कर लें।

१८।६ **हौं उन्हके घर बँदै**—घर=वंश, खानदान, या 'सिलसिला'; ग्रर्थात् मैं जहाँगीर चिश्ती की परम्परा का शागिर्द हूँ।

१८।५ **करिग्र**—कर्णधार। सूरसागर पद १७६८ में भी यह शब्द मिल गया है—रुदन करत नदि बढी गंभीर। हरि करिया नहि जामैं पीर ॥

२०।१ **गुरुमहदी खेवक मैं सेवा**—यहां 'मोहदी' पाठ मुद्रित किया था, पर बिहार शरीफ की प्रति में महदी पाठ स्पष्ट है। गोपाल चन्द्र की प्रति में भी महदी पाठ है। महदी का तात्पर्य सैयद मुहम्मद से था। श्री ग्रस्करी ने भी यही पाठ स्वीकृत किया है।

२०।६ इसमें सैयद 'राजे' नाम ठीक है, राजी नहीं।

२२।३ **पुनि सलार काँदन मति माहाँ**—इस चौपाई में 'काँदन' का ग्रर्थ मार काट ही ठीक है। काँदना या रोना चिल्लाना—यह ग्रर्थ यहां घटित नहीं होता। क्रन्दन से काँदना बनता है पर वह यहाँ नहीं है। यहाँ जो 'काँदना' शब्द है वह पछाहीं हिन्दी में इसी ग्रर्थ में ग्रभी तक प्रयुक्त होता है। सं० 'कदन' का ग्रर्थ भी मार-काट है।

२३।५ **सुरस पेम मधु भरिग्र ग्रमोला**—जो बोल प्रेम से सुरस हैं ग्रौर जो ग्रनमोल मधु से भरे हैं।

२३।३ **किछु कहि चला तबल देइ डगा**—इसका एक चुस्त ग्रर्थ श्री मुन्शीराम शर्मा सोम ने मुझे सुझाया है—'जैसे तबले का साथ डग्गा (बाएं हाथ का तबला) देता है।' वे लिखते हैं—'दाहिने हाथ से बजने वाले भाग को तबल या तबला ग्रौर वाम हाथ से बजने वाले भाग को डगा या डग्गा कहते हैं—ऐसा मुझे तबला वादकों से ज्ञात हुग्रा है।' (पत्र ८।६।५६)। मुझे भी पूछने पर ये पारिभाषिक शब्द इसी प्रकार मिले।

२८।६ ग्रँबराउँ शब्द की व्युत्पत्ति सं० 'ग्राम्राराम' से है। सं० ग्राम्राराम > पाली ग्रम्बाराम > प्रा० ग्रम्मारांँव 7 ग्रमराउँ, ग्रँबराउँ।

२६।२ **भोर होत बासहिं चुहचूही**—इसमें बासहिं के ग्रर्थ को लेकर ग्रनावश्यक कोलाहल मचा। मने शुद्धि पत्र में स्वयं ही इसका ग्रर्थ शुद्ध कर दिया था (=बोलते हैं)। उसे ग्रालोचकों ने प्रायः नहीं देखा। वश=बोलना, शब्द करना, इस ग्रर्थ में पुरानी धातु थी। ऋग्वेद १०।५।५ में 'वावशानाः' (ज़ोर से पुकारते हुए)

कालिदास ने रघुवंश ११।६१ में इस धातु का प्रयोग किया है—ववासिरे शिवा:। मत्स्य पुराण २३७।२ (घोरं वाशन्ति निर्मया:) २३७।४, २३७।५ २३७।१२ में भी यह धातु आई है। कई बोलियों में बासना धातु बोलने के अर्थ में प्रयुक्त मिल गई है। मुझे खेद है कि मैं पहले इस धातु से परिचित न था।

३०।३-६—में साधु सन्यासियों की जो सूची जायसी ने दी है उस पर शिरेफ ग्रियर्सन की अपेक्षा मैंने अर्थ आगे बढ़ाया था। पर मैं समझता हूं कि इस विषय में और अधिक काम करने की आवश्यकता अभी है। तपा का अर्थ तपस्वी है। इस शब्द का प्रयोग ५७१।६ में भी हुआ है। सरसुती भसवासी भी संभवत: पन्थ विशेष थे। सुन्दरदास ग्रन्थावली सर्वाङ्ग योग प्रदीपिका, छंद १२-४६ में ६६ संप्रदायों का उल्लेख आया है। कबीर ने भी लिखा है—

आलम दुनी सबै फिरि खोज हरि बिनुसकल अयाना ॥
छह दरसन छयानवे पाषंड आकुल किनहुँ न जाना ॥
(कबीर ग्रन्थावली, पद ३४, पृ० ६६)।

अवधी कवि सूरदासकृत 'नलदमन' में भी निम्नलिखित उल्लेख मिला है—

एक दिन देखत हुते तमासा। सिद्ध एक आवा उन पासा ॥
अदभुत भेख धरे अबिगती सूफी औ न सेवड़ा जती ॥
सन्यासी पुनि कहा न जाई। ब्रह्मचर्य गति जाइ न पाई ॥
जंगम कहा न जाइ न जोगी। खटदरसन सों भेख बियोगी ॥
माथे तिलक हाथ जपमाला। सींगी गरे कांध मृगछाला ॥
मन कै सुरति पीउ सों लागी। भ्रम मिटि गयो संक सब भागी ॥
(नल दमन दोहा १६।५-१०)

'कोई एक परखैं देबी सती' के विषय में सुन्दर दास ने लिखा है—

केचित् देवी शक्ति मनावें। जीव हतन करि ताहि चढ़ावें।

'निरास' से तात्पर्य सूफी संप्रदाय के अनुयायिओं से था।

'अवधूत' नाथ पंथ के साधु थे जो कापालिकों से भिन्न होते हैं (सुकुमार सेन, विचित्र साहित्य, पृ० २४४-४५)।

३७।३ के अर्थ में मैंने लिखा है 'ग्रियर्सन और शिरेफ दोनों ने ऊपर वाला अर्थ किय है।' सो केवल ग्रियर्सन ठीक है क्योंकि शिरेफ ने तो यहाँ तक केवल ग्रियर्सन का अर्थ ही प्रतिमुद्रित किया है। स्वयं श्री शिरेफ ने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित करने की कृपा की है।

३६।५ रामप्रति की सुलिखित प्रति में भी 'छरहटा' पाठ है।

४१।६ **चारि बसेरे सो चढ़ै**—सूफी साधना के चार पड़ाव शरीअत, तरीक़त, मआरिफ़त और हक़ीक़त हैं।

४६।३ **बोलाह्**—इस नाम की व्युत्पत्ति अरबी बोल्लाह् से न कर के फारस की खाड़ी में तिग्रा नदी के मुहाने पर स्थित उबुल्लाह् बन्दरगाह् के नाम से करनी चाहिए। वहाँ से आने वाले घोड़ों के लिये बोल्लाह् नाम पड़ा (देखिए ४६६।१)।

५२।८ **रामा आइ अयोध्याँ उपने लखन बतीसौ अंग**—इसका सीधा अर्थ यह होना उचित था—अयोध्या में जैसी सुलक्षण स्त्री (राम की पत्नी) आई थी, वैसे ही उसके शरीर में भी बत्तीस लक्षण उत्पन्न हुए।' इस अर्थ की ओर श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने मेरा ध्यान आकर्षित करने की कृपा की।

५५।३ **ससि माँथे हुइ दुइजि बईठी**—चन्द्रमा द्वितीया का चाँद बनकर उसके माथे पर बैठ गया।

६१।६ **भौंहें धनुक गगन लै राखीं**—भौहों को लेकर ही मानों आकाश के धनुष के रूप में रख दिया गया था।

६३।२ **पदुमावति कौतुक करि राखी**—कौतुकि पाठ अधिक अच्छा है।

६४।६ **कौनु पानि जेहि पौनु न मिला**—'पानी के किस बुलबुले में हवा नहीं है ?' अर्थात् बिना हवा के पानी में बुलबुला नहीं उठता।

६६।८ **खोंचा**—पक्षी पकड़ने की बाँस की ऊँची लग्गी ग्रियर्सन में यही अर्थ है (बिहार पेजेंट लाइफ, अनु, ३८१)। किन्तु श्री बाबूराम जी कृत 'इवोल्यूशन ऑव अवधी' पुस्तक में खोंचा का अर्थ तरकश लिखा है (पृ० ७७)। जायसी ७१।५, तब जाना खोंचा हिय गड़ा' से ज्ञात होता है कि बांस की लग्गी वाला अर्थ ही ठीक है।

८०।३ **बिसवासी**—**पै यह पेट भएउ बिसवासी**। पदमावत में यह शब्द २०२।१ में भी आया है (अरे मलिछ बिसवासी देवा)। अब तक पदमावत के सभी टीकाकार और पाठक इसे सं० विश्वासी का रूप मानते रहे हैं। शुक्लजी ने इसका अर्थ 'विश्वासघाती' किया था, वही सबने मान्य समझा था। किन्तु श्री श्रीराम शर्मा हैदराबाद, ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया कि यह शब्द अरबी का है। तदनुसार स्टाइनगास के फारसी कोश में मुझे यह शब्द मिल गया।

अरबी वसवास=बुरे विचार। अल् वसवास=शैतान, जो सबको अपनी ओर खींच लेता है। वसवासी=शैतानी चाल का [स्टाइनगास, फारसी कोश पृ० १४६८; अरबी वसवास+फा० ई प्रत्यय]। उसी से हिन्दी बिसवासी शब्द बना। श्रीराम शर्मा जी ने अपने हाल के पत्र (२८।५।५७) में मुझे लिखा है—'फारसी में विसवास शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में हुआ है उसके अतिरिक्त अरबी में इस शब्द के साथ कुछ दूसरे अर्थ भी जुड़े हुए हैं। कुरान शरीफ़ में एक पूरा सूरा है जिसमें विसवास शब्द आया है। वहाँ इस शब्द का अर्थ है दुविधा, भ्रम, छल। इसी से एक शब्द बनता है वसवसा। वसवसा का प्रयोग

उर्दू में भी दुबिधा के अर्थ में आता है। हिन्दी में भी इस शब्द का अर्थ दुबिधा, भ्रम और विश्वासघात के रूप में होता है। हम लोगों के गाँव में एक मुहावरा बोला जाता है—"बिस देना बिसवास नहीं देना।" यहाँ भी यह बिसवास शब्द संस्कृत के 'विश्वास' शब्द का अपभ्रंश रूप नहीं है। यह अरबी का 'विसवास' शब्द ही है।'

८३।५ **दीन्ह कसौटी औ बनवारी**—उसने सुग्गे के सामने कसौटी और बनवारी रक्खीं। बनवारी पारिभाषिक शब्द था। इसका संस्कृत रूप 'वर्ण मालिका' था जिसका अर्थ मैंने शुद्धि पत्र में ठीक कर दिया था। (पृ० ७१८, वे शलाकाएं जिनके सिरे पर भिन्न-भिन्न वान या शुद्धि के सोने की छोटी गोलियाँ लगी रहती थीं।)

वर्ण मालिका 7 वण्णमालिआ 7 वण्णवारिआ 7 बानवारी 7 बनवारी।

८५।३ **बिखराखै नहि होइ अँगूरू**—इसका अधिक उत्कृष्ट पाठ यह है—बिखराखिय नहिं होइ अँकूरू=अपने पास विष नहीं रखना चाहिए, अन्यथा उसमें से अंकुर फूट आता है।

९०।७ **कंत सुहाग कि पाइ अमांधा**—प्रियतम और सौभाग्य इन दोनों का मेल क्या प्राप्त हो सकता है?

९१।१ **जुआ हारि समुझी मन रानी**—रानी ने मन में समझ लिया कि मैं जुआ हार गई।

१०१।७ **दहुँ काकहँ अस जुरा सँजोऊ**—सँजोऊ का यहां विशेष अर्थ है युद्ध का साज, शस्त्रास्त्र। गुसाईं जी ने इसी अर्थ में सँजोइल शब्द का प्रयोग किया है—'होइ सँजोइल रोकहु घाटा।

११२।६ **बाँहू कंगन टाड़ सलोनी**—यहाँ 'बाहूँ, का अर्थ भुजबंद है। पदमावत में अन्यत्र भी यह शब्द इस अर्थ में आया है (२९९।५,३१८।६)।

११४।१ **पेट पत्र चंदन जनु लावा**—सब हस्तलिखित प्रतियों में 'पत्र' ही पाठ है। ठीक अर्थ यह होगा—पेट ऐसा है मानों पत्ते पर चंदन का लेप किया हो।'

११७।३ कुरंगिनि खोजू का उपमान नलदमन में नाभि के लिये आया है—लघु नाभी मृग खोज समाना (नलदमन ८५।५)।

११७।५ समुदलहर यहाँ एक प्रकार के लहरिया वस्त्र का नाम है। पदमावत २८९।६ में यही मुगल कालीन स्थापत्य की एक भाँत का नाम है जो फर्श की सजावट के काम में आती थी।

१२४।८ **होत आव निसु भोर**—निसु=बिल्कुल (माता प्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० ३३)।

१२७।७ **घर काया पुनि अंत परावा**—श्री राम नरेश जी त्रिपाठी ने इसका यह सुन्दर अर्थ सुझाया है—'शरीर ही मेरा घर है, अन्त में वह भी पराया हो जायगा, या फेंक देना पड़ेगा' (पत्र, १५।१।५६)।

१२८।२ **ओरगाना**—अमीर उमरा मध्यकालीन गुजराती में इसका रूप उलगाणा आया है (कान्हड़ दे प्रबन्ध, २।६२, बारलाप उलगाणा)।

१३३।७ **अँदोरा**—रोरा, ये दोनों शब्द चित्रावली में भी आए ह—देखि सखी सब कीन्ह अँदोरा ४७३।१; पहर एक बीता होइ रोरा (४७४।७)।

१३४।४ **भे निनार दुख सुख तजि दोऊ**—निनार=अलग, न्यारा। सं० निर्नगर> प्रा० णिण्णार>निनार—यह व्युत्पत्ति क्रम ज्ञात होता है।

निर्नगर=नगर से निकला हुआ, पृथक्।

१३८।७ **माँझ रतनपुर सौहं दुआरा**—मैंने दुआर शब्द का तात्पर्य महानदी की घाटी समझा था जो बालपुर—सारंग गढ़ के बीच से उड़ीसा में जा निकलती है। मुझे आरम्भ से ही यह आभास था कि यह उड़ीसा के भूगोल का पारिभाषिक शब्द होना चाहिए। असम के भूगोल में 'दुआर' शब्द मिल गया जो भूटान के रास्ते असम और तिब्बत के बीच के अनेक पहाड़ी दर्रों के लिये प्रयुक्त शब्द है (सुनीति कुमार चटर्जी, बाणीकान्त काकति व्याख्यान, १९५४, पृ० ५,७६)। तबकात—नासिरी के अनुसार कामरूप और तिब्बत के बीच यातायात के लिये ३५ दर्रे थे। अब मुझे महाभारत में उड़ीसा में स्थित दुआरों का उल्लेख स्पष्ट मिल गया—

कलिंगराष्ट्रद्वारेषु ब्राम्हणाः पाण्डवानुगाः।
अभ्यनुज्ञाय कौन्तेयमुपावर्तन्त भारत॥
स तैरभ्युनज्ञातः कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
सहायैरल्पकैः शूरः प्रययै येन सागरम्॥

(आदिपर्व, पूना सं०, २०७।१०-११)

'जब वे कलिंग राष्ट्र के द्वारों के समीप पहुँचे तो ब्राह्मण लोग अर्जुन से बिदा होकर लौट आए और अर्जुन द्वारों के रास्ते आगे बढ़कर समुद्र के तीर पर जा पहुँचा।' लगभग ऐसी भौगोलिक स्थिति का जायसी में भी उल्लेख है। रत्नसेन दुआरों के मार्ग से दाहिने की ओर चलते हुए समुद्र घाट पर जा पहुँचा।

१३८।८ **ओडैसा**—सं० ओड्देश>ओडदेश>ओडएस>ओडैसा।

१४०।७ बोहित की व्युत्पत्ति का कोई संतोषप्रद सुझाव अभी तक नहीं दिया गया है। मैंने बोधिस्थ>बोहिथ>बोहित्त>बोहित यह क्रम सुझाया है। देशी नाम माला में हेमचन्द्र ने उसे देशी शब्द मान लिया है (६।९६) पर व्युत्पत्ति का प्रश्न फिर भी बना रहता है। संस्कृत कोशों में बोधिस्थ शब्द नहीं है, अतएव इस व्युत्पत्ति पर शंका की

गई। वस्तुतः बोधि स्थापत्य का पारिभाषिक शब्द है और कोशों में अभी तक नहीं लिया गया। बोधि नाव की पेंदी की उठती हुई गोलाई के सदृश स्तम्भ शीर्पक के ऊपर ले भाग को कहा जाता था। तन्त्र समुच्चय (मल्लय्य, पृ० २२५) में यह शब्द ('बोधिका') आया है। तमिल का बोदि शब्द भी उसी से था। अथवा यह भी सम्भव है कि बोधि तमिल से संस्कृतीकरण का उदाहरण हो। उससे बोधिस्थ संस्कृत रूप की कल्पना की गई ज्ञात होती है।

१४३। पेम मोर पानी कै करा—प्रेम और पानी का समान गुण है। वह मृत व्यक्ति को डुबाता नहीं, बहा कर ले जाता है।

१४६।६ तिन्ह पावा उत्तिम कबिलासू—वे उस उत्तम कबिलास (महल का विशेष भाग) को पाते हैं जहाँ सदा सुखबास (वह कमरा जहाँ पति-पत्नी मिलते थे) है।

१४७।१ गजर थरेंगि चलै गजठाठी—इसका ठीक पाठ जमरथ रेंगि······है।

१४८।१ केंवट हँसे सो सुनत गवें जा—गवेंजा बोली का शब्द है। अलीगढ़ की बोली में अभी तक मुझे श्री अम्बाप्रसाद सुमन से इसका पता चला है, अर्थ है गाँव के लोगों के बीच गपशप, जैसे सावन मास गएँ जे कीए भादों खाए पूआ।

१४९।४ धरती सरग जाँत पर दोऊ—यहाँ 'पर' धातु भ्रम का धात्वादेश = घूमना (हेम०, ४।१६, पाइ असद्द० ६७१।)

१५१।४ जोगी मनहिं ओहिं रिसमारहिं—इसका यह अर्थ संजीवनी में दिया है—'किन्तु जो योगी है वह मन और उसमें भरे हुए क्रोध को वश में कर लेता है।' ठीक अर्थ यह होना चाहिए—जोगी उसी रोष के कारण (क्योंकि मन द्रव्य की चाह करता है—मनुवाँ चहै दरब औ भोगू) मन को मारता है।

१५३।९ वह जो मलैगिरि पेम का बुंद समुंद समीर—इसका ठीक अर्थ यह होना चाहिए, 'जो प्रेम का मलयगिरि चंदन है उसकी एक बूंद भी जलते हुए समुद्र में ठंडी हवा बन जाती है।' समीर शब्द का ऐसा ही प्रयोग ५०२।६ में भी है।

१५६।६ अस साँकर चलि सकै न चाँटा—यह वर्णन पुलेसिरात का है।

१५९।६ औ सोकचप चिह्न भएउ गरासू—उस चन्द्रमा का कचपचिया नक्षत्र से ग्रास हुआ है।

१६३।३ ऊँचे लेउँ प्रीतम के नाऊँ—ऊँचे स्वर से प्रियतम का नाम लूँगा।

१८०।३ आगि बुझाइ ढोइ जल काढैं—आग बुझ जाती है यदि उसके चारों ओर जल लाकर जल की रेखा खींच दी जाय। कड्ढ = रेखा करना, घेरना (पाइ असद्द० २७४)।

१८४।७ कुरेरें—सं० कुलकेलि > कुलएलि > कुलेलि 7 कुलेल, कुरेर। कुल से तात्पर्य

राजकुल से है। संस्कृत में राजकुल का कुल और राजगृह का गृह भी प्रयुक्त होता था, जैसे हर्ष चरित में गृहावग्रहणी = राजगृहा व ग्रहणी।

१८६।१ **कँवल सहाय चलीं फुलवारीं**—कमल के साथ उत्पन्न होने वाली कुमुदिनी रूपी सखियां फुलवारी को चलीं। सहाइ = साथ जन्म लेने वाली (दे० कवँल सहाइ का विशिष्ट अर्थ; ५५२।२,५५६।७)। १६६।३ में सहाई = सखियाँ (सहजाता)।

२०६।३ **लंका छाड़ि पलंका परा**—मुल्लादाउद कृत चन्दायन अवधी काव्य (१३७० ई०) में भी यह मुहावरा आया है—

हौ फिन चाँद हेरि जो पाऊँ। लंका छाँड़ि पलंका धाऊँ॥

पाताल लंका > पायाल लंका > पालंका 7 पलंका।

२०७।६ **छावा** = बच्चा। चित्रावली ५३।६ में भी छाव शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

२०८।१ **कहेसि को मोहिबा तन्ह बेलवाँवा**—बेलवाँबा = ठगता है। सं० वंच का प्राकृत धात्वादेश वेलव = ठगना (हेम० ४।६१ वेलवइ)।

(अगले अंक में समाप्य)।

डा० विश्वनाथ प्रसाद

'यकार' और 'वकार' के रागात्मक रूप

'य्' और 'व्' का रागात्मक निरूपण''[1] शीर्षक अपने निबन्ध में मैंने संकेत किया था कि इन अर्द्ध स्वरों या अन्तःस्थों का विवेचन स्वनिमात्मक रूप के अतिरिक्त यदि रागात्मक रूप में किया जाय तो उससे भाषासम्बन्धी तत्त्वों का विश्लेषण अधिक सुगमता और स्पष्टता के साथ हो सकता है। इस दृष्टि से यदि हम किसी भाषा के स्वरानुक्रमों का विचार करें तो उनकी सन्धियों में 'य्' अथवा 'व्' के राग स्पष्ट नहीं तो लघु, लघुतर या लघुतम प्रयत्न के साथ उच्चरित अवश्य सुनाई पड़ेंगे। एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते समय संसपर्ण (glide) की जो ध्वनि निकलती है, वह अनिवार्य है। हारमोनियम में एक पटरी से दूसरी पटरी पर उंगुली ले जाने में संसर्पण की ध्वनि भले ही न निकले, क्योंकि उसकी सभी पटरियाँ पृथक्-पृथक् रहती हैं (और इसी कारण हारमोनियम आज संगीत के क्षेत्र में अनादृत और अब तो प्रायः बहिष्कृत है)—पर सितार आदि जैसे तन्त्री-वाद्यों पर एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते समय गमक की जो मधुर ध्वनि निकलती है, उसका कलात्मक महत्त्व अनल्प है। दो स्वरों के बीच जो संसर्पण या श्रुति-ध्वनि उठती है, भाषा की दृष्टि से उसका भी गमक जैसा ही रागात्मक महत्त्व है। उसके बिना पदों और वाक्यों का सुसम्बद्ध उच्चारण असम्भव है। उनका विचार न करके यदि मनमाने ढंग से उच्चारण किया जाय तो वह विद्रूप होता है।

प्रत्येक भाषा की ध्वनि-प्रक्रिया के अनुसार इन संसर्पण-जनित ध्वनि या श्रुतियों के रागों में भेद होता है। यदि किसी भाषा का सुष्ठु और शुद्ध उच्चारण हमें करना है, तो उसमें 'य' और 'व' के श्रुति-रूपों की पहचान हमें करनी पड़ेगी और उनका उचित व्यवहार आवश्यक होगा। उस भाषा की प्रचलित लिपि में चाहे वे श्रुति-रूप लिखे जायँ या नहीं, पर उच्चारण में उनका परिहार नहीं किया जा सकता। उस भाषा में दीक्षित कोई वक्ता ऐसा करता भी नहीं है। उदाहरणार्थ चीनी भाषा में घोषत्व, सुर के भेद आदि के अतिरिक्त शब्दान्त में 'य' और व-श्रुति का भी उच्चारण करना पड़ता है। अँग्रेजी

---

१. भारतीय साहित्य अप्रैल १९५६ ई० वर्ष १ अंक २।

में स्वर-सन्धि के उदाहरण के लिए 'going' शब्द को ले लें, इसमें 'go' के 'o' स्वर के बाद 'in' के (i) स्वर का अनुक्रम है। इन दोनों के बीच के संसर्पण में य-श्रुति का व्यवहार होगा अथवा 'व'-श्रुति का ? अँग्रेजी भाषा की ध्वनि-प्रक्रिया के अनुसार यहां व—श्रुति का ही व्यवहार होगा। 'गोविंग' शुद्ध उच्चारण के अधिक अनुरूप होगा, 'गोयिंग' नहीं। हमारे देश के लोग इसका उच्चारण प्रायः 'गोयिंग' या 'गोइंग' करते हैं। अँग्रेजी भाषा में दीक्षित परन्तु किसी अँग्रेज के कान में यह उच्चरण खटके बिना नहीं रह सकता। ऐसे सन्धि-स्थलों में अंग्रेजी में एक हलके-लघु प्रयत्न वाले 'व्' का राग या व—श्रुति अपेक्षित है।

रागात्मक 'य्' और 'व्' के उचित व्यवहार की उपेक्षा से उत्पन्न कठिनाइयों का एक उदाहरण हमें बंगला के वर्ण विन्यास में मिलता है, जिसमें व/फ् (v/f) तथा ब/व़ (b/β) में बहुत गड़बड़ी दिखाई देती है, जिससे बचने के निमित्त रागात्मक 'व' के लिए अन्तःस्थ 'य्' के ही नीचे एक विन्दु लगाकर लिखना पड़ता है। कैथी, मैथिली और आसामी में 'व्' राग के लिए एक पृथक् नये वर्ण या सकेत-चिह्न सहित (diacritical) 'व़' का प्रयोग करके इस भ्रम का निराकरण किया गया। परन्तु ओड़िया के समान ही मध्य बंगालो ने भी व-राग की ओर उचित ध्यान नहीं दिया और व (◁) के लिए भी य (য) के लिपि-चिह्न का ही प्रयोग किया। संस्कृत के पंडितों ने इस भ्रमात्मक व्यवहार को चिन्त्य और य-राग के लिए 'य' के नीचे एक विन्दु लगाकर लिखने की परिपाटी चलाई।[1] आश्चर्य है कि न जाने क्यों अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३४२ में दिए हुए उदाहरणों के वर्ण-विन्यास में डा० चाटुर्ज्या ने 'य्' और 'व्' इन दोनों ही रागों के लिए विन्दु सहित 'य़' इस एक ही रूप का व्यवहार किया है।

संस्कृत के वैयाकरणों का तो यह निश्चित सिद्धान्त था, कि धातु, उपसर्ग या समास द्वारा बने हुए शब्दों में या किसी भी एक पद में सन्धि अनिवार्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी एक पद में एक स्वर के बाद दूसरा स्वर टिक ही नहीं सकता। पर हिन्दी तथा हिन्दी से सम्बद्ध बोलियों में भी गए, हुआ और चाहिए जैसे स्वरानुक्रमों के बहुतेरे लिखित दृष्टान्त मिलते हैं। जैसा मैंने पूर्व निबन्ध में बताया था, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी[2] तथा नागरी प्रचारिणी के प्रभाव से हिन्दी में ऐसे रूप धड़ल्ले के साथ लिखे जाने लगे। द्विवेदी जी का मत था, कि 'नया' का बहुवचन में 'नये' के रूप में भले ही लिखा जाय, पर 'नयी' तो हर्गिज नहीं लिखा जायगा, क्योंकि जैसे 'नया' एक स्वतन्त्र शब्द है वैसे ही 'नई' भी। 'नई' पर 'नया' का कुछ भी प्रभुत्व नहीं। वह तो एक पृथक् शब्द है।[3] इसलिये,

---

१. सु० कु० चाटुर्ज्या—Origin and Development of Bengali Language पृ० २२६ और ३३८ से ३४२

२. भारतीय साहित्य वर्ष १ अंक २ अप्रैल, १९५९ पृ० १५

३. हिन्दी शब्दों के रूपान्तर-साहित्य-सीकर (तरुण-भारत-ग्रन्थावली, दारागंज, प्रयाग, १९४९ पृ० ७०—८१

चाहिये, आइये आदि रूप नहीं लिखे जाते। इनके रूप हैं 'इसलिए' 'चाहिए' 'आइए'। पर द्विवेदी जी का यह भी कहना था, कि इन शब्दों में भी दूसरे ढंग से अर्थात् 'य'-श्रुति के साथ भी कोई लिखे तो उससे घबराना नहीं चाहिए। आगे चलकर जो रूप अधिक प्रचलित होगा, वही शिष्ट और स्वीकरणीय समझा जाएगा।

यहाँ हमारे सामने प्रश्न इन ध्वनियों को लिपि में अंकित करने का नहीं, उनके उच्चारण का है। 'लिए', 'चाहिए', 'कीजिए', 'आए', 'गए' और 'नई', 'गई' आदि को हम ऐसे ही लिखें अथवा लिये, चाहिये, कीजिये, आये, गये, नयी, गयी आदि रूप लिखें। देखना यह है, कि वास्तविक उच्चारण में ऐसे दो स्वरों के अनुक्रम के प्रसंग में कोई श्रुति है या नहीं और यदि है तो किस राग की, य-श्रुति है अथवा व-श्रुति ? वागिन्द्रियाँ एक स्वर के स्थान से दूसरे स्वर के स्थान पर पहुँचने में कौन सा मार्ग ग्रहण करती है—तालु की ओर का या ओठ की ओर का ? यदि तालु की ओर का मार्ग अग्रजिह्वा ग्रहण करती है तो य-श्रुति होगी और यदि ओठ का अथवा पश्चजिह्वा का मार्ग ग्रहण करती है, तो व-श्रुति होगी। जो हिन्दी भाषा में दीक्षित हैं, वे 'तो', गए 'हुए' आदि रूप लिखे जाने पर भी 'अ' और 'ए' अथवा 'उ' और 'ए' के बीच के श्रुतिरागों का पूर्वाभ्यास के बल पर ठीक-ठीक प्रयोग करेंगे। पर जो हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ हैं, विदेशी हैं, उनके लिए यह जानना आवश्यक होगा कि स्वरों की किस सन्धि के बीच य-श्रुति का और किस के बीच व-श्रुति का व्यवहार किया जाना चाहिए। जिन स्वरानुक्रमों में ये श्रुतियाँ सुस्पष्ट हैं, उनके बीच तो हिन्दी लिपि में ये अंकित की ही जाती है जैसे गया, नया, किया, सवा आदि, पर जहाँ उनका उच्चारण बहुत हल्का हो गया है और वे प्रायः अंकित नहीं की जाती वहाँ उनमें से कौन सी श्रुति कर्ण ग्राह्य है। इसकी जानकारी हम रागात्मक रूप में एक एक करके बारी बारी से इन दोनों श्रुतियों का उच्चारण लघु प्रयत्न के बदले स्पष्ट व तनिक तीव्र प्रयत्न के साथ करके कर सकते हैं। यह भी जाँच सकते हैं, कि उस भाषा के बोलने वाले जन समाज के बीच उनमें से कौनसा रूप स्वीकृत किया जाता है। मान लीजिए, कि शब्द का लिखित रूप है—'किए' अथवा 'गई'—अब यहाँ हिन्दी से अनभिज्ञ कोई अन्य भाषा-भाषी जानना चाहता है; कि यहाँ इ और ए के बीच अथवा अ और ई के बीच की श्रुति क्या है ? वह क्या करेगा कि वह इन शब्दों का श्रुतियों के साथ प्रश्नात्मक रूप में उच्चारण करेगा और अतिशयित रूप में उच्चारण करके पूछेगा कि [ग $^{\text{व}}$ए] रूप ठीक है अथवा [ग $^{\text{य}}$ए], [कि $^{\text{य}}$ए] रूप ठीक है अथवा [कि $^{\text{व}}$ए]। हिन्दी भाषा भाषियों की मण्डली में [कि $^{\text{व}}$ए] और [ग $^{\text{व}}$ए] हास्यास्पद और अग्राह्य प्रमाणित हों और [कि $^{\text{य}}$ए] और [ग $^{\text{य}}$ए], में [य] का उच्चारण अस्पष्ट होने पर भी ग्राह्य प्रमाणित हो, तो यह अभ्यास से समझ लिया जा सकता है कि इन स्वरानुक्रमों के प्रसंगों में दूसरे रूप ही ठीक है और उन्हीं का लघु प्रयत्न वहाँ करना उचित होगा।

इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि प्रत्येक भाषा की ध्वनि प्रक्रिया के विवेचन में यह स्पष्ट कर दिया जाय कि उसमें संभावित स्वरानुक्रमों के बीच कहाँ कौनसी श्रुति सम्भव है। साथ ही यह भी बता दिया जाय कि वे विशेष श्रुतियाँ कहाँ लघुप्रयत्न से उच्चरित हैं और कहाँ तीव्र प्रयत्न से। इस प्रकार नियमों की कुछ व्यवस्था स्थापित हो सके तो उनकी जानकारी प्राप्त करके इन श्रुतियों को सर्वत्र लिपि में अंकित किये बिना भी उच्चारण में आसानी के साथ ठीक-ठीक व्यवहृत किया जा सकता है।

डा० बाबूराम सक्सेना ने अवधी में प्रयुक्त ३५ स्वरानुक्रमों को सूचीबद्ध किया है।[१] इसके अतिरिक्त दो से अधिक स्वरों के संगमों के दृष्टान्त भी दिये हैं जिनमें 'अ' 'इ' और 'अ' 'उ' स्वरों के सन्धि-स्वरूपात्मक प्रवृत्ति का भी संकेत किया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने साहित्यिक हिन्दी में प्रयुक्त १९ स्वरानुक्रमों की सूची दी है। जिसमें उन्होंने औ (अ ओ[२]) और ऐ (अए) को भी सम्मिलित कर लिया है।[३] इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी बोलियों में प्रयुक्त दो स्वरों के प्रयोग के २५ उदाहरण दिये हैं[४] और तीन स्वरों के भी कुछ उदाहरण हिन्दी तथा उसकी बोलियों में पाये जाते है।[५] डा० वर्मा ने अपनी ब्रजभाषा में भी स्वर संयोगों के कुछ दृष्टान्त दिये हैं।[६] मैंने स्वयं भोजपुरी में ७२ स्वरानुक्रमों के दृष्टान्त पाये हैं।[७]

जहाँ तक भारतीय आर्य भाषाओं के शब्दान्तर्गत स्वरानुक्रमों का प्रश्न है, यह विदित है कि प्राकृत में आदि भारतीय आर्य भाषा के स्वरांतर्हित एक व्यवस्थित स्पर्श व्यंजनों के स्पर्श का बहुधा लोप हो गया है। उनके स्थान में स्वरों का व्यवहार होने लगा था।[८] जैसे शोक>शोअ; रोग>रोअ; श्रगाल>सिआल; शूकर>सूअर आदि। फलतः मध्य भारतीय आर्य भाषा में स्वरानुक्रमों के बहुतेरे उदाहरण दिखाई पड़ने लग गए। संस्कृत

१. डा० बाबूराम सक्सेना—Evolution of Avadhi, Indian Press Allahabad पृ० ८२—८४।
२. यह अर्द्ध विवृत पश्च ह्रस्व स्वर हैं। मुद्रण की कठिनाई के कारण यहाँ इस चिह्न का प्रयोग करना पड़ रहा है।
३. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, १९४९, पृष्ठ १११—११२।
४. वही पृ० ११२—११३।
५. वही पृ० ११३—११४।
६. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा- ब्रजभाषा—हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, १९५४, पृष्ठ ४१—४२।
७. डॉ विश्वनाथप्रसाद—Phonetic and Phonological Study of Bhojpuri, London Usity, London, 1950, पृष्ठ ११८—११९।
८. पिशेल—Grammatik Der Prākrit, परन्तु इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है, कि प्राकृतों के भी कुछ प्राचीन रूपों में स्वरान्तर्गत श्रुतियों के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं—जैसे अवयेसि (भारहुत—शिलालेख—२ शताब्दी ईसा पूर्व), चवुष (खारेबल शिलालेख ई० द्वितीय शताब्दी)।

वैयाकरणों के अनुसार ऐसे स्वरानुक्रम अर्थात् एक स्वर के बाद दूसरे स्वर के ऐसे प्रयोग असम्भव हैं। दो स्वरों के बीच इस प्रकार की विवृत्ति या प्रगृध अग्राह्य हैं। वेदों में इस प्रकार के दो चार ही उदाहरण मिलते हैं जहाँ किसी सन्धि का प्रयोग नहीं हुआ हो, जैसे ऋग्वेद में तितउणा, पु'रएता, प्रंउगम्—। वाकरनेगेल[1] ने स्वरानुक्रमों के जिन उदाहरणों के उल्लेख किए हैं वे दो शब्दों के बीच में आए हुए अनुक्रमों के उदाहरण हैं शब्दान्तर्गत स्वरानुक्रमों के नहीं। इन वैदिक उदाहरणों के सम्बन्ध में अमेरिकन विद्वान सी० एफ० हाकेट[2] ने अनुमान किया है कि इन विवृत्तियों के बीच कोई एक ध्वनि रही होगी जिसको यों लिखा जा सकता है। ति त १ उ।। प्र १ उ ग।

प्राकृतों में स्वरानुक्रमों का जो सिलसिला चला वह अपभ्रंश काल में भी कुछ अंशों तक जारी रहा। पर परवर्ती अपभ्रंश काल तथा आधुनिक भारतीय आर्यकाल के प्रारम्भ में स्वरानुक्रमों के संकोचन या सन्ध्यक्षरीकरण या उनके बीच 'य्' और 'व्' के निवेश द्वारा इन विवृत्तियों को भंग करने की प्रवृत्ति विकसित हो चली थी[3] यद्यपि उस अवस्था में हमें दोनों प्रकार के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं जैसे चर्या में जाया (४) ∠ सं० याति, पर खाई (४१) ∠ सं० खादति; नियड्डी, पर रिगआड़ि, सिआर (बागची छोटा कोष)।

हिन्दी में प्रयुक्त इन स्वरानुक्रमों में प्राय: यह देखा जाता है, जब परवर्ती स्वर 'अ' अथवा 'आ' रहता है या कैथी लिपि उन दोनों स्वरों के बीच प्राय: 'य' अथवा 'व' लिखा जाता है। वास्तविक बोलचाल में जबकि पूर्ववर्ती स्वर उच्चतर और परवर्ती स्वर नीचतर रहता है, तो एक हल्का 'य' अथवा 'व' सुनाई पड़ता है। अन्यत्र 'य' अथवा 'व' का रागात्मक अंश बहुत ही क्षीण अर्थात् लघुप्रयत्न रहता है जो कि उच्चारण में बराबर सुनाई पड़ता है।[4]

पर सुनाई पड़े अथवा नहीं, वैज्ञानिक दृष्टि से रागों की व्यवस्था को ठीक-ठीक समझने के लिए और व्यावहारिक दृष्टि के प्रतिकूल राग के प्रयोग से उच्चारण में होने

---

१. Wackernoegal—Altandische Grammatik I पृ० ३१३ और आगे।
२. C. F. Hockett—A System of Descriptive Phonology, Language Jan. March 1942. P. 17
३. दे० J. Bloch—La Formation de la Langue Marathi, 120, Para 53 और आगे
हिन्दी में 'य' और 'व' श्रुति के लिए देखिए—डा० उदय नारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—पृ० ३४५-४६
४. दे० विश्वनाथप्रसाद 'य' और 'व' का रागात्मक निरूपण—भा० सा० अप्रैल १९५६ पृ० १५-१६।
इस सम्बन्ध में बंगाली की प्रवृत्ति के विषय में दे० चटर्जी—ODBL Pt. I पृ० ३४१

वाले विकारों से बचने के लिये ध्वनि प्रक्रिया के अन्तर्गत इस बात का विश्लेषण आवश्यक है कि दो स्वरों की सन्धियों के बीच किसी भाषा या बोली में कौनसा राग व्यवहृत होता है। इस दृष्टि से विचार करके स्वारानुक्रमों की संभावित अंतरंग अर्थात् शब्दान्तर्गत संधियों को दो कोटियों में बाँटा जा सकता है:—

(१) य—श्रुति सहित स्वरानुक्रम।

(२) व—श्रुति सहित स्वरानुक्रम।

[१] हिन्दी में निम्नलिखित स्वरानुक्रम य-राग या य-श्रुति से समन्वित हैं। श्रुतियों के निर्देश के लिए यहाँ नीचे जो उदाहरण दिये जा रहे हैं, उनमें कहीं कहीं ऐसे स्थानों में भी 'य' अथवा 'व' का प्रयोग किया गया है जहाँ प्रचलित वर्ण-न्यास में प्राय: (य/व) का नहीं वरन शुद्ध स्वरों का ही प्रयोग किया जाता है।

जैसे, हुयी (प्रचलित रूप 'हुई' के लिए) रोयी (प्रचलित रूप से 'रोई' के लिए) धोयी (धोई के लिए), हुया, हुवे (हुआ, हुए के लिए)। ऐसा करने का अभिप्राय प्रचलित वर्ण-न्यास में परिवर्तन या सुधार करना अथवा उसकी मान्यता का विरोध या निरादर करना नहीं, वरन् सन्धिगत श्रुतियों के रूप में इन अर्द्धस्वरों के अक्षरात्मक महत्व तथा ध्वनि-प्रक्रिया की दृष्टि से उच्चारण में उनसे सम्बद्ध यथोचित संसर्पण-जनित रागों का निदर्शन मात्र है।

य—श्रुति-सहित स्वरानुक्रम :—

(क) अ, आ और ओ के परे ए, जैसे,

अ ए—गये, नये

आ ए—आये, जाये बनाये, आयेगा। परन्तु आवेगा, जावेगा, आवे, जावे—यह रूप भी कुछ प्रदेशों में विकल्प से प्रचलित हैं। इस स्वरानुक्रम में बहुधा 'य्' की भावना इतनी प्रबल जान पड़ती है कि जहाँ वास्तविक उच्चारण में उसका व्यवहार अत्यन्त क्षीण भी है, वहाँ भी उसके लिखने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती हैं, जैसे, लतायें, भाषायें। ऐसे उदाहरणों में 'य्' ध्वनि को पकड़ पाना प्राय: बहुत कठिन है। साधारण बोलचाल में वह शायद ही सुनाई पड़े।

ओ ए—खोये, बोये। परन्तु प्रत्यक्ष विधिकाल अन्य पुरुष एकवचन अथवा संभाव्य भविष्यत मध्यम या अन्य पुरुष एक वचन में 'खोवे', 'बोवे' आदि रूप भी विकल्प से प्रचलित हैं। इसी प्रकार सामान्य भविष्यत में 'होवेगा' यह रूप प्रचलित है।

(ख) इकार के परे 'अ', 'आ' 'ओ' या 'ए'।

इ अ—पीय, दीयना,[1], दीयरा[1]।

इ आ—किया, दिया, सियार।[2]

इ ए —किये, दिये, लिये, चाहिये, जिये, कीजिये।

इ ओ—साथियो, भाइयो, जीयो।

(ग) एकार के परे 'अ' जैसे, खेया, सेया।[3]

(घ) किसी असमान स्वर के परे इकार, जैसे अ, इ।

अ इ—गयी, नयी।

आ इ—आयी, लगायी, रजायी, चौपायी।

उ इ—छुयी, सुयी।

ए इ—खेयी, सेयी।

ओ इ—खोयी, धोयी, सोयी, बोयी।

निम्नलिखित स्वरानुक्रमों के बीच हिन्दी में 'व' का राग या व-श्रुति का व्यवहार होता है—

(क) 'अ' को छोड़कर शेष पश्च स्वरों के बाद 'अ' या 'आ'

जैसे, ओअ—धोवन[4]

ओ आ—खोवा, छोवा, कोवा, पोवा, धोवा, सोवा। परन्तु ओ के परे 'आ' के अनुक्रम में य-श्रुति के भी उदाहरण क्रिया-पदों जैसे दोया, खोया, बोया, रोया, सोया, धोया में मिलते हैं।

---

१. यह रूप केवल पद्य में प्रचलित हैं। इसका अपवाद हमें केवल दो एक हिन्दी शब्दों में मिलती है—दीवट, जीवट। परन्तु यहां का 'व्' वस्तुतः एक दूसरे शब्द की देन है जिसमें ई+अ की सन्धि का नहीं, वरन् प>व, दीवट<दीप-पट्ट (सं०) का उदाहरण मिलता है।
पर पद्य में तथा कई बोलियों में दीयट, दीयटा आदि रूप ही प्रचलित है। इसी प्रकार जीवट शब्द के 'व' का मूल संस्कृत का जीवथ है।

२. परन्तु प>व के दृष्टान्तों में इ के बाद 'व' के कुछ उदाहरण मिलते हैं, जैसे कपाट>किवाड़।

३. इन सन्धि रागों की ओर ध्यान न जाने के कारण श्री कामता प्रसाद गुरु ने भूतकालिक कृदन्तों के विषय में पहले तो यह नियम स्थापित किया है, कि भूतकालिक कृदन्त धातु के अन्त में 'आ' जोड़ने से बनता है, फिर तुरत नियम देते हैं कि धातु के अन्त में आ, ए तथा ओ हो तो धातु के अन्त में 'य' कर देते हैं। देखिये कामताप्रसाद गुरु हिन्दी व्याकरण नवीन संशोधित संस्करण पृष्ठ ३४४। सच तो यह है, कि खेया जैसे रूपों में 'य' ए के सन्धि जन्य राग हैं।

४. इसके विपरीत कोयल जैसे रूपों में ओ अ का जो अनुक्रम मिलता है उसका कारण वस्तुतः मूल रूप का ओइ है, मिलाइये कोकिल (सं)।

उ अ—सूवर ∠ शूकर (सं)

उ आ—हुवा, चुवा, छुवा, जुवा, बुवा, सुवा, पूवा।

छुवा, हुवा, आदि रूप हास्यास्पद प्रतीत होंगे परन्तु लिखने में न जाने क्यों ऐसे रूप प्राय: व्यवहृत दिखाई पड़ते हैं। इन्हें तो चिन्त्य ही कहना चाहिए।

(ख) आकार के परे उकार।

आ उ—राउत < राजपुत्र, खावू, नावू, टिकावू।

(ग) उकार के परे ए।

उ ए—हुवे, छुवे, पुवे, सुवे आदि। हुये, छुये आदि रूप चिन्त्य प्रतीत होते हैं।

(घ) इकार को छोड़कर अन्य किसी असमान स्वर के परे ओ[1] जैसे,

आ ओ—आवो, जावो, लावो।

उ ओ—छुवो, चुवो।

ए ओ—खेवो, सेवो।

(ङ) ए के परे अ।

ए अ—केवड़ा < केतक (सं०)[2]

नेवला < नकुल (सं०)[2]

समान स्वरों के अनुक्रम

अ अ—य-श्रुति—वयन, < वचन (सं०) मयन < मदन (सं०)

रयनि < रजनी (सं०)[3]

अ आ—य-/व-श्रुति—गया, नया, तवा < तावा < तापक (सं०)

सवा < सवाअ < सपाद (सं०)

आ अ—य-/व-श्रुति—जाय, आय, खाय, गाय, राय < राज (सं०)। साथ ही राव < राज (सं०), पाव < पाद (सं०) ताव < तापक (सं०)।

आ आ—य-/व- श्रुति-खाया, बनाया, लाया, चौपाया, सवाया साथ ही पावा < पाद (सं०), लावा < लाजा (सं०)

ए ए—य-/व- श्रुति खेये, सेये। साथ ही विधिलङ् मैं खेवे, सेवे, लेवे।

ओ ओ—व-श्रुति बोवो, धोवो, सोवो।[4]

---

१. परन्तु ब्रजभाषा में अ ओ के अनुक्रम में य-श्रुति का प्रयोग होता है जैसे गयो, दयो, नयो।

२. इस अनुक्रम के उदाहरण केवल कुछ व्युत्पत्तिगत रूपों में ही मिलते हैं।

३. केवल पद्य में प्रयुक्त।

४. किन्तु ब्रजभाजा में ओ ओ के अनुक्रम में य-श्रुति का प्रयोग मिलता है, जैसे, बोयो, सोयो, धोयो।

इस विश्लेषण के निष्कर्ष को तालिका-बद्ध प्रतिनिधान के रूप में हम यों प्रस्तुत कर सकते हैं ।

(यहाँ ह्रस्व और दीर्घ इ, उ में कोई भेद नहीं किया गया है, क्योंकि श्रुतियों के रूप मे इस विचार के सम्बन्ध में तथा उनके व्यवहार मे कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता है ।)

	—अ	—आ	—इ	—उ	—ए	—ओ
अ—	य	य/व[1]	य		य	
आ—	य/व	य/व	य	व	य/व	व
इ—	य	य			य	य
उ—	व	व	य		व	व
ए—	व[2]	य	य		य/व	व
ओ—	व/य	य/व	य		य/व	व

इस तालिका को देखने से प्रकट होता है कि हिन्दी में स्वरानुक्रमों के २९ (उन्तीस) प्रयोग मिलते हैं जिनमें बारह का सम्बन्ध य-श्रुति से, ९ का सम्बन्ध व-श्रुति से और ८ का सम्बन्ध दोनों ही श्रुतियों से है । तालुमार्गीय संसर्पण की द्योतक य-श्रुति की ओर हिन्दी की प्रवृत्ति कुछ अधिक प्रतीत होती है । संस्कृत से जहाँ 'व' उपलब्ध हुआ है वहाँ भी हिन्दी के कई तद्भव रूपों में 'य' के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं जैसे, नव > नया । इसके अतिरिक्त इस तालिका से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है :—

१. इ अत्यन्त प्रबल स्वर है, क्योंकि स्वरानुक्रमों में वह किसी स्वर के पहले रहे या पीछे, वह बराबर अपनी निकटवर्ती तालव्य-श्रुति य से ही सम्बद्ध रहता है । 'य' को छोड़कर वह और कोई राग नहीं ग्रहण कर सकता ।

२. इस प्रकार उ केवल इ द्वारा अनुसरित स्थिति को छोड़कर अन्यत्र व-श्रुति से सम्बद्ध है ।[3]

---

१. आर्य भारतीय भाषा के प से आधुनिक भारतीय भाषा के व के विकास के प्रसंग में व-श्रुति के ऐसे उदाहरण प्रायः मिलते हैं ।

२. देखिये पाद टिप्पणी केवड़ा और नेवला ।

३. मिलाइये—Kellogg—A grammar of Hindi Language, London 1955 pp. 25, 29.

३. ए का सम्बन्ध भी य-श्रुति से ही है। इस सम्बन्ध का विच्छेद तभी होता है, जबकि उसके पहले 'उ' या उसके परे 'ओ' हो।

४. 'ओ' का सम्बन्ध व-श्रुति से है। इसमें अन्तर तभी होता है, जबकि इसका 'इ' या 'ए' से सम्पर्क हो।

५. 'अ' और 'आ' का परिस्थिति के अनुसार 'य' और 'व' दोनों ही श्रुतियों से सम्बन्ध है।

उपर्युक्त विश्लेषणों से यह विदित होता है, कि 'य' के राग का 'इ' और 'ए' तथा 'व' के राग का 'उ' तथा 'ओ' से घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत के उदाहरणों में यही बात देखने में आती है—यथा—√इ धातु के भूतकालिक रूपों को ले लीजिए—इयाम, ईयतुः; ईयुः; इयेष इत्यादि। इसी प्रकार √वच् से उवाच, भू शब्द से भुवौ, भुवः आदि। इ—य तथा उ—व के ऐसे सम्बन्ध का कारण उनकी सवर्णता या तुल्यस्थानीयता है। 'इ' और 'य' तथा 'उ' और 'व' के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में स्टेट्सन[1] ने उनकी अवयवी गति की दृष्टि से बहुत रोचक व्याख्या की है। परन्तु ध्यान रहे, कि ऐसी भी भाषाएँ हैं जिनमें इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं पाया जाता, वरन् इसके प्रतिकूल दृष्टान्त मिलते हैं। उदाहरणार्थ अफ्रीका की न्यांजा भाषा में 'इ', 'ए' आदि अग्र स्वरों के परे 'य' और 'उ' 'ओ' आदि पश्चस्वरों के परे 'व' का व्यवहार नहीं होता।[2] इस प्रकार के श्रुतिगत अन्तर भाषाओं की रागात्मक विशेषताओं के प्रमाण हैं। वस्तुतः प्रत्येक भाषा या बोली के अपने-अपने विशेष राग होते हैं। वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से उन रागों का यथावत् अध्ययन और विश्लेषण बहुत ही आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है।

---

१. L. Stetson—Bases of Phonology पृ० १५.

२. T. Hill—The Phonetics of a Nyanja Speaker with particular reference to the Phonological Structure of the word—M. A. Thesis (लन्दन विश्वविद्यालय, १६४८ ई०)

डा० सत्येन्द्र

दिवाली और लोक-वार्ता

'दिवाली' के त्यौहार का समारोह कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी से ही आरंभ हो जाता है और कार्तिक शुक्ल द्वितीया तक चलता है। प्रत्येक दिन एक विशेष निमित्त लिये रहता है। धनतेरस को कोई नया बर्तन खरीदा जाना चाहिए। दूसरे दिन नरक चौदस को तेल-मर्दन करके स्नान करना अनिवार्य है अन्यथा नरक मिलेगा। इसे छोटी दिवाली भी कहते हैं। तीसरा दिन ही दिवाली का दिन है। यह दिन दीपदान का है। इस दिन अमावस्या होती है। प्रतिपदा को गाय बैलों के साथ गोवर्द्धन पूजा होगी और दौज को बहिन द्वारा भाई का तिलक और सत्कार होता है।

यों तो प्रत्येक दिन का त्यौहार एक अलग त्यौहार है, फिर उनमें परस्पर एक संगति भी है। इसमें मुख्य अनुष्ठान तो दीपमालिका के दिन का लक्ष्मी-पूजन ही ठहरता है। पहला दिन त्रयोदशी के अनुष्ठान के लिए पात्र तथा आवश्यक सामग्री खरीदने के लिए है। चतुर्दशी अनुष्ठान पूर्व के स्नान और शुचि के लिए। तब अमावस्या को इष्ट पूजन अनन्तर गो-पूजन तथा आयुध-पूजन प्रतिपदा को, और तब अन्तिम दिन भोजन तथा भेंट आदि।

मुख्य उत्सव तथा अनुष्ठान का प्रधान अंग दीपदान है, लोक-वार्ता में दीपदान का बहुत महत्व है।

नटेश शास्त्री ने दक्षिणी भारत की एक वार्ता में बताया है कि प्रकाश से समृद्धि आती है। उन्होंने जो कहानी दी है उसका सार यह है :

> गरुड़ पक्षी किसी राजा की अंगूठी उड़ा लाया। वह अंगूठी उसने एक सगुनी के घर में डाल दी। वह उसे लेकर राजा के पास गया। राजा अंगूठी पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—कुछ मांग। राजा का हठ देखकर उस व्यक्ति ने विचित्र माँग रक्खी कि प्रति शुक्र को सब घरों में अँधेरा रहे केवल मुझे ही अपना घर प्रकाशित करने दिया जाय। राजा ने स्वीकार कर लिया। शुक्रवार को समस्त राज्य में अँधेरा देखकर लक्ष्मी उस सगुनो के घर में ही आयी। इस प्रकार उसको दरिद्रता सदा के लिए दूर हो गयी।

ऐसी ही एक वार्ता ब्रज में भी प्रचलित है।

एक राजा ने यह आदेश प्रचारित किया कि कार्तिक की अमावस्या को किसी के घर में रोशनी नहीं की जायेगी। सबने राजाज्ञा का पालन किया। किन्तु एक भटियारिन थी, उसने छिपा के अपने घर में दीपक जलाया। रात में लक्ष्मी सर्वत्र अँधेरा देखकर भटियारिन के घर में ही आयी। भटियारिन ने अपने किवाड़ तब खोले जब लक्ष्मी से वचन ले लिया कि वह कभी उसके द्वार को छोड़ कर नहीं जायगी। लक्ष्मी प्रकाश में ही रह सकती थी। उसे वचन देने पड़े। इस प्रकार दरिद्रता भाग गयी।

कहानी का नटेश शास्त्री वाला रूप बहुत प्रचलित है। उसमें केवल थोड़ा हेर-फेर स्थान-स्थान पर मिलता है। यथा बंगाल मे लक्ष्मी-पूजा की एक कहानी में राजपुत्री ने वरदान माँगा कि उसके घर को छोड़ कार्तिकी अमावस्या को और किसी के घर प्रकाश न हो। राजपुत्री का राजा ने एक बहुत दरिद्र से विवाह कर दिया था। राजपुत्री ने अपने पति से कहा था कि तुम्हें मार्ग मे जो वस्तु मिले ले आना। उसे एक मरा साँप मिला। राजपुत्र बीमार हुआ और वैद्यों ने बताया कि मरे साँप के सिर से यह अच्छा हो सकता है। राजपुत्री मरे सांप का सिर ले गयी, राजपुत्र अच्छा हो गया, और तब राजपुत्री ने वह वरदान मांगा। राजपुत्री के लक्ष्मी आगयी। बंगाली कहानी इससे आगे बढ़ कर यह बताती है कि राजा दरिद्र हो गया और पुत्री के यहाँ भिक्षार्थ पहुँचा। उसने पिता को पहचाना और लक्ष्मी-पूजा की विधि बतायी, आदि। अवध में दिवाली की कहानी में भूमिका में एक ऐसा घर है जिसमें सात लड़के और छ: बहुएँ थीं, सबके अलग अलग चूल्हे थे। सब लड़त थे। सातवीं बहू आयी तो उसने एक चूल्हा किया। पहली छ: मायके चली गयीं। वह अकेली सब भाइयों को खिलाती। उसने कहा सभी भाई कमा-कमा कर लाओ, जिसे कमाई न मिले, वह कोई चीज ही लाये। एक दिन सबसे बड़े भाई को काम नहीं मिला तो वह रास्ते में पड़े सांप की केंचुली ही उठा लाया। बहू ने वह छप्पर पर रखदी, एक चील रानी का हार लेकर उड़ी, और बहू के घर पर केंचुली देख, हार छोड़ गयी। केंचुल ले गयी। बहू ने हार राजा को लौटाया और वह वरदान मांगा। अवध की बहू चतुर थी। उसने उस अमावस्या को खूब रोशनी की, घर के कोने-कोने में। कोने-कोने को मूसल से पीटा। दरिद्र भाग गया। प्रकाश देखकर लक्ष्मी आ गयी। दोनों से बहू ने वचन ले लिया कि सात पीढ़ी तक दरिद्र इधर झांकेगा नहीं और लक्ष्मी घर छोड़कर नहीं जायेगी। अत: यही प्रकाश और लक्ष्मी का संबंध दिखाने वाली लक्ष्मी की वास्तविक कहानी बड़े क्षेत्र में प्रचलित है।

मिश्र में ईसा पूर्व के तीस वर्ष से भी पूर्व एक दीपदान महोत्सव हुआ करता था। यह महोत्सव ओसिरिस के लिए किया जाता था। इसका वर्णन हेरोडोटस तथा प्लूटार्क ने किया है। प्लूटार्क ने जिस प्रकार से इसका वर्णन किया है उससे विदित होता है कि यह उत्सव चार दिन तक लगातार होता था और इसकी तारीखें १३, १४, १५, १६, नवम्बर होती थीं। यह उत्सव उस समय होता था जब नील नदी में पानी घटने लगता था, उत्तरी हवाएं शिथिल पड़ जाती थीं, रातें बड़ी होने लगती थीं, और पेड़ों से पत्ते झड़ने लगते थे।

ओसिरिस के इस महोत्सव का महत्वपूर्ण अंग था—रात्रि में दीपमालिका। लोग तेल के दीपों की माला अपने मकानों के बाहरी भाग में प्रज्वलित करते थे, और ये दीप रात भर जलते थे। यह दीपमालिका इस दिन मिश्र भर में होती थी।

फ्रेजर महोदय ने हेरोडोटस, प्लूटार्क, लक्टण्टियस के कथनों तथा डेण्डेरा: के भित्ति-लेख से यह सिद्ध किया है कि यह उत्सव तीन पहलू रखता था—ओसिरिस की मृत्यु, उसका अंगच्छेदन, और पुनरुज्जीवन। इस समस्त व्यापार का प्रतीक होता था—जौ बोना। भूमि में जौ बोना जैसे मृत ओसिरिस को दफनाने के समान था। जल आदि देकर जौ का फूटना दूसरी स्थिति थी, और जौ के अंकुरित होने की अवस्था पुनरुज्जीवन की द्योतक थी। इस प्राचीन उत्सव में दीपदान का संबंध स्पष्टत: पुनरुज्जीवन से प्रतीत होता है। पुनरुज्जीवन कृषि-देवता का अथवा स्वयं कृषि का। भारत में लक्ष्मी के पूजन में खील-बतासों का प्रयोग अनिवार्य है।

ओसिरिस की पत्नी का नाम "ईसिस" है, जिसे हरी वस्तुओं का निर्माता, रोटी की देवी, सुरा की देवी, समृद्धि की देवी कहा गया है। ईसिस ही ओसिरिस को पुनरुज्जीवत कराके पुन: प्राप्त करती है। ईसिस लक्ष्मी के स्थान पर है और ओसरिस शस्य या शस्य-देवता अथवा उर्वरता का देवता है। उस दीप-दान को ईसिस की पूजा में भी समझा जा सकता है, क्योंकि वही ओसिरिस को खोज कर प्राप्त करती है। ईसिस को गायें बहुत प्रिय हैं। अत: गाय उसका प्रतीक हो गयी है। इस उत्सव में ईसिस को लकड़ी की गाय के रूप में दिखाया जाता था। यह ईसिस भारतीय अदिति प्रतीत होती है।

१. द्यौर्व:पिता पृथिवी माता (ऋ० १. १९१.६) = Osiris and Isis, Brother and sister, children of Geb, the earth God and Nut the sky Goddess. (Folklore Dictionary. p. p. 835)—

२. ऋग्वेद में अदिति को धेनु कहा गया है (१, १५३, ३) "अदितिर्हि गौ: (श. १४, २, १, ७, २, ३, ४, ३४) "The cow no doubt represented Isis Herself, for cows were sacred to her and she was regularly depicted with the horns of a cow on her head, or even as a woman with the head of a cow" (Golden Bough. p. 373)—कहीं अदिति को गाय ही न समझ लिया जाय, इसलिये ऋग्वेद ने कहा : "वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धी भिरुपतिष्ठयानाम्। देवीं देवेभ्य पर्येयूषीं। गामा मावृक्त मर्त्ये दभ्रचेता:।" "अदित गौ मात्र नहीं वह देवी है, वाक् विद है।" ऋग्वेद ८,७४-५ में कहा गया है— "दधाति गर्भमदितेरुपस्थे आ येन तोकं च तनयं च धामहे।" यह सोम के द्वारा होता है। सोम कौन? सोमा भ्रातादिति: स्वहा—सोम भाई अदिति बहिन। "Osiris and Isis Brother and sister.........lived together in happy Marriage" (Folklore Dictionary p. 835)। लोक वार्ता के मर्म पर दृष्टि

डालने से विदित होता है कि आइसिस की पूजा और लक्ष्मी की पूजा वस्तुतः अदिति की पूजा है, पृथ्वी माता की पूजा है। उसके उस रूप की पूजा है जिसका उर्वरत्व से और समृद्धि से संबंध है। समृद्धि पुनः प्राप्त हो, दारिद्रय नष्ट हो, यही इस पूजा के तंत्र का मूल है। महाराष्ट्र में स्त्रियाँ बलि की मूर्तियाँ चावल के आटे अथवा गोबर से बनाती हैं, उसे पूजती हैं और यह कहती हैं—"सब बुराइयां दूर हों और राजा बलि का साम्राज्य पुनः प्राप्त हो।"[1] मिश्र में हजारों वर्ष पूर्व बनस्पतियों के गूदे से ओसिरिस की मूर्ति चन्द्रमा के रूप की बनायी जाती थी, उसे वस्त्राभूषण पहनाये जाते थे। यह ओसिरिस की पुनः प्राप्ति का प्रतीक थी।

यह शश्यदेव, यह शश्य देवी, यह गाय, और यह रात्रि पर्यन्त दीपमाला, शरद ऋतु में जब कि रातें बड़ी होने लगती हैं अत्यन्त प्राचीन काल में भी दीपमालिका का महत्व सिद्ध करते हैं।

फ़ेजर महोदय ने इसी दीपमाला के संबंध में लिखा है कि :

"वर्ष में एक रात को घरों को ऐसा सार्वजनीन रूप से प्रकाश पूर्ण करने की प्रथा से यह संकेत मिलता है कि यह उत्सव केवल मृत ओसिरिस के ही स्मरण से नहीं होता होगा, वरन् मृत मात्र के लिए होता होगा, दूसरे शब्दों में यह समस्त आत्माओं की रात होती होगी। क्योंकि यह एक अत्यंत व्यापक विश्वास है कि मृत की आत्माएँ वर्ष में एक रात को अपने पुराने घर को देखने आती हैं, और ऐसे अवसर पर लोग इन आत्माओं के स्वागत की तैयारी म, उनके लिए भोजन तैयार करते थे तथा दीपदान करते थे, जिससे उन्हें मजारों से घर तक के मार्ग का निर्देश मिल सके।"[2]

दिवाली के इस चार दिन व्यापी त्यौहार के अन्तिम दिन पर जब ध्यान जाता है तो विदित होता है कि यह भइया दौज है और इस दिन भाई-बहिन का यमुना स्नान करना अत्यंत शुभ माना जाता है। मथुरा में इस यमद्वितीया को लाखों भाईबहिन स्नान करने के लिए देश भर से आते हैं। इस भाई-बहिन के स्नान के साथ एक बात और जुड़ी हुई है कि इस दिन भाई-बहिन गांठ जोड़ कर स्नान करते हैं। एक बात की ओर और ध्यान जाता है। ब्रज में चौदस या छोटी दिवाली के दिन जो दीपक आटे का बनाकर द्वार के बाहर रखा जाता है वह जमदीप या यम का दीपक कहलाता है। चौदस को यम का दीपक रखना प्रतिपदा को गोवर्द्धन अथवा गाय—बैल की पूजा, दौज को भाई-बहिन का यमुना स्नान और बहिन का भाई को तिलक और स्त्रियों द्वारा गौर-पूजा इस बात की ओर संकेत करते हैं कि इसकी जड़ में यम-पूजन का भाव भी अवश्य

. रायबवादुर बी० ए० गुप्ते : हिन्दू होलीडेज एवं सेरीमोनियल्स पृ० ३६.

२. देखिये फ्रेजर गोल्डनवाउ (संक्षिप्त संस्करण) मेकमिलन एण्ड को० लि० सैंन्टमार्न्टिस स्ट्रीट, लन्दन, १९५० पृ० ३७३-७४

है । यम मृत्यु के देवता हैं । ओसिरिस भी मृत्यु के देवता हैं ।[३] मिश्र के ओसिरिस भारत के यम हैं—ऐसा प्रतीत होता है । सूर सागर के एक पद में आया है :

दीपमालिका रचि रचि साजत
पुहुप माल मंडली विराजत,
× × × ×
घर घर देति जुबति जम हाथा[४]
पूजा देखि हँसत ब्रजनाथा ।

इससे दिवाली और यम-पूजा का भी घनिष्ठ संबंध दिखायी पड़ता है । यदि मिश्री लोकवार्ता की दृष्टि से समझा जाय तो ओसिरिस यम भी है और कृषि देवता भी है । आइसिस गौ प्रेमी ही नहीं स्वयं गौ मान ली जाती है। आइसिस को अदिति माना जाय तो वेदों में भी अदिति को गौ माना गया है । प्रतिपदा के दिन गौ-पूजा दिवाली के दिन की पूजा की ही गोवर्द्धन के रूप में विवृति है । द्वितीया के दिन भाई-बहिन का मिलन आइसिस और ओसिरिस के मिलन के समान है, उस समय के मिलन के समान है जिस समय कि आइसिस ओसिरिस के अंशों को जोड़कर उसे पुनरुज्जीवित रूप में प्राप्त करती है ।

इस विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि दीपमालिका की लोकवार्ता के मूल तंतु बहुत प्राचीन हैं और बहुत बड़े क्षेत्र में व्याप्त हैं । ओसिरिस आइसिस, अदिति, यम की पूजा के प्राचीन तंतुओं पर इन्द्र-पूजा का पर्त चढ़ा । साहित्यिक साक्षी से विदित होता है कि गोवर्द्धन-पूजा से पहिले इन्द्र-पूजा प्रचलित थी । इसके ऊपर कृष्ण ने गोवर्धन पूजा चलाई । ऊपर जो संकेत हमें मिले हैं उनसे यह कहा जा सकता है कि ओसिरिस, आइसिस आदि का जिस प्रकार कृषि-संवर्द्धन से संबन्ध था उसी प्रकार गौ-सम्बर्द्धन से भी था । अतः गौ-पूजा और गौ सम्बन्धी अन्य अनुष्ठान अत्यंत प्राचीन परंपरा के हैं । ऐसी स्थिति में इंद्र-पूजा ही बाद में उक्त अनुष्ठान से जुड़ गयी होगी । इसी लिए कृष्ण ने उसे मूल परम्परा की जाति से भिन्न जाति की पूजा समझ कर उसका निवारण कर दिया होगा और गोवर्द्धन-पूजा को पुनः महत्व दिया होगा । इस समस्त लोक-वार्ता में एक तत्व ऐसा है जो सुलझा हुआ नहीं है। प्रतिपदा के प्रातः ब्रज में सूर्योदय के पूर्व से लेकर सूर्योदय तक घर की स्त्रियां स्याहू पूजती हैं । इसमें वे बीच में गोबर का एक पिण्ड स्थापित करती हैं और सूप में सींकें, रुई, हल्दी और खील, दो पूड़ियाँ, लड्डू

---

३. Osiris, The king and Judge of the dead of ancient Egyptian religion, chief diety of the cult of the dead, and thus the great cult God of Egypt (Folklore Dictionary vol. II p. 835.)

४. काशी वाली प्रति में संपादकों ने 'जम' को 'जन' लिखा है । यह पाठ भेद मुझे ठीक नहीं प्रतीत होता ।

आदि लाती हैं। सींकों को वे उस पिण्ड में लगाती हैं और उसके ऊपर हल्दी में भिगोकर उसके सिरे पर रुई लगाती हैं। देवी देवताओं के बहुत से गीत गाये जाते हैं। यह स्याहू क्या है? और इसका क्या अभिप्राय है? यह अभी तक स्पष्ट नहीं। ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन करते समय स्याहू के संबंध में यह पंक्तियां लिखी गयी थीं :

"स्याहू के सम्बन्ध में ब्रज के गाँवों में एक प्रचलित मत है कि यह एक स्यांपिन है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी यह असम्भव नहीं। सर्प से साँप—स्याँपु—स्याउं—स्याउ—स्याऊ—स्याहू यह निरुक्ति हो सकती है। अहोई आठें को जो भित्ति-चित्र स्त्रियां पूजने के लिए बनाती हैं उनमें भी सर्प-आकृतियाँ बनायी जाती हैं। दिवाली के उपरान्त प्रदिपदा को सूर्योदय से पूर्व ही स्याहू का पूजन स्त्रियों के द्वारा किया जाता है। गोबर का एक गोल चोथ बीच में रख लिया जाता है। सींकों के सिर पर रुई के फूल (फाहे) लगाकर उन सींकों को उस गोबर में चारों ओर गाड़ देते हैं। इस पर एक दीपक जला दिया जाता है। स्याहू को यदि सर्प ही माना जाय तो यह उसके मणिधर फण का प्रतीक हो सकता है। यह भी हो सकता है कि यह "स्याहू" स्यावढ़ हो, सर्प नहीं। दीपावली "शश्य" का त्यौहार है। शश्य की जो ढेरियां "भूमि-गणेश" के निमित्त बनाई जाती हैं वे उजरी या स्यावढ़ कहलाती हैं।[५] कुछ भी हो अहोई आठें की कहानी की स्याहू स्यांपिन ही है। उसे स्याहो माता भी कहा गया है। एक स्त्री से मिट्टी खोदते समय फावड़े से अनजाने ही अंडे बच्चे कट गये।[६] उनकी मां अब प्रति वर्ष उस स्त्री के बच्चे ले जाया करती, इस प्रकार प्रति अहोई आठें को उसे रोना पीटना पड़े। उसकी ननद, दौरानी, जिठानी ने उसका नाम "मदरोमनी" रख लिया। उसके इस दुःख से करुणा-कातर हो एक बुढ़िया[७] ने उपाय बताया कि आने वाली अहोई आठें को तू किसी नाँद में कढ़ी, किसी में कुछ, किसी में कुछ पका के रख लेना।[८] बिटौरा में पुत्र जनना। आधी रात को स्याहू माता आयेगी, उसके जूएं देखना, उससे कानों की तुरपुती या तरकी मांग लेना। तेरे बच्चे जी उठेंगे। उसने ऐसे ही किया और उसके बच्चे उसे मिल गये। ब्रज में इस स्याहू का

५. देखिए—सर हेनरी ऐम० ईलियट की "मेमोयर्स आन दी हिस्ट्री, फोक लोर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन आव दी रेसेज आव दी नार्थ प्राविन्सेज आव इंडिया" भाग १ पृ० ३११ की पाद-टिप्पणी।

६. ये अंडे बच्चे स्याहो के ही थे। अकबरपुर से पातीराम जी ने जो कहानी संग्रह की हैं उसमें ये चकोल चकवा के लिखे गये हैं। लोहबन की कहानी में भी स्यापिन के लिखे गये हैं। अकबरपुर की कहानी में किसी भ्रम से ही ये चकोल-चकवा के बच्चे हो गये हैं। आगे उसमें भी स्याहो द्वारा प्रतिकार की बात कही गयी है।

७. किसी-किसी कहानी में बुढ़िया ने तो केवल इतना बताया है कि पड़ोस की गाय की स्याहू से मैत्री है। उसकी सेवा कर। उस स्त्री ने मन लगाकर सेवा की। प्रसन्न होकर गाय ने स्याहू को प्रसन्न करने का उपाय बताया।

८. लोहबन वाली कहानी में दो नाँदों में दूध भर कर रखने की बात है। एक में मीठा दूध, दूसरी में नमकीन, कहीं-कहीं इस अभिप्राय का उल्लेख ही नहीं किया गया।

जो थापा बनता है उसका रूप मराठी के दिवाली के थापे में शेष और बट सावित्री के थापे में शेषाचपलंग से मिलता जुलता होता है । इस साक्षी से भी स्याहू का सर्प से सम्बन्ध विदित होता है, ऊपर जो कहानी दी गयी है उसमें स्याहू और गाय की मित्रता का उल्लेख है । यह स्याहू को प्रसन्न करने का उपाय बताती है । इस सम्बन्ध से लोक वार्ता का रूप कुछ और खुलता है । गाय अदिति है, आइसिस है, कृषि देवी है अथवा लक्ष्मी है । वह शेष नाग से सम्बन्धित है । शेष नाग विष्णु अथवा नारायण के लक्ष्मी सहित शैया का काम करते हैं । किन्तु यहां पर प्रश्न उपस्थित होता है कि स्याहू का वह गोबर रूप क्या है और उसमें लगी हुई सीकें और लगी हुई रुई के फाए क्या अर्थ रखते हैं । विलियम टाइलर आलकाट ने सनलोर आफ औल एजेज में पृ० १३६ पर लिखा है ।

"As we have seen Osiris, the sun god the egyptians triumphing over the demon of darkness, so in India we find Indra, the great solar deity of Hindus, successful in his combat with Vratra, the Serpent of Night."

वृत्र की कहानी में हमें यह उल्लेख मिलता है कि इसने स्वर्ग के भण्डार, स्त्रियों, आदि को बन्दी बना लिया था । ब्रज की कहानी में स्याहू बच्चों को ले गई है और उसने उन्हें अपने कान में रख लिया है । वृत्र नें उन्हें एक खोह में बन्द कर दिया था । स्याहू अथवा वृत्र से स्वर्गिक समृद्धि और सूर्य के पहिए तथा स्त्रियों की मुक्ति की प्रसन्नता में गोबर के पिण्ड में सीकें लगाकर और रुई के फाए लगाकर संभवतः सूर्य रूप में इन्द्र अथवा विष्णु की पूजा को जाती है । गोबर का पिण्ड सूर्य का प्रतीक है और सीकें सूर्य की किरणें और रुई के फाए प्रकाश हैं । सूर्योदय से पूर्व से लेकर सूर्योदय तक इस अनुष्ठान का विधान भी यही सिद्ध करता है कि यह अहिवृत्र से मुक्त करने वाले और होने वाले सूर्य की और समृद्धि की ही पूजा है । इस दृष्टि से यदि समीकरण करके देखा जाय तो सूर्य = ओसिरिस = यम = इंद्र = गोबर्धन = आदित्य विष्णु = नारायण आदि एक ही हैं, इसी प्रकार अदिति = आइसिस = यमी = गौ = पृथ्वी लक्ष्मी भी हैं । अतः सूर्य और कृषि के सम्मिलित मूल पूजा–विधान से संबंध रखने वाले जितने भी तत्व हो सकते हैं इतिहास क्रम में समय-समय पर वे इस दीपावली के साथ जुड़ गये हैं । इसके अन्तरंग में वह नाग-पूजा भी है जो भादों में प्रबल रहती है, क्वार में कम और कार्तिक में केवल प्रतीक-संकेतों से प्रकट होती है ।

परिशिष्ट

दिवाली के अनुष्ठान का रूप

धनतेरस

धनतेरस पर साधारणतः यह आवश्यक समझा जाता है कि इस दिन कोई धातु की वस्तु क्रय करके घर में अवश्य लायी जानी चाहिये। इससे वर्ष भर सम्पत्ति की वृद्धि होती है। फलतः इस दिन बर्तनों की बहुत बिक्री होती है। प्रत्येक घर में एक नया बर्तन अवश्य पहुँच जाता है। अन्य प्रकार की स्वच्छता के साथ पात्रों की स्वच्छता का महत्व इससे प्रतिपादित होता है। पुराने टूटे फूटे बर्तन इसी दिन बदल दिये जाते हैं। और घर में नये बर्तन जगमगाते हैं। कहीं-कहीं धनतेरस के दिन से दिवाली तक तीन दिवस निरंतर लक्ष्मी-पूजन होता है। धन-तेरस लक्ष्मी-पूजन का आरम्भिक दिवस है। इस दिन स्त्रियाँ उबटन आदि करके स्नान करती हैं। लक्ष्मी की मूर्ति को दूध से स्नान करा के पूजते हैं।

नरक चौदस

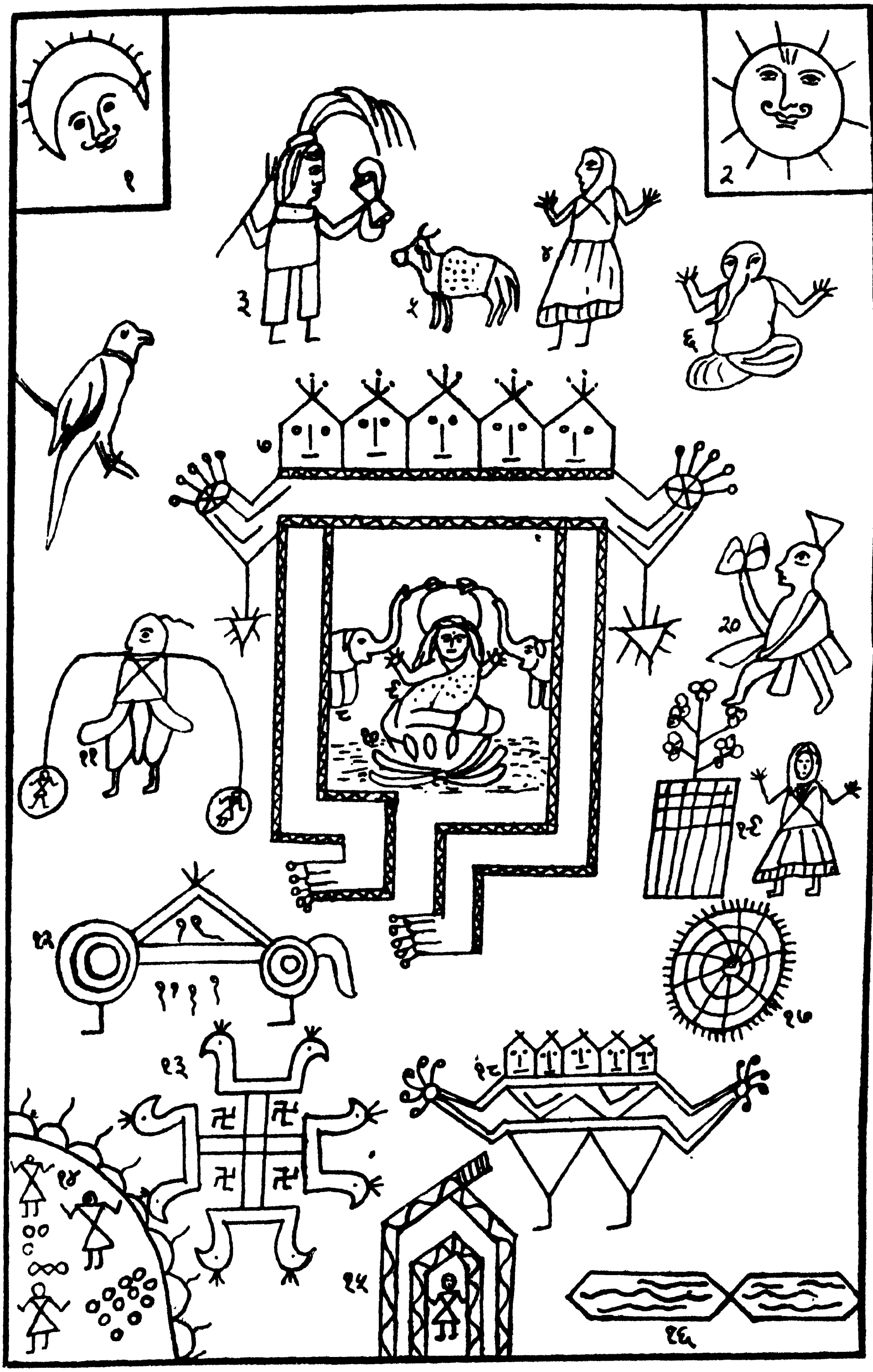
दूसरे दिन नरक चौदस होती है। इस दिन स्नान करना अत्यन्त अनिवार्य है। सायंकाल को आटे का चौमुख दीपक बनाकर मोरी में रख दिया जाता है। यह ध्यान रखा जाता है कि कोई उस दिन दीपक को जल्दी न बुझा जाय। कहीं-कहीं इस दिन अँधेरे में ही उठकर स्नान किया जाता है। तब चावल के आटे का दीपक बना कर और लड्डू बना कर किसी बालिका द्वारा प्रत्येक पुरुष की आरती उतारी जाती है। उसके सामने चिराग रख दी जाती है। वह पुरुष चिराग को बांये पैर से कुचल कर बाँये पैर की ठोकर से दीपक बुझा देता है। तब दुबारा स्नान करता है। नये-नये वस्त्र पहिनता है, यह मानो नरकासुर के वध पर शुद्धि के लिए स्नान किया जाता है।

दिवाली

अमावस्या को दिवाली होती है। दिवाली के दिन कहीं-कहीं आठें से घर में चित्र बनाये जाते हैं। ब्रज में तो करवा चौथ से ही चित्र बनते हैं। चौथ, आठें और अमावस्या को अलग अलग चित्र बनते है, करवा चौथ पति की मंगल कामना के लिए, आठें, जो अहोई आठें कहलाती है, पुत्रों को मंगल कामना के लिए और दीपावली समस्त घर और कुटुम्ब की श्री वृद्धि के लिए होती है। ब्रज में ये चित्र भित्तियों पर बनते हैं। इसकी साधारण रूपरेखा एक-सी होती है। मध्य का मुख्य अभिप्राय (मोटिफा) उस दिन के अनुकूल रहता है। दिवाली का चित्र सफेद भूमि पर नारियल के खोपड़े को जलाकर उसकी दूध में घोलकर स्याही बनाकर काढ़ा जाता है। दिवाली को समझने के लिए इस भित्ति चित्र का समझना आवश्यक है।

इस चित्र में ये अभिप्राय मिलते हैं

(१) चन्द्रमा (२) सूर्य (३) शिव गंगा (४) पारवती (५) नादिया (६) गणेश (७) दिवाली (पंचमुखी) (८) हाथी (९) लक्ष्मी (१०) कमल (११) सरमन-काँवरि लिये



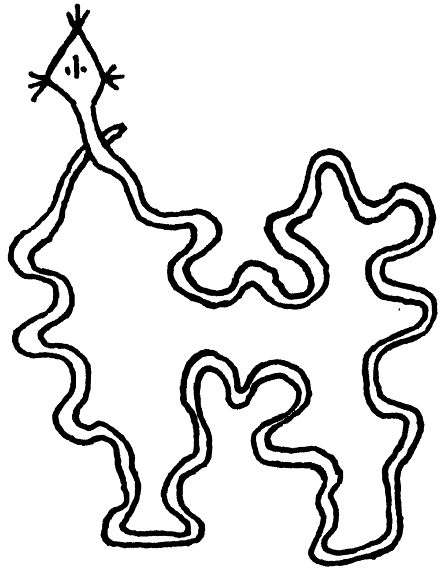


Plate NO. 5.

शेष

[देखिए पृष्ठ ७१]

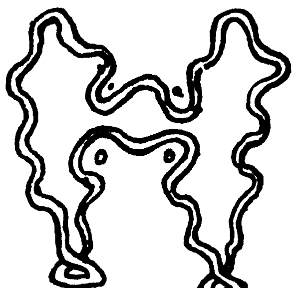
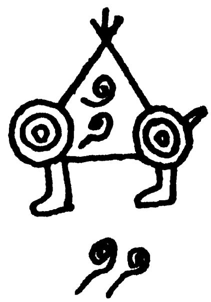


Plate NO. 15.

शेषाच-पलंग

[देखिए पृष्ठ ७१]



स्याहू

[देखिए पृष्ठ ७०]

[हिन्दू होलीडेज एण्ड सेरीमोनियल्स
लेखक राय बहादुर बी॰ ए॰ गुप्ते में]

श्रवणकुमार (१२) स्याहू (१३) सांतिया (स्वस्तिक) (१४) ग्वारिया-ढिटारिया (जुआ खेलने वाले) (१५) दिवाली का द्वार और उसका द्वारपाल (१६) गंगा और यमुना । (१७) छबरिया (१८) गोवर्धन (१९) तुलसी जी और उसकी पूजिका (२०) हनुमान (२१) तोता । घर और स्थान भेद से कुछ भेद हो सकता है। पर साधारणतः ये बातें दिवाली के चित्र में आवश्यक है इनके अतिरिक्त उक्त कारण से और भी कुछ बातें इसमें सम्मिलित की जा सकती है ।

जहां यह चित्र बनाया जाता है वहीं मिट्टी के खिलौनों के रूप में लक्ष्मी गणेश आदि देवताओं की मूर्ति लाकर रखी जाती है। मृण्मूर्तियों की यह पूजा अच्छी मूर्तियों की स्थानापन्न नहीं वरन् यह पूजा वैदिक आर्यों के आगमन से भी पूर्व की सिद्ध होती है । मोहन जोदड़ो की खुदाई में मिली मृण्मूर्तियों से यह बात सिद्ध हो चुकी है। लोक में इतनी पुरानी परम्परा आज तक जीवित है । इनमें दीपक रखने का दीपक चंडोल जिसमें मिट्टी के चार छोटे पात्र जुड़े रहते हैं । गूजरी, जिसके सिर पर एक खाली घड़ा रहता है और मिट्टी की छोटी कोठी भी होती हैं । रात्रि में यहां पूजा के समय दीपक रखा जाता है। यह रात भर जलता है। कहीं-कहीं पहले यह दीपक घी से भर कर जलाया जाता है । फिर तेल डालते रहते है । यह श्योरती का दीपक कहलाता है । रात्रि पर्यन्त दीपक जलते रहने की एक रोचक कहानी प्रायः भारत भर में प्रचलित है। उसका मुख्य अभिप्राय यह है कि किसी राजा के भाट ने राजा से यह वरदान माँग लिया कि दिवाली की रात को केवल उसी के यहां दीपक रात भर जलेगा कोई दूसरा नहीं जला सकेगा । दिवाली को ऐसा ही हुआ । सारा नगर अंधकार मग्न था। केवल भाट के यहाँ दीपक जल रहा था । दिवाली की रात को लक्ष्मी आती है । नगर में लक्ष्मी आयी। राजा के यहा अंधकार देखकर लौट पड़ी। घर घर में अंधकार था प्रकाश केवल भाट के यहां था । लक्ष्मी ने उसके घर में प्रवेश करना चाहा । भाट ने कहा यदि सदा के लिए आओ, स्थिर होकर आओ तो आ जाओ । लक्ष्मी को वचन देना पड़ा उसके लिए और चारा ही नहीं था। वह अन्धकार में जा नहीं सकती थी। उसी दिन से भाट के यहां श्री वृद्धि होने लगी। तब से रात्रि पर्यन्त दीपक जलाना आवश्यक हो गया ।

पूजा के समय कहीं कहीं थालों में रुपये आदि रखकर पूजे जाते हैं । पूजा खील बतासों से होती है । कहीं कहीं लक्ष्मी पूजन के लिए धन राशि न रख कर केवल एक रुपया ही रख लिया जाता है । कोई कोई लक्ष्मी पूजा के साथ सरस्वती पूजन अथवा शस्त्र पूजन भी करते हैं ।

दरिद्र भगाना

यहां तक के अनुष्ठान में प्रायः पुरुषों का ही हाथ विशेष है । स्त्री तो उस अनुष्ठान के लिये आवश्यक भित्ति-चित्र ही अंकित करती हैं । पर इस पूजा के उपरांत अनुष्ठान का कार्य स्त्री के हाथ में आ जाता है । रात्रि के पिछले ब्राह्म मुहूर्त में उठकर वह पुराने सूप को एक लकड़ी से पीटती हुई घर भर में और घर के कौने कौने में जाती है ।

और मन में कहती है कि दरिद्र दूर हो लक्ष्मी आवे। समस्त घर में से दरिद्र को इस प्रकार भगा कर वह मुख्य द्वार से बाहर जाकर कुछ दूर और दरिद्र को खदेड़ आती है। और वहीं वह पुराना सूप फेंक आती है।

स्याहू

तब वह एक नये सूप में उबले चावलों का एक लड्डू व स्यौरती का दीपक, चार खीखरी, एक सरवे में हल्दी, कुछ सींकें तथा रुई लेकर नये वस्त्र पहन कर सूर्योदय से पूर्व अपने कुटुम्ब के केन्द्र गृह की किसी पौरी में जाती है, कुटुम्ब की अन्य स्त्रियाँ भी आ जाती हैं। वहां गोबर का एक चोथ रख लिया जाता है वहाँ पहुँच कर प्रत्येक स्त्री दो-दो सींकें गोबर में गाढ़ देती हैं। उनमें सींक की दो बालियाँ लटका देती हैं। ऊपर रुई की फुरफुती लगा देती हैं। पाँच सींकें सर्प गति रूप टेढ़ी-मेढ़ी तोड़ के उसमें लगा देती हैं। इसके उपरांत सूंड़ा-भसूंड़ा किया जाता है, सूंड़ा-भसूंड़ा एक प्रक्रिया है। प्रत्येक स्त्री अपने चावल के लड्डू को लेकर अपने आँचल में अपने हाथ को छिपाकर हिलाती हुई कहती है—लडुआ ले, ललुआ दे। तब वह उसे दूसरी स्त्री को दे देती है। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री का यह लडुआ पांच बार घूम जाता है। फिर ब्राह्मण को दे दिया जाता है। फिर सब की सींकें एकत्र करके बुहारी बना ली जाती है। यह झाड़ू बायें हाथ से पीठ पीछे ले जायी जाती है। और पीठ पीछे दोनों हाथों से इस झाड़ू से जमीन साफ करने का अभिनय किया जाता है। और तब पड़ौसिन को दे दी जाती है। वह भी ऐसा ही करती है। इस प्रकार पांच बार यह बुहारी भी घूमती है।

इस समस्त तांत्रिक से अनुष्ठान में स्याहू की कहानी का ही प्रतिविधान है। स्याहू के अंडे-बच्चे इसी प्रतिपदा के दिन एक गरीब स्त्री ने भूल से काट डाले थे। अब तो स्याहू प्रतिवर्ष उस स्त्री के बच्चे को ले जाने लगी। वह बड़ी दुःखी रहने लगी। तब एक बुढ़िया ने उसे गाय की सेवा करने का परामर्श दिया। गाय की स्याहू से मैत्री थी, वह स्त्री प्रतिदिन अँधेरे अज्ञात ही गाय का स्थान झाड़ आती थी। सींकों से संभवतः इसलिए झाड़ने का अनुष्ठान किया जाता है। गाय प्रसन्न हुई उसने उसे बताया कि जिस दिन स्याहू आवे उस दिन खूब बेसन भात बनाना, पक्का भोजन भी बनाना, नाँद भरकर दूध रख देना—चावल के लड्डू से सूंड़ा-भसूंड़ा करना स्याहू को खिलाने का रूपक है। गाय ने बताया कि जब वह खा चुके तो उसके सिर के जूंयें देखने लग जाना। गोद में अपना बच्चा ले लेना। बीच-बीच में उसे नोंच देना। वह रोयेगा। जब स्याहू पूछे क्यों रोता है तब कहना अपने भाइयों को माँगता है, रहे कैसे। उसने ऐसा ही किया और स्याहू ने प्रसन्न होकर कान की तुरपुती में से उसके सातों बच्चे निकाल के दे दिये। बालियाँ बनाकर लगाने से कान का बोध कराया जाता है। रुई की फुरफुती तुरपुती या तरकी का स्थान लिये हुए है। पांच सर्पाकृत सींकों के टुकड़े स्याहों के अंडे बच्चों के स्थान पर हैं। इस प्रकार अहोई आठें पर जो कहानी कही जाती है वही यहां मौखिक और पृथुल रूप ग्रहण कर लेती है। पुत्रों की कल्याण-कामना का यह आज एक धार्मिक तंत्र बन गया है।

गोवर्द्धन

दोपहर को आँगन में गोवर्द्धन बनाया जाता है, यह गोबर से बनाया जाता है। इसमें एक ओर मुख, चौड़ा पेट दोनों ओर हाथ और दो पैर बनाये जाते हैं। पैरों की ओर द्वार होता है। वहाँ एक गोबर का कुत्ता बनाया जाता है, पेट में बरोसी, दूध की हाँड़ी, मठा चलाने की मथानीआदि गोपालन और दूध मक्खन से सम्बन्ध रखने वाली चीजें बनाई जाती हैं। रात्रि में पुरुषों द्वारा इसकी पूजा होती है। और परिक्रमा की जाती है। विविध स्थानीय देवताओं की जय बोली जाती है। इस परिक्रमा में गोवर्द्धन पर्वत और अन्य तीर्थों का उल्लेख होता है। 'गोरधन की परिकम्मा' देउ मानसी गंगा श्री बलदेव' : पूंछरी के लौठा की भी जय बोली जाती है। कहीं-कहीं जैसे इंदौर में गोबर से राजा बलि की रचना की जाती है। गोवरधन की नहीं। गोवर्द्धन की पूजा के अवसर पर गौ-पूजा भी होती है। आटे के दीवले घी में सेक कर पूजा में सम्मिलित होने वालों को बाँटे जाते हैं।

भैया दूज

भैया दूज इस त्यौहार का अन्तिम उपसंहार का दिन है। इस दिन गोवर्द्धन उठा दिया जाता है। उस स्थान पर हल्दी और आटे का चौक पूरा जाता है, इस चौक में भीतर गोबर का घर बनाया जाता है। इसमें गोबर की एक गौर बनायी जाती है। गोबर को सूच्याकार करके रख लेते हैं। उस दिन की गौर की विशेषता यह होती है कि उसके मुँह आदि नहीं बनाया जाता है। उसे ओढ़नी भी नहीं ओढ़ाई जाती है, नंगी रहती है, गौर की पूजा खीलों से करके गीत गाते हुए आव बनाई जाती है। ये रुई और कपास की बनाई जाती है, गोल अंगूठी जैसी। उन्हें हल्दी से रंगते जाते हैं। गीत यह गाया जाता है।

> जुहार मच्यौ है दिवारी की गति को हारै को जीतिए
> रामपरसार क्रमशः सब भाइयों का नाम, जीते सब ससुरारि
> बहुरिया हारीं सब प्यौसार

अब गौर हटा दी जाती है। गोबर का घर भी समेट लिया जाता है। उस स्थान पर कटेरी के पत्ते रख लिए जाते हैं उन पर लोटा रहता है। सीधे हाथ की पीठ पर हल्दी से साँतिए बनाये जाते हैं। उलटे हाथ की छिगुनी उंगली में बनी हुई आव पहन ली जाती है, कुवारी दो आव बनाती हैं। ब्याही चार आव पहन कर उसी उंगली से लोटा स्पर्श कर हिलाती जाती हैं। और यह गीत गाया जाता है।

> आज दौज कौ दौसरौ भैया न्योंतो भैंन कैं
> एक रे भैया दूजी भावजी तीजे भवजिया कौ बालका
> लागौ नगीना मैलौ न होय
> हीरा लाल भइया (सब भाइयों का क्रमशः नाम लिया जाता है।)
> आव अहो नेक वेग जुरि जइयो
> भवजिया कौ लाल नगीना मैलौ न होय

आव की कितनी ही कहानियां हैं। उन में से सब या कुछ कहानियाँ इस अवसर पर कही जाती हैं। सभी कहानियों में बहिन का भाई के प्रति प्रेम और उसके लिए सब कुछ करने का भाव प्रकट होता है।

एक कहानी कुछ ऐसे हैं :

एक राजा के रानी थी, रानी ने एक साँप मार कर उसके जहर को दीपक में डाल दिया, हड्डियाँ खाट के चारों पायों के नीचे गाड़ दीं, झिल्ली की अँगिया बना के पहिन ली, राजा के आने पर उसने कहा राजा एक पहेली का अर्थ बताओ ।

द पिय बाँयत पिय बाँयत पिय की जोरूं दीवला पी की पहरूं अंगिया
सो हियरा बसै समाय

जब किसी विद्वान से भी अर्थ नहीं बता, तब बहिन के यहां गया । बहिन बैठी भैया की आव जोड़ रही थी, वह टूट टूट जाती थी पर राजा जब उसके पास पहुँच गया तो आव जुड़ गई, बहिन ने पीछे देखा तो भाई खड़ा है । भाई ने अपना कष्ट बताया, बहन ने कहा मैं जानती तो नहीं पर लौट कर चलो भेद शायद मिल जाय । उसने बरोसी में औटता दूध छोड़ा, पालने में बच्चा छोड़ा, घर द्वार योंहीं छोड़ भाई के साथ चल पड़ी। बीच में एक जगह रात को ठहरे वहां दीपक की मां रहती थी । दीपक आया, माँ ने पूछा बड़ा परेशान रहता है, बड़ी देर से आता है। दीपक ने कहा—एक राजा की रानी ने सांप का विष मेरे तेल में डाल दिया है जिससे जला जाता हूं । उसने और सब बात भी बता दी । बहन जग रही थी । समस्त बात सुन ली, घर पहुँच कर भाभी की चोली फाड़कर फेंक दी और समस्त बात बता दी । इस प्रकार बहिन ने भाई को कष्ट से उबारा ।

एक दूसरी कहानी यों है—

राजा की रानी राजा को भुसी की रोटी देती थी । कनक की स्वयं खाती थी । राजा पूछता तो कह देती थी ।

पल्ली पार तेरी भैंन बसै
बाके पादे कनक उड़े ।

राजा बड़ा दुखी था। वह बहिन के गया, बहिन आव जोड़ रही थी । भाई के पहुँचने पर ही आव जुड़ी । बहिन ने भाई से पूछा—क्यों पीला पड़ रहा है । बात सुन कर उसने पांच कठपुतलियाँ राजा को दी, वे कटपुतली बहिन के परामर्श के अनुसार चारों कोनों और देहरी में गाड़ दीं । स्वयं कुठिला में छिप गया, रानी ने भूसी की रोटियां राजा के लिए बनायीं, अपने लिए कनक का अंगा बनाया । अंगा दूध में मीड़कर उसने रख दिया ।

एक पुतली ने कहा क्या करती
स्त्री ने कहा नित करती सो अब करती
चारों पुतलियों ने ऐसे ही कहा
पांचवीं ने कहा नित करती

तो खसमा पूता क्यों डरती ?

रानी शौच के लिए चली।

राजा कुठीले में से निकल कर आया और अंगा रखा खा गया, उसकी जगह चाकी का झन्ना चाकी साफ करने का कपड़ा पानी में डाल कर रख दिया।

रानी आकर खाने बैठी और झन्ना खा गयी। पहली से चौथी कठपुतली ने तो वही कहा पूछा जो पहले पूछा था। पांचवी ने कहा—

अनखाती घनियां
लीलि गयी खसम कौ तनियाँ

राजा बाहर आया उसने रानी से बुरा-भला कहा।

इस अवसर पर कही जाने वाली कहानियों में सबसे अधिक प्रचलित वह कहानी है जो 'कोसी कौ पूत अनकोसी कौ भइया' नाम से विख्यात है। इसमें बहिन को भाई पर आने वाले संकटों का पता चल गया तो वह पागल सी बन कर भाई को कोसती-कोसती गयी औरउसे संकटों से बचा लिया।

स्पष्ट है कि इन सभी कहानियों में भाई बहिन के प्रेम का दृढ़ रूप दिखाया है। बहिन ने त्याग पूर्वक कष्ट सहकर भी भाई को कष्टों से उबारा है। ऐसी कहानियां ही तो बहिन-भाई के प्रेम को बनाये रखने में सहायक होती रहती हैं। इसके द्वारा ही दूर-दूर होते हुए भी दोनों को एक दूसरे की हित-चिंतना का ध्यान रहा है।

इन कहानियों के उपरांत गणेश जी की एक अद्भुत कहानी और कही जाती है। गणेश जी एक चिमटी या चुटकी में चावल लेकर आये और एक कुल्हिया में दूध। घर घर में जाकर पूछते फिरे कि कोई मेरी खीर बना देगी। सबने असमर्थता प्रकट की। एक बुढ़िया ने कहा ला भया बना दूंगी। गणेश जी ने कहा तो ला, सबसे बड़ा पात्र ला। चावलों और दूध से सब पात्र भर गए और खीर बनायी गयी। गणेश जी ने कुछ समय उपरांत लौटने का बचन देकर स्नान करने चले गये। उस बुढ़िया ने चावल दूध खूब पास-पड़ौस में बांटा। वह कम ही न होता था। खीर पक गयी बुढ़िया की बहू को बहुत भूख लगी। गणेश जी को आने में देर हो गयी। उसने गणेश के नाम से खीर निकाल दी और कहा गणेश जी महाराज जहाँ भी हों स्वीकार करें। उसने तब स्वयं खीर खायी। तभी गणेश जी आये। बुढ़िया ने कहा खीर खाओ पक गयी गणेश जी ने कहा मुझे तो तेरी बहू ने पहले ही खिलादी। तब गणेश जी के आदेश से वह खीर बुढ़िया ने सभी को बाँटी।

पूजा हो जाने के उपरांत आव उतार कर गौर के सिर पर रख दी जाती है। मूसल पर हल्दी के पांच फेरे लगा दिए जाते हैं। फिर कटेरी, खील, गोबर, बतासे आदि आदि वहां से उठाकर घर के बाहर उल्टे हाथ के कौने के नीचे ये चीजें डाल कर मूसल से कूटी जाती हैं। और यह गीत गाया जाता है।

वैरीयरा जे सब दल मारे हो आज

राम के कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के नाते-रिश्तेदारों के नाम क्रमशः लिए जाते हैं।

वैरीयरा जे सब दल मारे हो आज
घर कूट धरि मारे वैरियरा जे सब दल मारे हो आज

सब का नाम ले चुकने पर हल्दी की चिड़ियाँ दोनों कौनों पर बनाई जाती है। दोनों कौनों पर पानी डाल कर कौने को सिराया जाता है।

घर में लौटते समय यह गीत गाया जाता है

आज की घड़िन भरे आनन्द बधाये जी राज
शुभ की घड़िन भरे आनन्द बधाये जी राज
साहब घर आये जी राज
ससुर वियाही हमारी सास कहामें जी राज
जेठ वियाही हमारी जिठानी कहाई जी राज
जिठानी के जाये जठौत कहाये जी राज
देवर वियाही दौरानी कहाई जी राज
दौरानी के जाये दौरौता कहाये जी राज
ननद वियाहे हमारे नन्दोई कहाये जी राज
नन्द जाये भानेज कहाये जी राज
साहिब वियाही हमारी सौत कहायो जी राज
सौत के जाये सौतेला कहाये जी राज

इस समस्त दीपावली की लोकवार्ता का स्तर कितना ऊँचा, कितना भावुक, कैसा गूढ़ और कल्याण भावों से परिपूर्ण है। इसकी वैज्ञानिक शोध भी उतनी ही रोचक है।

प्रो० गोलोक बिहारी धळ

अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त भारतीय शब्दावली

भारत में अंग्रेजों का दो सौ वर्ष तक राज्य रहा। इस अवधि में अंग्रेजी भाषा ही राज-काज का माध्यम रही, जिससे हम स्वतन्त्रता के १० वर्ष बाद भी पिंड नहीं छुड़ा पा रहे हैं। अंग्रेजी भाषा और शैली का भारत की सभी भाषाओं पर प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। आश्चर्य की बात यह है कि उनके जाने के पश्चात् भी उनकी भाषा के प्रति मोह और अधिक बढ़ गया है। शासन काल में अँग्रेजों का भारतीय जनता और उसकी विभिन्न भाषाओं से भी निरन्तर सम्पर्क बना रहा। इस सम्पर्क के फलस्वरूप जहां एक ओर वह हमारी संस्कृति से प्रभावित हुए वहाँ दूसरी ओर उनकी भाषा में भी भारतीय शब्दावली निरन्तर बढ़ती गई। डा० तिवारी ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार के शब्दों की संख्या २३०० लिखी है।'[1] भारतीय रहन-सहन, सभ्यता, संस्कृति एवं भाषाओं से अँग्रेज प्रभावित हुए हैं, इसको अंतिम अँग्रेज वायसराय लार्ड माउण्ट बेटन ने अपने विदाई भाषण में स्वीकार किया है।[2] यह मानी हुई बात है, कि जिस अंश तक अँग्रेजी भाषा ने हमारी भाषाओं और उनके समस्त अंशों—कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, आलोचना, इतिहास आदि—को प्रभावित किया है उतना भारतीय भाषाओं ने अंग्रेजी को नहीं किया। हमारी भाषाओं से कहाँ तक शब्द अंग्रेजी में भी गृहीत हुए हैं, यही इस प्रस्तुत निबन्ध का उद्देश्य है। मैंने इस विषय पर अपनी पुस्तक 'मणिषर भाषा' में भी विवेचन किया है।

---

१. डा० भोलानाथ तिवारी—शब्दों का जीवन—'शब्द चलते हैं' प्रथम सं० पृष्ठ ५४

२. भाषण—लार्ड माउण्टबेटन १४ अगस्त १९४७ नई दिल्ली।

During the centuries that the British and the Indians have known one another the British mode of life, custom, speech and thought have been profoundly influenced by those of India—more profoundly than has often been realised.

भारतीय भाषाओं से अनेक शब्द अँग्रेजी में गृहीत हो चुके हैं, फिर भी आज हमको ज्ञात नहीं। अँग्रेजी में बहु प्रयुक्त शब्द cash; curry; compound; mango; paddy; pickles आदि शब्द भारतीय द्राविड़ भाषाओं से गये हैं।

अँग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में पुर्तगालियों का राज्य था। उन्होंने भारतीयों से व्यापार आदि करने के लिए एवं शासन की सुविधा के लिए (Indo Portugees) इन्डो-पुर्तगीज भाषा का निर्माण कर लिया था। जो कोई योरोपीय व्यापारी भारत आते थे वह इसके माध्यम से अपना काम चलाते थे। इसके कारण पुर्तगीजों ने जिन दक्षिण भारत के शब्दों को अपना लिया था, वे सभी इंडो-पुर्तगीज के माध्यम से अँग्रेजी भाषा में प्रवेश पा गये।

नीचे लिखे गये शब्द पुर्तगीज के माध्यम से अँग्रेजी में प्रवेश पाकर इतने परिवर्तित हो चुके हैं, कि उनके वास्तविक रूप को पहचानना आसान नहीं।

मलयालम से—Betel, areca, coir, Copra,

अन्य भाषाओं से—Brinjal, jaggery, cutch

वास्तव में अँग्रेज लोगों ने भारत से १७वीं शताब्दी में अनेक शब्द लिए हैं जिनका सम्बन्ध वाणिज्य से है।

इतनी तेजी से भारतीय शब्दों का अंग्रेजी भाषा में मिश्रण हुआ कि जो ईस्ट-इंडिया कम्पनी द्वारा प्रपत्र इंगलैण्ड भेजे गये उनको समझना कठिन हो गया था। फलस्वरूप कम्पनी के अधिकारियों ने एक निर्देश जारी किया, जिसमें यह आदेश दिया गया, कि भारतीय शब्दों का व्यवहार अंग्रेजी भाषा में कम से कम किया जाय। यह आदेश उस समय को अंग्रेजी और शब्दों के वर्ण विन्यास की दृष्टि से आज के भाषा वैज्ञानिकों के लिए रुचिकर होगा।[1]

१८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेज भारत में शान्तिप्रिय व्यापारियों के रूप में ही रहते थे, परन्तु बाद में अनेक ऐसी घटनाएँ घटीं, जिसके फलस्वरूप भारतीय शब्दों का अँग्रेजी में प्रवेश बढ़ गया। इन घटनाओं में उल्लेखनीय हैं—अरकाट का घेरा, काल-कोठरी घटना, प्लासी-युद्ध, वारेन हेस्टिंग्ज पर लगाये आरोपों पर किया गया विचारादि। इसी समय भारतवर्ष में राजनैतिक उथल-पुथल हुई और इससे सम्बन्धित पत्र जब इंगलैण्ड पहुँचा तो तत्कालीन प्रधानमन्त्री एडमण्ड बर्क ने यह कह कर उसको पटक दिया कि इसमें भारतीय शब्द इतनी अधिक संख्या में हैं, कि संसद के अधिकांश सदस्यों को वह बोध

1. Wee have forbidden the severall factoryes from wrighting words in this langudge and refrayened it ourselves, though in books of coppies wefeave there are many which by wante of time for perusall we cannot rectifie or expresse (Hobson Jobson, P. II)

गम्य न हो सका। सिलेक्ट कमेटी द्वारा दिये गये विवरण का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है।[१]

१७वीं शताब्दी में केवल व्यापारिक शब्दों ने ही प्रवेश पाया जबकि १८वीं शताब्दी में सेना और राजनीति सम्बन्धी शब्द अधिक लिए गये, पर १९वीं शताब्दी में इन सब शब्दों से भी अधिक—धर्म, दर्शन, साहित्य से सम्बन्धित शब्द गृहीत किये गये। सर विलियम जोन्स ने जब प्रथम बार योरोपीय विद्वानों के समक्ष संस्कृत भाषा और साहित्य का उद्घाटन किया, तब से संस्कृत भाषा का पठन-पाठन योरोपीय भाषाओं में बढ़ने लगा और उसके फलस्वरूप अनेक संस्कृत के शब्द अँग्रेजी में गृहीत हो गये। उनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं—

Atma, Amrita, Asur, Avatar, Abidya, Bhakti, Bhut.

२०वीं शताब्दी में प्रथम विश्वयुद्ध और भारत की स्वाधीनता संग्राम के सिलसिले में अनेक भारतीय शब्द अँग्रेजी में चल गये; उदाहरणार्थ—स्वराज्य (Swaraj) सत्याग्रह (Satyagraha), गांधीवाद (Gandhism), खद्दर (Khaddar), हड़ताल (Haratal), जिन्दाबाद (Jindabad), गुंडा (Gunda)। विभिन्न शताब्दियों में भारतीय भाषाओं व उनके साहित्यों ने अंग्रेजी शैली व कवियों को कहाँ तक प्रभावित किया, यह यहाँ विचारणीय नहीं है, फिर भी इससे सम्बन्धित कुछ प्रमाण दिये जा रहे हैं। भारतीय भाषाओं से प्रभावित Scott, Southey, Byron, Macaulay, Thackeray, Kipling, E. M. Foster. T. S. Eliot Aldons, Huxley आदि लेखक व कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

जब एक भाषा से शब्द दूसरी भाषा में पहुँच कर उस भाषा की लिपि का पहनावा पहनकर बैठ जाते हैं, तो उनके बाह्य रूप से उनका वास्तविक रूप परे हो जाता है यह दर्शनीय है। उस भाषा के पंडित की आँखों को वह बहुत खटकता है।

उदाहरणार्थ	अंग्रेजी	हिन्दी
	attention	टिचन
	tax	टिकस
	report	रिपोट ~ रपट

इसी प्रकार भारतीय शब्द अंग्रेजी पहनावे में कैसे लगते हैं, यह दर्शनीय है—

भारतीय शब्द	अंग्रेजी शब्द
गन्धर्व	Glendoveers
योगी	Yoguee

१. They (Parliament members) are fatigued into such a despair of ever obtaining a competent knowledge of the transactions in India, that are easily persuaded to remand them...to obscurity.

ब्राह्मण	Brammen
शिष्य	Schesche
कोतवाल	Cutwal

अँग्रेजी लेख को विशेष रुचिपूर्ण बनाने के लिए थैकरे (Thackery) महोदय ने अपनी भाषा में भारतीय शब्दों का प्रयोग किस ढंग से किया है, यह देखिए—

India is a land of *nabobs* and *Pagodas, Curries* and *Pilau, Tattis* and *Punkhas, Suttes* and *gagarnant.*

टी० एस० इलियट जिनके लेखों से अनेक भारतीय लेखक प्रभावित हुए हैं, वह स्वयं भारतीय शब्दों से कहाँ तक प्रभावित है, यह भी देखने योग्य है—

Ganga was Sunker, and the limp leaves. Waited for vain, which the black clouds gathered for distant, over *Himavant.* The *jungle* Crouched, humped in silence. Then spoke the stunder.

Datta Dayadhram
Damyata
Shantih Shantih Shantih.

इस छोटे से लेख में उच्चारण, व्याकरण वाक्यविन्यास आदि पर पड़ हुए प्रभावों पर विचार नहीं किया जा सकता है, फिर भी व्याकरण सम्बन्धी कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। अँग्रेजी में विभिन्न प्रत्ययों के साथ जिस प्रकार शब्दों की रचना की जाती है, उसी प्रकार भारतीय शब्दों में अँग्रेजी प्रत्यय लगाकर उनकी रचना की जाने लगी—

dacoit	dacoitage
baboo	baboodom
babu	babuism
Hindu	Hinduism
Brahman	Brahmanhood
Sanskrit	Sanskritist
Pundit	Punditship
loot	looting. lootable
Salaam	Salaaming

इसके अतिरिक्त संज्ञा से विशेषण और क्रिया बना लेने के भी अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। भारतीय शब्दों से निर्मित कुछ अँग्रेजी वाक्यांश नीचे देखिए।

to sling (spin), the bat, sitting *dharna,* put in *dharna*— to vote *Khaki,* to shake the *pagoda* tree.

इसके अतिरिक्त भारतीय भावों का अनुवाद करके अँग्रेजी में बहुत से वाक्यांश प्रचलित हैं:—

भारतीय	अँग्रेजी अनुवाद
द्विज	twice born

भूत-पूजा	devil worship
एक प्रकार का पक्षी	seven brothers

कितने ही भारतीय वस्तुओं के लिए अँग्रेजी में नाम बनाये गये हैं।

पट बीजना (सं० खद्योत)	fire fly
कैथ	wood apple
शरीफ़ा	sweet apple

आज के विज्ञान-युग में हम सब इतने समीप आ गये हैं, कि भारत व इंगलैण्ड के बीच की दूरी उतनी नहीं रही है। अपने शासनकाल में अँग्रेजों ने हमारी भाषाओं और साहित्य को ही प्रभावित नहीं किया है वरन् हमसे भी वह प्रभावित हुए हैं। आज अँग्रेजी भाषा में प्राय: ८० प्रतिशत विदेशी शब्द हैं, जिनमें भारत का भी योग-दान है। इस प्रकार भाषा के क्षेत्र में अन्य भाषाओं के शब्दों को लेकर अपना लेना अँग्रेजी का मूल-भूत सिद्धांत रहा है, जिसके कारण वह आज इतनी सम्पन्न बन सकी है।

प्रो० वी० वी० आर० शर्मा

क्रौंचपद

नन्नय भट्ट तेलुगु के प्रथम आंध्र-कवि माने जाते हैं। दूसरा मत यह भी है कि नन्ने चोडदेव उनसे भी प्राचीन हैं। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर नन्ने चोडदेव को प्राचीन सिद्ध करने के लिए उनके 'क्रौंचपदवृत्त' के प्रयोग से भी सहायता मिलती है:—"क्रौंच-पदाम्तौ भरौन ननान गौमुनि शरवसु शरविरतियुता।" भ, त, भ, र, न, न, न, लग (वृत्तरत्नाकर)

किन्तु तेलुगु में उसके लक्षण अलग हैं:—

१. पंचशराभा संचितपुष्या भमसभ नननय परिमित मैनन ('कविजनाश्रय' और 'काव्यालंकार-चूड़ामणि)

२. पंचमकेशु डिच्चिन भास्वत् वरमुन मनमुन बवरमु गोरन् ('अप्पकवीयमु')

३. चेंचुलनास्वादिचुचुलेदून् ड्लकरगु प्रियलकु नलदुचु मैरो (नन्ने चोडदेव का 'कुमार-संभव' भाग २—३६५)

४. कौरव सेना वीरुलुलावुन् गडिमियु जलमुनु गडक यलर्वन् (तिक्कना का 'भारत' स्त्री० १—१६६)

इस प्रकार लक्षण के विषय में नन्ने चोडदेव के मत में और प्रथम तथा द्वितीय मत में अन्तर है। इस पद्य की प्रत्येक पंक्ति दो-दो भागों में विभाजित हुई है। पूर्वार्ध में सीस तथा कंद के अनुसार यति और प्रास तथा उत्तरार्ध में साधारण यति-नियम पाये जाते हैं। 'कुमार संभव' के सम्पादक ने भूमिका में इस प्रकार लिखा है:—

"(कवि-जनाश्रय) के लेखक तिक्कना और अन्य लोगों ने क्रौंचपद के प्रत्येक पाद में साधारण द्वितीय वर्ण के प्रास का ही उपयोग किया है; लेकिन अप्प कवि इस सूक्ष्मता को पहचान नहीं सके, इसलिए उस नियम को छोड़ दिया। नन्ने चोडदेव का क्रौंचपद मात्रा छन्द के रूप में बदलकर शीर्ष के रूप में ही जाएगा; क्योंकि दूसरा और चौथा गण चतुर्मात्रा गण के रूप में उच्चरित कर अन्तिम गुरु को छोड़ने पर वह शीर्षक

पाद बनेगा। यों नन्दि भरत के ग्रन्थ में ध्रुवजाति शीर्षक है। लेकिन नन्ने चोडदेव के पद्य के द्वितीय पाद में थोड़े से परिवर्तन के साथ सीस पद्य होगा, क्योंकि 'मंचमुलोलिग—कंचुकितंबयि—पोडमगनडरुचु बुलिनमुलनु' इसके पूर्वार्ध में प्रास यति और उत्तरार्ध में साधारण यति पायी जाती है। तमिल के 'तिरुवाइमोलि' ग्रन्थ में नन्ने चोडदेव के क्रौंच-पद—जैसा ही छन्द है। नन्नय के काल तक क्रौंचपद वृत्त के रूप में स्थिरीकृत होने के कारण पूर्वार्ध के प्रथम वर्ण की यति मुख्य मानी गयी है।" ('कुमार-संभव' की पीठिका)

इस वाद के विरुद्ध कुछ लोगों का मत है—"नन्नय भट्ट ने क्रौंचपद वृत्त का प्रयोग नहीं किया है, अतः उनके समय में यह वृत्त ही नहीं था।

परन्तु हम इतनी-सी बात के आधार पर कवियों के पौर्वापर्य का निर्णय नहीं कर सकते। यह नियम कदापि मान्य नहीं है कि कोई कवि अपने समय के सभी छन्दों का प्रयोग करे। वेमुलवाड भीम कवि के 'कवि जनाश्रय' में क्रौंचपद वृत्त का लक्षण दिया गया है। तमिल के 'यप्पिरंगलम्' ग्रंथ में उक्त 'वांचियार सँद वडगुच्छंदवुम्' की बातों में मानो 'कवि-जनाश्रय' के बारे में कहा गया है—ऐसा लगता है। ९९० ई० में कन्नड़ के 'छन्दोम्बुधि' के प्रणेता नागवर्मा ने क्रौंचपद को वृत्त बताकर उसके लक्षणों का विवरण दिया है:—

'सीत करोर्वी' वात शंशाकर युगमित सुररिपु निवहद केडयोल।' इस पद्य में और नन्ने चोडदेव के क्रौंचपद वृत्त में अधिक सादृश्य है। नन्ने चोडदेव के पद्य के अन्तिम दो वर्ण गुरु हैं; किन्तु नागवर्मा के पद्य में अन्तिम गुरु के पूर्व दो लघु वर्ण हैं। इसीलिए नन्नेचोडदेव के पद्य २५वें छन्द से नागवर्मा का पद्य २५वें छन्द से प्रभावित है। वृत्त रत्नाकर के पद्य भी २५वें छन्द से ही निकले। यही नहीं, कंद और सीस के अनुसार नन्ने चोडदेव के पद्य में दो विभाग हैं। संस्कृत के क्रौंचपद तथा नन्ने चोडदेव के क्रौंचपद में बहुत अन्तर दिखायी देता है।

'कविजनाश्रय' के कर्त्ता ने और आदि तेलुगु लक्षण-ग्रन्थों के लेखकों ने क्रौंचपद को 'वृत्त' मानकर आद्यक्षर की यति को अक्षरगणों का पालन किया; किन्तु तात्पर्य यही है कि नन्ने चोडदेव के पद्य में 'चेंचुल नास्वादिंचुचुलेदून्ड्लकल-वुप्रियलकुनलदुचु मयिरों' का भाग सचमुच दो छंदोपाद हैं, एक पाद कदापि नहीं है। लेकिन 'कविजनाश्रय' के मतानुसार वह एक ही पाद है। 'कुमारसंभव' के आलोचक ने नन्ने चोडदेव के पद्य की संस्कृत के जानाश्रयी छंदोमंजरी के लक्षणों से तुलना कर देखने की चेष्टा की है। लेकिन उन्होंने यह नहीं सोचा कि जनाश्रयी छन्दोमंजरी किस काल की है और वह हमारी चर्चा के लिए कितनी उपयोगी है। राजकवि नन्ने चोडदेव नवीं, दसवीं शताब्दी के हैं। उनके बारे में सोचते समय ये अर्वाचीन ग्रन्थ प्राचीनता के निर्णय के लिए कैसे उपयोगी हैं? वृत्त के लिए पदाद्यक्षर की यति, पदमध्यप्रास का अभाव आवश्यक है। इस विषय को जानने वाले अप्प कवि ने अपने क्रौंचपद वृत्त में सामान्य यतिप्रास का पालन किया।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि क्रौंचपद को प्रथम वृत्त मानने वाले कन्नड़ के छन्दोम्बुधि के कर्त्ता नागवर्मा हैं। उन्हें नन्ने चोडदेव का उद्देश्य समझ में नहीं आया। उन्होंने अपने सभी वृत्तों को तेलुगु और कन्नड़ के लिए स्पष्ट रूप से समान कहा है। यदि यह वास्तविकता है तो उन्होंने पदमध्य के प्रास को कैसे निभाया। तेलुगु की यति कन्नड़ में नहीं है। इसीलिए यति के बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा है। सभी 'वृत्त' संस्कृत से ही तेलुगु और कन्नड़ में प्रविष्ट हुए हैं। इसीलिए उनका हर एक पाद गुरु अन्त ही का होना चाहिए। नियत रूप से पदान्त गुरू को अलग करने पर क्रौंचपद पाद का चार श्रव्य-विभाग होंगे।

(१) सीतकरोर्वी (३) युगमित मुररिपु
(२) वात शशांकर (४) निव हृदकेड } योल

लेकिन इस भाग को श्रव्यतर बनाने का संकल्प उनमें उठता तो उन्होंने तीसरे और चौथे पाद में एक प्रास का प्रयोग किया होता तो अच्छा होता। इस युग के लोगों ने प्रास और शब्दालंकार का निषेध किया है फिर भी नागवर्मा ने तो जोर देकर कहा कि प्रास पद्यों के लिए अत्यन्त शोभाकारक हैं।

कन्नड़—नुत शब्दालंकार दो। लतिशयगलु कन्नडक्के। सतत प्रासम
कृतकृत्य मप्पु देल्लर मतदिदंदुतप्पे काव्यमेन् शोभिपुदे
(छन्दोम्बुधि)

अर्थात् कन्नड़ के लिए शब्दालंकार अतिशय रूप हैं। सतत प्रास कृतकृत्य हुआ है। यह मत सार्वजनिक है। इनके अभाव में काव्य सुहाता नहीं।

नागवर्मा के पूर्व से ही क्रौंचपद पद्य कन्नड़ भाषा में नहीं है। नागवर्मा ने ही नन्ने चोड से या अन्य कवि से इसका ग्रहण कर अपने छन्दोम्बुधि में दाखिल किया है। उसे वृत्त समझकर भूल की है। नन्ने चोडदेव से ही उसने इसे देशीय (जाति अथवा उपजाति) के रूप में पहचानते तो वह और भी सुन्दर होता आदि बातें इस तर्क से हम पहचान सकते हैं।

और 'कविजनाश्रय' के काल तक क्रौंचपद तेलुगु में ही व्यवस्थित होने के कारण उसके कर्त्ता को उसके लक्षण को दूसरी भाषा में खोजने की जरूरत नहीं पड़ी।

लगता है कि संस्कृत के क्रौंचपद के लक्षण में तेलुगु के क्रौंचपद से अन्तर होने के कारण तेलुगु के किसी छन्दोग्रंथ के कर्त्ता ने इसका विवरण देने पर श्रद्धा नहीं दिखायी। अर्वाचीन छान्दसों ने क्रौंचपद को वृत्त समझकर आद्यक्षर यति का पालन किया (१, ११, १९)। पाद के मध्य के प्रास की यति के रूप के बारे में शंका नहीं करते। इसका कारण यही है कि कवि नन्ने चोडदेव पद्य-धोरणि और शाव्यता के लिये मुग्ध हुए थे।

इस तरह के कष्टों को जानने के कारण नन्नय्या ने उसकी ओर नहीं ताका है। नन्नय्या के प्रयोगित अक्षर छन्द के बारे में विभिन्न मत-भेद हैं। विशेष कर अघ कवि ने

छंदों ग्रंथकर्ता होने के नाते सूक्ष्म परिशोधन करके सामान्य यति का उपयोग किया है न कि प्रास यति। क्योंकि दूसरे अक्षर से अल्प-प्रास को पद के बीच में प्रयोग करना उन्होंने अनुचित माना है। और एक पाद में दो से अधिक यति हो तो पाद के आदि में जो संयुक्तक्षर हैं उनके एक अक्षर से संबंधित अक्षर को ही सभी यति स्थान में रखना आवश्यक है, ये बातें उन्होंने ही निर्णय की थीं। इस तरह का कण्ठ-लय लय विभाति आदि मालिका वृतों में नहीं होता। इसलिए अप्प-कवि के अभिप्राय के अनुसार पद्य को यति से प्रारंभ करें तो सभी जगहों पर संबंधित यति होनी चाहिए। यदि प्रास से प्रारंभ करें तो सभी जगह तत्संबंधी प्रास ही होना चाहिए। कारण यह है कि कवि जनाश्रय कर्त्ता तथा अन्य विद्वानों के कथन के अनुसार क्रौंच-पद २४वें संस्कृत छंद से निकला हुआ वृत्त है। अतएव उसके एक एक पाद में २४ अक्षर होना अनिवार्य है।

कुछ लोगों का कथन है कि "यह सच है तो नन्नेचोड-कवि इसको दो दल वाला छंद मानते हैं ? परन्तु 'आर्यावृत्त' से पैदा हुए तेलुगु के कंद पद्य के प्रति अर्ध भाग से दो प्रास तथा सम पाद में बिलकुल एक ही यति मुक्त है। कन्नड में भी इस तरह के लक्षणों से युक्त कंद पद्य प्राचीनतम ग्रंथ "कविराज मार्ग" के काल से प्रयोग में है। तेलुगु तथा कन्नड में बहुत साम्य है, यह बात कहने की आवश्यकता नहीं है। इस समय के लोग तेलुगु में नये नये छंदों को (सोना) "बंगारू" "वेंडि" (चांदी) के नाम देकर उन में अपनी रचनायें करते हैं।

यदि नन्नेचोड कवि ने सचमुच कन्नड के नागवर्म के क्रौंचपद लक्षण का अनुकरण करते तो उससे बढ़कर निपुणता से पदांत गुरु तथा पादाद्यक्षर यति का उन्होंने पालन किया होता। नन्नेचोड कवि की रचनाओं के लक्षणों में कन्नड के कवि राजमार्ग से कई लक्षण लिए हैं, जिनका विवरण चक्रबन्ध की विशेषताओं के साथ किया जावेगा। क्या छः प्रचलित छंद उत्पलमाला, चंपकमाला, मत्तेभ, शार्दूल विक्रीडित, स्त्रग्धर, महास्त्रग्धर आदि के विषयों में नागवर्मा और नन्नेचोड में कोई मतभेद है ? यह कहा जा सकता है, कि नागवर्मा ने नन्नेचोड का क्रौंचपद देखा होगा और नन्नेचोड ने नाग वर्मा की छंदोम्बुधि नहीं देखी होगी। मगर एक क्रौचपद के संबंध से कहना अधिक ठीक रहेगा कि क्रौंचपद को प्रयोग करने के कारण नन्नेचोड नन्नय्या से भी प्राचीन कवि थे तथा इतिहास वेत्ता यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए कि नागवर्मा ने अपने को वेंगिनाडु निवासी बताया और वह आन्ध्र से सम्बन्धित हैं। और तेलुगु तथा कन्नाड दोनों में समास प्राप्त वृतों में क्रौंचपद एक है। अतएव यह कहा जा सकता है, कि नागवर्मा ने नन्नेचोड का अथवा अन्य किसी कवि द्वारा रचित क्रौंचपद को अवश्य देखा होगा। यह उसका तेलुगु के प्रति प्रेम ही है कि उसने तेलुगु के क्रौंचपद का अनुकरण किया।

ऐसालगता है, कि नन्नय्या के पूर्व से यक्ष-गान आदि तथा अन्य-देशीय छंद आदि प्रयोग में आते थे जिनमें कंदार्थ, सीसार्थ भी प्राप्त हुए। इनमें से प्रथम पंक्तियाँ साधारण पद्यों की भांति पढ़ी गईं तथा अन्तिम पंक्ति ताल एवं लय के साथ गायी गई तथा क्रौंचपद पद

में विशेष सादृश्य है जैसा कि तमिल भाषा के "अहावल्प" छंद में और तेलुगु के 'तरुवोज' में साम्य है। तमिल के 'तिरवायमोळि' नामक ग्रन्थ के कुछ छंदों तथा तेलुगु के "सीस" तथा "क्रौंचपद" में विशेष संबंध है। नन्नय्या से रचित "सीसों" के पूर्वार्धों में प्रास तथा उत्तरार्ध में यति से युक्त पद्य देखे जाते है। ये सब देशीय रचनायें ही हैं।

अब हमें एक और आक्षेप का समाधान करना होगा। कुछ लोगों का मत है, कि नन्नेचोड कवि, पालकुर्कि सोमनाथ कवि से अर्वाचीन हैं। परन्तु सौभाग्य से सोमनाथ कवि द्वारा रचित क्रौंचपद का प्रयोग भी प्राप्त होता है। जो कवि जनाश्रय के क्रौंचपद से बहुत कुछ मिलता है। यदि पालकुर्कि सोमनाथ इस वृत्त में वह परिवर्तन करना चाहते जो उनसे पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्रचलित था तो वह यह कार्य आसानी से कर सकते थे जैसा कि उन्होंने द्विपद में प्रासयति का प्रयोग करके किया है।

कृष्णादेव राय के आस्थान कवि 'नंदि तिम्मन्न' ने अपने 'पारिजात अपहरण' में एक 'कंद गर्भ क्रौंचपद' वृत्त को भी लिखा है।

(१) अंकुरित श्री संगभु, जांका हरि, हय मणिमद हरनुतवर्णा।
(२) संकट कुद्दैत्याशय, शंका जनन निज चरित-शयदृत शंका।
(३) पंकज नाभा भंजित, पंका परम पुरुष भव-परिभव नाभा।
(४) शंकर भावा किसलय, शंका शपरयुग कलश-शरनिधि शयना।

इस में प्रथम तथा द्वितीय पाद मिलकर एक कन्द पद्य तथा तृतीय और चतुर्थ पाद मिलकर दूसरा कंद पद्य होगा। इसमें प्रति पाद में दसवाँ अक्षर प्रासयति है। मगर नन्नेचोड के क्रौंचपद में सातवाँ अक्षर प्रास यति का स्थान है। उपरोक्त तिम्मकवि के पद्य के समान नन्नेचोड के क्रौंच पद को दो कन्द पद्यों में विभक्त कर सकते हैं। मगर यति स्थान तथा प्रास स्थान भिन्न हो गया। इस लक्षण की सूक्ष्मता को तिम्म कवि जानते थे। इस लिए दसवें अक्षर में यति को स्थान दिया है। अतएव इस चर्चा से नन्नेचोड कवि के समान तिम्मकवि ने भी क्रौंच पद को मात्रा गण पद्य ही माना है, किन्तु अक्षर गण रूप में नहीं माना है। कन्द तथा सीस भी इसी तरह के पद्य हैं। जिन कवियों ने क्रौंच पद को वृत्त माना है वे सब लक्षणों में ही फँसे रहे हैं। तिम्म-कवि के पद्य में प्रथम तीन पादों में (१) वर्णा (२) शंका (३) नामा में दो दो गुरु तथा चतुर्थ पाठ (४) शयना में दो लघु तथा एक गुरु का प्रयोग मिलता है। यदि क्रौंच पद वृत्त हो तो अक्षर गण के भंग को हमें अरूर स्वीकार करना पड़ेगा। तिम्म कवि की दृष्टि में क्रौंच पद यदि वृत्त हो तो वे इस तरह लक्षण भंग नहीं करते। इस विषय में "पारिजातापरण" के व्याख्यान कर्ताओं ने भी इस सूक्ष्मता को बिना ग्रहण किये क्रौंच पद को वृत्त माना है। उसके अनुसार लक्ष-लक्षण का समन्वय भी किया है। मगर चतुर्थ पाद को उन महाशयों ने देखा नहीं। तिम्मकवि ने यदि उसका लक्षण ठीक तरह से समझे बिना पद्य की रचना की होती तो अन्य कवियों से भिन्न दसवें अक्षर को प्रास यति मानने का साहस नहीं करते। अतएव

तिम्मकवि के अभिमत के अनुसार वह जाति पद्य ही है। नन्नेचोड के पद्य में भी प्रथम द्वितीय पादों के अंतिमाक्षर "मैरो" और "तन, ग्री" को क्रमशः "माइरो, लनु, ग्री" के रूप में बदल दिया जाय तो व्याकरण तथा छंद में भी बाधा नहीं पहुँचती।

सारांश यह है, क्रौंचपद (१) मात्र गण युक्त "जाति" है नकि अक्षर युक्त वृत्त। (२) संस्कृत की आर्या से निकला हुआ कन्द पद्य द्विगुणीकृत होकर क्रौंचपद बनता है। (३) कन्नड के नागवर्मा जैसे जितने कवियों ने इसको वृत्त माना है, उन्होंने लक्षण के विषय में भूल की है। (४) नन्नेचोड ने जिस सूक्ष्म लक्षण का पालन किया है, उसको अन्य छंद शास्त्र वेत्ताओं—नागवर्मा, नृपतुंग और जनाश्रय कर्त्ता आदि—ने ठीक तरह से नहीं समझा। (५) नन्नेचोड कवि नन्नय भट्ट से अर्वाचीन है। अतएव उपर्युक्त क्रौंचपद ही एक विवाद का विषय नहीं हो सकता। अपितु नन्नेचोड कवि को ही नन्नय्य भट्ट से प्राचीन कहना युक्तियुक्त होगा।

श्री कैलाशचन्द्र भाटिया

अँग्रेजी के गृहीत शब्दों का लिंग-निर्णय

हिन्दी में लिंग का अपना निजी महत्व है। इसका निर्णय करना एक समस्या है। हिन्दी के राज भाषा घोषित होने के बाद हिन्दीतर क्षेत्रों से कुछ ऐसे भी सुझाव आये कि यदि हिन्दी को अहिन्दी भाषा क्षेत्र में आगे बढ़ना है, तो उसमें से लिंग को निकाल दिया जाय। यह प्रस्ताव कहाँ तक व्यावहारिक है, यह विचारणीय प्रश्न है। फिर भी हिन्दी में प्रयुक्त शब्दों का लिंग-निर्णय करने का प्रयत्न श्री कामताप्रसाद गुरु, किशोरी दास बाजपेयी तथा डा० हरदेव बाहरी ने किया है।

"हिन्दी में लिंग का पूर्ण निर्णय करना कठिन है। इसके लिए व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते, क्योंकि इसके लिए भाषा के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं है, तथापि हिन्दी में लिंग-निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है—

(१) शब्द के अर्थ से।

(२) उसके रूप से।

बहुधा प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार और अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप के अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दों का लिंग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है और इसके लिए व्याकरण से पूर्ण सहायता नहीं मिल सकती।[१] डा० बाहरी भी विदेशी शब्दों का लिंग-निर्णय अर्थ साम्य और रूप साम्य के आधार पर ही करते हैं।[२]

प्रस्तुत लेख में अँग्रेजी भाषा से हिन्दी में गृहीत अँग्रेजी शब्दों के लिंग पर ही हम को विचार करना है। मैंने हिन्दी में अँग्रेजी के लगभग १५०० गृहीत शब्दों में से उन शब्दों को सर्वप्रथम पृथक् कर लिया जिनको हिन्दी भाषा भाषी जनता ने स्त्रीलिंग मान

---

१. हिन्दी व्याकरण—कामताप्रसाद गुरु [लिंग निर्णय : २५७] संशोधित संस्करण २००६ पृ० २४१।

२. डा० हरदेव बाहरी—हिन्दी में लिंग विचार हिन्दी अनुशीलन वर्ष २ अंक ३ सं० २००६ पृ० १७।

लिया है। कुछ शब्द अवश्य विवादास्पद हैं अन्यथा बहुप्रचलित प्रयोग के आधार पर उनका लिंग निश्चित ही है।

रूप साम्य के आधार पर ईकारान्त शब्दों को स्त्रीलिंग मान लिया गया।[३] हिन्दी में कुछ अपवादों को छोड़कर समस्त ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग थे, इसी आधार पर अँग्रेजी के ईकारान्त शब्दों को हमने स्त्रीलिंग में ही माना है :—

उदाहरणार्थ—१. एजेंसी
२. कंपनी
३. कमेटी
४. चिमनी
५. टाई
६. डिग्री
७. डायरी
८. सोसायटी
९. टैक्सी
१०. फैक्ट्री आदि।

इस प्रकार के शब्दों की एक लम्बी सूची है जिस कोटि में लगभग ८० शब्द हैं। इसमें ईकारान्त वे भी शब्द हैं जो वस्तुतः अर्थ की दृष्टि से स्त्रीलिंग हैं, जैसे लेडी आदि। वे सभी शब्द जिनमें ई प्रत्यय लगाकर भाववाचक संज्ञाएँ बनायी गयी हैं, इस कोटि में आ जाते हैं :—

उदाहरणार्थ—अफसरी
इंजीनियरी
डाक्टरी
गर्वनरी
कलक्टरी
मिनिस्टरी

फिर भी ईकारान्त शब्दों में कुछ ऐसे भी शब्द प्राप्त हुए हैं जो निश्चित रूप से अपवाद हैं :—

		आधार
उदाहरणार्थ—	१. अटरनी	एक प्रकार का मुख़तार
	२. रिफ्यूजी	शरणार्थी
	३. सिटी	नगर
	४. रेफरी	पुरुष होने के कारण
	५. अरदली	चपरासी
	६. डैडी	पिता
	७. डिप्टी	अधिकतर पुरुष ही होते हैं।

३. वही पृ० १७ तथा क० प्र० गुरु हिन्दी व्याकरण—२६५ पृ० २५१।

स्त्रीलिंग बनाने के लिए अँग्रेजी के शब्दों में 'इन' प्रत्यय भी लगाते हैं।[1]
उदाहरण :—

मास्टर	मास्टरिन
डाक्टर	डाक्टरिन
इंस्पेक्टर	इंस्पेक्टरिन

पर स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'नी' प्रत्यय का ही अधिक प्रयोग होता है[2]—

डाक्टर	डाक्टरनी
मास्टर	मास्टरनी

कुछ शब्दों में आइन प्रत्यय लगाकर भी स्त्रीलिंग बनाया गया—

डिप्टी	डिप्टिआइन

इसके पश्चात् स्त्रीलिंग के अन्तर्गत वे शब्द आते हैं जो व्यंजनान्त हैं पर उसके पूर्व [ई] हो। शब्द का अन्तिम रूप स्वर व्यंजन हो [vc] और स्वर दीर्घ ई [i] हो, इस प्रकार के शब्दों की भी एक लम्बी सूची दी जा सकती है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द लिए जाते हैं :—

मशीन [म् अ श् ई न्]
V: C
ई कोई भी व्यंजन

२. टीम
३. फीस
४. सीट
५. स्कीम
६. स्पीच
७. स्पीड
८. रील
९. सील
१०. शीट

इस वर्ग के 'क्वीन' आदि शब्द तो स्वतः अर्थ की दृष्टि से स्त्रीलिंग हैं।

इस नियम के एक दो अपवाद भी हैं, जैसे :—

सीन	सम्भवतः दृश्य (पुल्लिग) के प्रभाव से
टीन	धातु[1] होने के कारण

---

१. कामताप्रसाद गुरु हिन्दी व्याकरण—२८३   संशोधित संस्करण २००९ पृ० २५८.
२. वही
१. धातुओं को गुरुजी ने पुल्लिग के अन्तर्गत रखा है देखो व्याकरण नियम २४०

इस वर्ग के एक शब्द के विविध लिंग भी द्रष्टव्य हैं—

पीसः— (१) हमारी पीस हुई। (ताश का खेल)
(२) मैंने एक पीस खरीदा। (कटपीस टुकड़ा)
(३) पीस भंग हो गई। (शान्ति)

दूसरी प्रवृत्ति जो शब्दों को स्त्रीलिंग बनाती है, वह है अंग्रेजी के शब्द का अन्तिम रूप (in) जिसको हिन्दी में (इंग्) में परिवर्तित कर दिया जाता है—

उदाहरणार्थ हम निम्न शब्दों को ले सकते हैं—

१. पिकेटिंग।
२. कन्वैसिंग
३. प्रिंटिंग
४. राशनिंग
५. स्प्रिंग
६. रोलिंग
७. वोटिंग
८. एक्टिंग
९. पेंटिंग
१०. मीटिंग

इस कोटि में भी कुछ पूर्व प्रचलित अर्थ के कारण अपवाद मिल सकते हैं।

जैसे ईअर रिंग अथवा एरिंग—कर्ण फूल के कारण
लिविंग —जीवन स्तर

व्यंजनान्त कुछ शब्द के अर्थ के कारण स्त्रीलिंग हैं और शेष को उसी अर्थ के हिन्दी में पूर्व प्रयुक्त शब्दों का लिंग प्राप्त हुआ है :—

प्रथम कोटि में मिस, मेम, मैडम, एक्ट्रेस, नर्स आदि शब्द रखे जा सकते हैं। दूसरी कोटि में निम्न शब्द हैं जिनके निकटतम अर्थ देने वाले घरेलू शब्दों के आधार पर लिंग निर्धारित हुआ है।[1]

उदाहरण	आधार
बुक	किताब
बोट	नाव
आर्ट	कला
इंगलिश	भाषा
कमान	आज्ञा
कांग्रेस	सभा
कौंसिल	सभा

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा—(लिंग अनु० १४१) हिन्दुस्तानी एकेडेमी १९५४

गर्वनमेंट	सरकार
चेअर	कुर्सी
चेन	जंजीर, साँकल
जाकेट	फितूरी
ट्राम	गाड़ी
ट्रेन	गाड़ी
कार	गाड़ी
ड्रिल	कवायद
फीस	दक्षिणा
फिटन	गाड़ी
इंक	स्याही
बटालियन	फौज
बस	गाड़ी
मेडिसन	दवाई
रिस्टवाच	घड़ी
लाइन	रेखा
लिस्ट	सूची
लीग	सभा
शर्ट	कमीज
सर्विस	नौकरी
साइकिल	गाड़ी
लाइफ	जिन्दगी
प्लेट	तश्तरी
रेल	गाड़ी

कुछ शब्द दोनों लिंगों में प्रचलित हैं जिसमें हम 'पतलून' को ले सकते हैं। 'पतलून टँगा है, और 'पतलून टँगी है' दोनों ही रूप सुनने में आते हैं सम्भवतः पजामे के साथ होने के कारण इसको पुल्लिग बना दिया गया हो। एक और बहु प्रचलित शब्द "स्पिरिट" है जिसके लिंग पर भी विचार विमर्श कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हुए भी इसके लिंग में परिवर्तन कर हिन्दी में यह निम्न अर्थों में गृहीत हुआ है।[१]

१. वृहत् शब्द सागर—नागरी प्रचारिणी सभा काशी ७वां खण्ड, १९३०,
—छूटे हुए शब्द और अर्थ पृष्ठ ३९९४

१. अर्क	स्पिरिट अच्छी है।
२. मदिरा का सार	
३. उत्साह	काम करने के लिए स्पिरिट की आवश्यकता है।
४. स्वभाव	
५. प्रेतात्मा	मैंने स्पिरिट बुलाई है।

इस प्रकार यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है और स्त्रीलिंग में ही इसका प्रयोग अधिक होता है।

यहाँ भाषा वैज्ञानिक आधार पर कुछ नियम निर्धारित करने का प्रयास किया गया है, फिर भी कुछ विदेशी शब्द ऐसे हैं, जिनका लिंग-निर्धारण करना और उनको नियमबद्ध करना कठिन ही प्रतीत होता है। डा० धीरेन्द्र जी ने टेसन (स्टेशन) शब्द लिया है जिसको पश्चिम में पुल्लिंग और धुर पूर्व में स्त्रीलिंग माना जाता है।[२]

---

२. डा० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा—लिंग—हिन्दुस्तानी एकेडेमी १९५४,
—अनुच्छेद १४१

प्रो० मंजुलाल र० मजमुदार

गुजराती साहित्य में बारहमासी गीत

भारतवर्ष का लोकप्रिय नारी संगीत

समस्त भारतवर्ष में और विशेषतः गुजरात और बंगाल में ऋतु संबंधी गीत लोकप्रिय नारी संगीत के काष में अग्रिम स्थान रखते है। विन्ध्य के उत्तरवाले प्रदेश में साधारणतः ऐसा विशेष स्वातंत्र्य नहीं पाया जाता जो गुजरात और बंगाल में सब वर्ग की महिलाओं को प्राप्त है। ईसा की २०वीं शताब्दी के बाद ही प्रणय के विविध आनन्दों को अभिव्यक्त करने वाले एवं भारतीय ऋतुओं को दृष्टि में रखते हुए वियोग जन्य पीड़ा सम्बन्धी गीतों को रचना होती चली गई। ये गीत जनता में बोली जानेवाली भाषाओं में लिखे गये तथा सम्भवतः पाठ की अपेक्षा गाने के लिए ही बनाये गये; इसके अतिरिक्त इन गीतों में नवीनता कुछ नहीं थी।

महाकाव्य में ऋतुएँ

विशेष रूप से ऋतुओं की विशेषताएँ बताना प्रत्येक महाकाव्य में प्राचीनकाल से नियम बन गया था। कालिदास के ऋतुसंहार और ८वीं सदी के कवि द्वारा लिखे गये अमरुशतक जैसे प्रसिद्ध काव्यों ने अवश्य विशेष रूप से उत्तर भारत के परवर्ती कवियों को मार्गदर्शन और काव्य का विषय दिया और उन कवियों ने ऋतु-प्रेम या नायक-नायिका भेद, राग तथा रागिनी इत्यादि विषयों पर तीन शतक तक—लगभग १५वीं सदी से १९वीं सदी के अन्त तक —अपनी लेखनी चलायी।

मध्यकालीन गुजराती में प्रकृति-काव्य का अभाव

शायद ही गुर्जरी गिरा के कवियों ने पर्वतों और बनस्थलों के विषय में गीत गाये हों; पर बारहमासी गीत के साहित्य-प्रकार में 'महीना' 'फागु' और 'षड्ऋतु वर्णन' में उन्होंने विविध ऋतुओं का, उनमें होने वाले परिवर्तन तथा विशिष्ट सौन्दर्य का अत्यंत मानवीय तथा हृदयस्पर्शी आलेखन किया है। प्रकृति-वर्णन की कविता में गुजरात की अत्यंत अल्प देन है; क्योंकि यहाँ के दृश्यों में विशेष आकर्षक तत्व का अभाव जैसा ही है।

बारहमासी गीतों में मानव-भावों का आलेखन

फिर भी वातावरण में अन्तर और वेशभूषा, भोजन तथा मनुष्यों की केलि लीलाओं के विविध प्रकार, ऋतु के फेरफार के साथ, गुजराती कवियों ने बड़ी सुन्दरता से काव्य की इस विशिष्ट शाखा में दिये हैं; इसमें विशेष रीति से नायक-नायिकाओं का वर्णन होता है; और ये भी बिल्कुल गुजराती पुरुषों और स्त्रियों जैसे ही होते हैं।

बारहमासी गीतों में आरंभ के महीने

गुजरात में वर्तुलाकार में नाचती हुई स्त्रियाँ आनन्द और त्योहारों के अवसर पर इन गीतों को गाती हैं। अत्यंत प्रभावोत्पादक ये गायन, लयबद्ध रीति से, विक्रम वर्ष के प्रथम मास कार्तिक से या शालिवाहन शक के प्रथम मास चैत्र से या चातुर्मास या मानसून के प्रथम मास आषाढ़ से जैसा कि कालिदास के मेघदूत में है, वर्ष के वर्णन का आरंभ करते हैं। विनयचंद्र सूरि द्वारा १४वीं सदी के पूर्वार्ह्न में नेमिनाथ बारामासी में श्रावण मास से आरम्भ किया गया है। किसानों का वर्ष वैशाख में अक्षयतृतीया से शुरू होता है, अतः शामलभट्ट के "कणबीना मास" का आरंभ वैशाख से होता है। माधव और कामकंदला का अपने मिलन के बाद का सारे वर्ष का आनन्द और प्रमोद का वर्णन वसंत-ऋतु के फाल्गुन मास से ही शुरू होता है। इस तरह बारहमासी गीतों की रचना के बारे में विपुल विविधता पायी जाती है।

राधा और कृष्ण के महीने

विशेष रूप से बारहमासी गीतों में नारी-सौंदर्य का ऋतुओं के सौंदर्य-धन का एवं वियोगी प्रेमियों की मनोव्यथा का वर्णन होता है। आज भी लोकसाहित्य में अपूर्व स्थान रखने वाले, स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले इन 'महीना' नामक ऋतु-काव्यों के अतिरिक्त भी विशिष्ट साहित्यिक प्रणाली में से उद्भावित अन्य गीत भी हैं, जो भाट या चारणों द्वारा राजदरबारों में गाये जाते थे। उनमें भी प्रेम के जीवन का ही वर्णन है, परन्तु आरम्भ वर्षा के आगमनसूचक आषाढ़ मास से होता है। "आषाढ़ महीने में गर्जना हो रही है, मोर मल्हार राग गा रहा है, जो वर्षा का विशिष्ट राग है, और राधा यादवों के एवं विश्व के राजा माधव को याद कर रही हैं। विद्युत् आकाश में प्रकाशमान होती है और राधा अपने स्वामी के बिना नहीं जी सकती।"

प्रणय-काव्य के उदाहरण

"ओ मेरे प्राणप्रिय ! तुम तो अपनी यात्रा में चले गये और मुझे इस कार्तिक महीने में अपने प्रेम के बन्धन तोड़ कर पीछे छोड़ गये।"

"ओ प्रिय आत्मा ! अगहन मास में हमारा आवास हमें अत्यंत कष्टदायक प्रतीत होता है और मैं आपकी दासी, ये सब दिन कैसे व्यतीत करूँगी।"

राधा कहती है, "पृथ्वी पर हरियाली छाई है, वृक्ष नवपल्लवित हुए हैं, पंछियों ने अपने घोंसले बना लिये हैं, सर्वत्र पानी ही पानी दिखायी देता है, योगी भी

यात्रा करने से रुक गये हू । आइये, ओ मेरे स्वामी आइये । तो फिर तुम क्यों यहाँ नहीं हो ?"

इसी तरह कुछ दुःख पूर्ण भाव व्यक्त करते हुए ये काव्य आगे बढ़ते हैं, गायकों की अन्तरतम अनुभूतियों को जन्म देते है, स्त्रियों के धीरे और नियमित ताल के साथ प्रतिघोष करते हैं और वर्ष के विविध महीनों और ऋतुओं में व्यतीत किये गये प्रणय के प्रसंगों के प्रगाढ़ अनुभवों के वर्णन प्रस्तुत करते हैं ।

ज्ञान-मास

अखो, प्रीतम, धीरो तथा कई गुजराती कवियों ने वर्ष के महीनों पर तत्वज्ञान और भक्ति के विचार गूंथने का प्रयास किया है जिससे आत्मा हमेशा बदलते समय की प्रकृति को झिड़के और शाश्वत परब्रह्म में एकाग्र हो ।

अम्बा की स्तुति की बारहमासी

गुजराती साहित्य में अंबा माता की प्रशंसा के काव्यों की भी कमी नहीं है । फिर भी इस प्रकार के काव्यों में राधा और कृष्ण को ही काव्य की इस धारा में प्रमुख नाटकीय पात्र बना लिया गया है ।

सीता-राम और शंकर भीलनी

सब से अधिक लोकप्रिय युग्म राधा-कृष्ण के अतिरिक्त कई कवियों ने बारहमासी या महीना रचने के लिए हिन्दू धर्म से सीता तथा राम को एवं भीलनी के वेष में पार्वती तथा शिवको भी अपना प्रमुख पात्र बनाया है; और फलतः परोक्ष रीतिसे वियोगी गुजराती नारियों की अनुभूतियों को शब्द-बद्ध किया है ।

नेमि-राजुल और स्थूलिभद्र-कोशा

इस आश्चर्यजनक तथ्य से सामान्यतः लोग अपरिचित हैं कि यदि अपने गीतों के लिए हिन्दुओं ने मुख्य भाव के लिए राधा और कृष्ण के प्रेम को महत्व दिया है तो गुजरात में जैनों ने ऐसे ही बारहमासी काव्यों की रचना की है और उनमें अपने बाइसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ तथा राजीमती और स्थूलभद्र के कोशा वेश्या-प्रेम का वर्णन किया है । जैन धर्म-शास्त्र में नेमिनाथ और कृष्ण को एक ही माना जाता है; सुतरां कृष्ण से नेमिनाथ विशेष अच्छे माने जाते हैं और राजीमती के साथ उनकी विघ्नवाली शादी की तीक्ष्ण बात कई लोकप्रिय गीतों का विषय बन चुकी है । स्थूलिभद्र का कोशा वेश्या के साथ का बारह साल का प्रणय और अन्त में संसार का त्याग—यह दूसरी लोकप्रिय वस्तु है ।

गुजराती बारहमासी के सर्वप्रथम उदाहरण

उपर्युक्त कथनानुसार लोकप्रिय नादों से युक्त प्रणय-काव्य के काव्य-रूप को "बारहमासी" कहते हैं । उसका सर्वप्रथम उदाहरण "नेमिनाथ-चतुष्पादिका" (जी० ओ० सीरीज नं० १३ ई० स० १९१५; संवत् १२६९) में राजीमती या राजुल

का नेमिनाथ के वियोग से प्रेम और शोक प्रकट किया गया है । श्रावण मास से आरम्भ करती हुई वर्ष के प्रत्येक महीने में कुछ फेरफार व्यक्त करती हुई, राजुल अपनी अनुभूतियों का वर्णन करती है ।

भाद्रपद में जल से परिपूर्ण सरोवर देखकर राजुल रोती है; "ओ दयानिधि ! मुझे क्यों अकेली और निराधार छोड़ गये!" उसकी सखी कहती है; "रो मत, वह तो निष्ठुर है और कभी तुम्हारा नहीं होगा; अन्यथा वृक्ष को बड़ा करके वह उसे जला नहीं देता । तुमको पर्वत की चट्टान पर ले जाकर वह तुम्हें नीचे नहीं गिरा देता ।"

राजुल कहती है; "तुम सच कहती हो । इस वर्षा ऋतु में सरोवर परिपूर्ण हो जाते हैं, समुद्र में तरंगें इधर उधर उछलती हैं और पर्वत भी आनन्दित होते हैं; तथापि कठोर हृदय वाले प्रेमी को दया नहीं आती ।"

इसी तरह काव्य में क्रमानुसार वर्ष के अन्य महीनों का वर्णन आता है ।

जैन साधु कवियों द्वारा रचित फागुकाव्य

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, तपस्वी जैन साधु कवियों ने भी प्रणय और बसन्त के आनन्द पर सर्वोत्तम पंक्तियाँ लिखी हैं । अवश्य ये पंक्तियाँ नेमिनाथ और राजीमती के पुनीत नामों के संबंध में ही हैं या भोगासक्त स्थूलिभद्र एवं कोशा वेश्या संबंधी है, जिन्होंने अन्त में कठोर तप करके मोक्ष पाया । बसन्त और उसकी पूर्ण शोभा का वर्णन करता हुआ लोकप्रिय साहित्य का विपुल समूह "फागु" नाम से अब तक प्रचलित है, जो विशेष रूप से बसंत के आनन्द प्रमोद का वर्णन करता है । सोम सुन्दर सूरि (१४ वीं सदी) का 'रंगसागर फाग' बहुत सुन्दर काव्य है । वह काव्य बसन्त में—विशेषतः फाल्गुन मास में या होरी (होली) के दिनों में नेमिनाथ के आनन्द-प्रमोद का वर्णन करता है; अतः इसका नाम फाग, फग्गु या फागु पड़ा है ।

कृष्ण और राधा के संबंध में फागु

बसंत के उल्लासों का वर्णन करने वाला फागु जो नर्टर्षि (ई० स० १४२९) कृत हैं. साहित्य का सर्वोत्तम उदाहरण है । इसकी वस्तु में गोपाल कृष्ण की गोपियों के साथ की लीला है ।

इसका आरम्भ इस तरह होता है: फागु मास का प्रारम्भ हो गया है, बसन्त आ गया है, अच्छे मनुष्य आनन्द में मस्त हैं, मलय का पवन बह रहा है, कामदेव अपने आयुधों को सजा रहा है ।"

"गोपियाँ नृत्य आरम्भ करती हैं, डमरू बजाये जाते हैं, अपने कमनीय कान्ति वाले शरीर को झुकाती हुई वे बिल्कुल तालबद्ध नृत्य करती हैं । कृष्ण बंसी बजाता है ।"

"वे बसन्त के शृँगाररस पूर्ण नये गीत गाती हैं, और अपने पैरों से तालबद्ध नृत्य करती हैं । कृष्ण बंसी बजाता है ।"

"अपन हाथ में गोपियाँ कमल की नालें पकड़े रहती हैं, वे उन्हें अपने मस्तकों पर हिलाती हैं, प्रत्येक स्वर पर वे तालबद्ध हैं और कृष्ण बंसी बजाता है।"

"जिस तरह चन्द्र ताराओं के समूह में शोभित होता है, उसी तरह मुकुन्द गोपियों में शोभित होता है। मनुष्यगण और इन्द्र प्रार्थना करते हुए उन्हें नमस्कार करते हैं और कृष्ण बंसी बजाता है।"

गुरु की प्रशंसा में बारहमासी

अज्ञानी को भक्ति एवं ज्ञान का पथ प्रदर्शित करने वाले गुरु का स्थान एक ओर दैवी शक्तियों तथा दूसरी ओर संसारी महानुभावों के मध्य में गौरवपूर्ण है। अतः कई कवियों ने बारहमासी गीतों के प्रकार में गुरु की महिमा का विशेष गुणगान किया है। अपने आचार्यों की प्रशंसा में जैन साधु-कवियों ने विशेष प्रभावपूर्ण काव्य रचे हैं, जिनमें उनको वर्षा के चार मास—चातुर्मास—एक निश्चित जगह व्यतीत करने की सानुरोध विनती की गयी है। यह वस्तु गुजराती साहित्य में अपने आप ही 'महीना' काव्य का एक विभाग बन जाती है।

किसान के वर्ष का आदि से अन्त—कणबी के बारहमासे

विशाल हृदय और भक्ति से पूर्ण किसानों के स्नेहसिक्त जीवन का यथातथ्य चित्रण शामल भट्ट ने (ई० स० १६७९—१७५९) अपनी 'भाभाराम की वार्ता' में किया है, जो बत्तीस पुतली की वार्ता का एक भाग है। उसमें वृद्ध भाभाराम वैशाख मास की अक्षय-तृतीया से) शुक्ल पक्ष के तृतीय दिन से जब किसान नई ऋतु का आरंभ करते हैं) आरम्भ करके सारे वर्ष के किसान के उद्यमी व परिश्रमी जीवन की दिनचर्या का वर्णन विक्रमराजा से करता है। वर्णन का सारांश प्रदर्शित करता है कि गुजराती किसान प्रारब्धवादी नहीं हैं और इसके प्रमाण में कई लोकोक्तियाँ भी हैं। लोकोक्ति में कहा गया है कि "बैलों की जोड़ी और सेवक अपने हों, घर की नारी दोपहर का खाना खेत में लाती हो और इसके साथ घर का स्वामी हो, फिर अच्छी फसल क्यों न हो?"[1]

'कणबी के बारहमासे' की बात में भी हम शामल भट्ट का विशिष्ट मौलिक सर्जन देख सकते हैं और यह समाज-शास्त्री के दृष्टिकोण से भी अत्यंत मूल्यवान् है।

कृषिप्रधान गुजरात में वर्षा का महत्व

वर्षा ऋतु भारतीय हृदयों का आनंद है। प्रचंड ग्रीष्म के बाद की शीतलता, उष्ण महीनों की ग्लानि के बाद की ताजगी और शक्ति, निष्प्रभ सूखी और धूलिमय वैविध्य-हीनता के बाद वह जीवंत सच्ची महत्ता लाता है और आनन्दपूर्ण हृदयों से तथा खुशी के गीतों से जनगण इसका सत्कार करते हैं। वरुण उनका राजा है। लोकप्रिय गीतों में मेघ को

---

१. "घरना गोधा, घरना जोढा, घरनी नारी लावे भात
तेनी साथे घरनो नाथ, ना पाके ए ते शी वात ?"

पृथ्वी का[1] राजा भी कहते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसका स्वागत किया जाता है; क्योंकि उसके बिना भारतवर्ष में जीवन का अस्तित्व ही असंभव है।

वर्षा का गीत

अतः वर्षा के आनन्द, वर्षा के गीत एवं वर्षा के उत्सव गुजरातियों के सामाजिक जीवन का अंतरंग भाग बन जाते हैं। गुजरात के लोगों के लिए वर्षा का आध्यात्मिक महत्व है और इसको आकाश और पृथ्वी के मिलन को कल्पना द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। घोड़ी और गाय—जिसके पुत्र युद्ध और कृषि में अत्यन्त आवश्यक हैं—शक्ति देवता के सच्चे स्वरूप गिने जाते हैं।[2]

आमोद (जिला भरुच) के कायस्थ कवि गणपति द्वारा संवत् १५७४ में २५०० दोहों में रचित प्रेमकथा माधवानल-कामकंदला-प्रबन्ध[3] उच्च जाति के ब्राह्मण माधवानल का 'मृच्छकटिक' की वसंतसेना की याद दिलाने वाली जो पूर्व जन्म में अप्सरा थी युवा परन्तु वेश्या की पुत्री कामकंदला के साथ आदर्श प्रणय का वर्णन करता है।

काव्यों में तथा नाटकों में अपने प्रेमी के वियोग से उद्भूत नायिका के प्रेम की व्यथा का वर्णन पाना बहुत सामान्य है, पर गणपति की प्रेम कथा नायक माधव की स्नेहसिक्त कामकंदला के वियोग में उसकी अपनी व्यथा का भी अपूर्व वर्णन करती है। संयोग में आये हुए प्रेमियों के आनन्द तथा प्रमोदों का भी आनंददायक वर्णन करने में कवि सचेष्ट रहा है। अपने वर्णन का आरंभ वह वसंत के मास फाल्गुन से करता है।

मृतों के लिए बारहमासी काव्य

यदि प्रेम—वियोग का प्रेम—बारहमासी काव्यों का प्रधान अंग बनता है, तो किसी प्रेमी जन की मृत्यु से उद्भूत दुःख भी सच्ची और उचित अभिव्यक्ति सहित अनुभूति में लिखी गयी पंक्तियों में मृत व्यक्ति को स्मरण करने की वस्तु प्रदान करता है। इन काव्यों को 'मरसीया' (अरबी 'मर्सियह्' से) कहते हैं। वे गुजरात के इतिहास के अतीत के दिनों का भव्य चित्र अंकित करने में अत्यंत उपयोगी हैं, कई लोग ऐसा ही सोचते हैं।

प्रेम के काव्य

वर्ष के विविध मासों में वियोगी प्रेमियों की अनुभूतियों का विशद वर्णन मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अन्य प्रकार के बारहमासी काव्यों में पाया जाता है। अपने

---

१ "आव्यो धरतीनों धणी मेहुलो रे"

२ "धरतीमां बल सरज्यां बे जणां, एक धरतीमां ने बीजो आभः वधावो रे आवियो०
आमे मेहुला वरसाविया, धरतीए झीलया छे भारः वधावो रे आवियो०
धरतीमां बल सरज्यां बे जणां, एक घोडी ने बीजी गायः वधावो रे आवियो०
गायनो जायो रे हळे जुत्यो, घोडीनो देश परदेशः वधावो रे आवियो०"

३. गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीझ बड़ौदा में प्रकाशित, निजी संपादन (१९४१)।

उदर निर्वाह के लिए विदेश में गये हुए पुरुषों की स्त्रियों के लिए वर्षा के महीने काटना अत्यंत कसौटीपूर्ण है ऐसा वर्णन किया गया है, क्योंकि उनके पुनरागमन में मेघ कठिनाई उपस्थित करता है, और इसके पूर्व सब समाचार पाने के साधन तो मानों असम्भव हो ही चुके हैं।

प्रेम के वियोग सम्बन्धी लोकसाहित्य

इस विषय का लोकसाहित्य बहुत हृदयस्पर्शी है। गाँव के बाहर ठहरे हुए काफले के बनझारियों के पास से एक स्त्री कुछ मोल लेना चाहती है ऐसा एक गीत का विषय है। पर इससे क्या लाभ ? क्योंकि इसका मूल्य निश्चित करने वाला और देनेवाला उसका पति तो विदेश में है।[1]

सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन

ये सारे गीत ऐतिहासिक प्रमाणों के अंश समान हैं, क्योंकि उस समय के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन वे कराते हैं और हमारे पूर्वजों के व्यवसायों पर—व्यापार, तैयार की गई चीज़ों और समुद्र पार की विदेशी यात्राओं पर—प्रकाश डालते हैं। व्यापार गुजरातियों के प्रमुख व्यवसायों में से एक है। गुजरात प्रान्त की भौगोलिक सीमा का हम विचार करते हैं तब यह बिलकुल स्वाभाविक लगता है। क्योंकि गुजरात में कच्छ, सौराष्ट्र तथा गुजरात सम्मिलित है और इतिहास के आरम्भकाल से ही इसका विशाल समुद्र के पास का प्रदेश तथा बन्दरगाह प्रसिद्ध है। आयात और निर्यात के लिए स्वाभाविक रीति से अच्छे व्यापारी रास्ते थे जो बन्दरगाहों को प्रदेश के अंतरतम भाग और देशको जोड़ते थे। गुजराती साहित्य में लिखे गये षड्ऋतु-वर्णन या बारहमासी काव्य के रूप में लिखे गये वियोग के वर्णन विशेष रूप से लोगों के इस पेशे से प्रेरणा पाते हैं।

प्रकृति के सम्बन्ध में पाश्चात्य और भारतीय मत

विविध ऋतु के शब्दचित्र और वर्णन केवल भारतीय कला तथा साहित्य की विशिष्टता नहीं है वरन् मध्यकालीन यूरोप की कला और साहित्य में भी वे दिखायी देते हैं। फिर भी, यूरोपीय और भारतीय दृष्टिकोणों में अन्तर है। यूरोपीय कला में ऋतुओं की सूचना वहाँ की जलवायु तथा व्यवसायिक विलक्षणताओं से होती है, पर भारतीय कला में उसका आलेखन पुरुषों और स्त्रियों के प्रणयरूप में हुआ है। दूसरे शब्दों में तो, पाश्चात्य कलाकार द्वारा ऋतुओं का निरूपण सावधानी से तथा वास्तविकता से होता है, पर भारतीय आलेखक केवल कल्पनाशील चित्र अंकित करने में मग्न है, ऋतु के समयानुकुल परिवर्तन वह काव्यात्मक रूप से अंकित करता है।

प्रकृति काव्य वस्तुगत एवं भावगत

एक ही वस्तु से साहित्यिक कला में भी यही अन्तर पाया जाता है। थोम्सन के सीजन्स 'Seasons' तथा किसी भी शिष्ट हिन्दी, बंगाली या गुजराती कवि की कृति में

१—"छेल छबीलो होय तो मूलवे, डोलरियो दरियापार: मोरली वागे छे"

अन्तर स्वाभाविक और मूलभूत होता है। कला के अन्तर जो मूलभूत विरोध है वह दृष्टिकोण और आदर्शों का है; और उसको बार-बार याद किये बिना, बारहमासी रचनाओं के कलात्मक मूल्यों का उचित मूल्यांकन कभी नहीं हो सकता। एक वस्तुगत है, दूसरा भावगत।

बारहमासी साहित्य का महत्व

सम्भवत: गुजराती के प्रत्येक महान् कवि ने—नरसिंह म्हेता, नाकर, प्रेमानन्द, अखो, वल्लभभट्ट, रत्नो, रत्नेश्वर, दयाराम, प्रीतमदास ने—और अर्वाचीनों में से नर्मदा शंकर और दलपतराम ने लोकप्रिय गीतों की इस शाखा पर अपनी शक्ति लगाई है। अत: बारहमासी साहित्य की अगत्य त्रिविध है। प्रथम तो वह गुजरात के लोगों के सामाजिक जीवन का चित्र प्रदर्शित करता है। दूसरे, मधुरतम भाषा में प्रेम के वियोग के हृदयवेधी चित्र अंकित करता है, जिससे आज के नारी समाज को भी आश्वासन मिलता है। तीसरे, भाषा एवं साहित्य के विद्यार्थी को वह विपुल सामग्री प्रदान करता है। इनमें से कई ग्रंथ गुजराती साहित्य के उत्तर अपभ्रंश काल में बनाये गये हैं।

बारहमासी साहित्य का आलोचनात्मक संस्करण वांछनीय

अत: ऐसे काव्यों का आलोचनात्मक संस्करण वांच्छनीय है और इसकी आवश्यकता के बारे में विशेष कहना उचित नहीं।

शान्ति आँकड़ियाकर

दो गुजराती बारहमासे

[१]

'चुपइ फागू'

(कवि: अज्ञात)

[हम जो बारहमासा पहले दे रहे हैं वह एक फागू काव्य है। किन्तु फागू काव्य होने के साथ साथ इसमें ज्येष्ठ से माघ मास तक का भी वर्णन है। बाकी के अंश छोड़कर हम केवल मासों के वर्णन को ही यहाँ उद्धृत करेंगे। यह काव्य डा० सांडेसरा संपादित 'प्राचीन फागु संग्रह' से ले रहा हूँ। यह काव्य ईसा की १५वीं शताब्दी में किसी अज्ञात कवि के द्वारा लिखा गया है।]

× × ×

चैत्रि सषी कारेण घणूं वायुं,
चेडि मासि पत्र मेल्हणु न जाइ,
कोकोला बिणि कोरण आंधि,
हवइ आवी वरसाला सांधि।५०।
आषाढ़ मासि अंबर झिरमरइ,
बापईठउ प्रिय प्रिय करइ,
सुषि सोगहे रमीइ सारि,
जु पणि तुसइ देव मुरारि।५१।
श्रावण पिहरण चादर चोर,
परणालिइ षहइ अरधल नीर;
सइरि सांदूरो कांचली कसइ,
नरषइ नारि ते मरकलइ हसइ।५२।
भरतारिइ सूं भाद्रपद मासि,
हींडोलाटइ करइ विलास;

नसि अंधारी बिजली षवइ,
गमे गमे दादर डांलवइ ।५३।
सुदी सुरंग ते आसो मासि,
अंबर डंबरीउ आकासि;
थयी गुरि नइ पर मात्रइ
सही सहो प्रिय गलइ लागीइ ।५४।
सीआला धरि कार्ता मांसि,
कांमिनी मनि हवं पुत्री आस;
कडां सरीसी उरडइ घाट,
हसतां लीइ हींडोलाट ।५५।
मागसरे मन करि कुंमाह,
लाडगहेली लहूआ नाह;
टूपइ सु नागर अतिहि सुजाण,
सषी एक नूं घण तिणइ प्राणि ।५६।
प्रिय तगा जण पोसि मासि,
सेजइ पइही वालंभ पासि;
मेहिली लाज अंग आपीइ,
प्रीय तणा रस द्राम पामीइ ।५७।
महा मासि स्त्री नांन्हड़ी,
प्रिय नान्हड [न रहइ] एकइ घड़ो;
विषय वेध रूस करइ सु प्राण,
तेहनइ तूहा सारंग पाणि ।५८।
फागण मासि फलो वण वेलि,
बाजी रामति हुइइ परी मेल्हइ,
मध माधव रिति कांमनि कंत,
रतिपति रमीइ राउ वसंत ।५९।
रत्न अमूलिक सरव रिषडी,
जाणे किरि विश्वामित्र घड़ी,
मदन मेषला भीजी रहइ,
धाणुं ऊपम केही कहइ ।६०।

[२]

'बारमास'

[कवि: द्वारकादास]
(समय ईसा की सत्तरहवीं शताब्दी)

कार्त्तिक

विप्र गुरुने प्रणाम करी रे, गाऊँ मास सीता व्रेहेव्याल;
चातुर्विशीना चरण धरी रे, जानकीनी जगावुं झाल ।१।
विप्रलंभ शृंगार साचो रे, पण वणिक केरी हुं जात;
रसनो अभ्यास काचो रे, तेणे शास्त्रनी हृदे न भात ।२।
वृध्ध वणिकनी जाते रे, नव तरुण कांई शीखाय;
पंचाश वर्षनी वाते रे, गुरु मल्ये उर हरखाय ।३।
जानकी जी दुःखियां रे, संभारे त्रण वर्षनी वात;
अन्य लोक सुखिया रे, जानकी जाये नहि दिन-रात ।४।[१]
लंकामां शाभा रे, लोक नवा वर्षे करे ;
जानकी मन ओभारे, देव जोई दुःख धरे ।५।
देव दीवाली आवी रे, देव सज थई आव्या;
दानव ने न भावी रे, दासपणे देव का'व्या ।६।
दीपोत्सवीनो आनन्द रे, देव सीताने सरखो;
जानकी छे मन मंद रे, रघुवर धन ! क्यां वरखो ।७।
बलुं व्रेह तपे रे, टाढ वाय नव अंगे;
बाला वियोग संतापे रे, रमुं क्यारे नव रंगे ।८।
छउं अबला बाली रे, रघुवर शुध्दि लिया;
विस दीन रात काली रे, द्वारको दास कांपी जियो ।९।

१ [गुरु प्रेमानंद को नमस्कार करके सीताजी की विरह कहानी का आरम्भ करता हूँ। इस काव्य में विप्रलंभ शृंगार की आवश्यकता है। किन्तु मैं तो ब्राह्मण के बजाय बनिया हूँ। मुझे शास्त्रों के रसों का बहुत ज्ञान नहीं है। शास्त्रों का ज्ञान पाने की मुझे इच्छा तो बहुत है पर उम्र ने भी जवाब दे दिया है ! क्या करूँ ? फिर भी ८५ वर्ष की आयु में यथाशक्ति काव्य सृजन करता हूँ। क्योंकि इतनी बड़ी उम्र में भी मैंने समर्थ गुरु की शरण ले ली है। सीताजी दुःखी हैं। तीन वर्ष पूर्व की स्मृति याद करती हैं। बाकी के सब सुखी हैं, केवल सीताजी का दिन ही दुःख के कारण कटता नहीं है।]

दोहरो :

सीता वेली दुःखनी, आम्र रघुकुल भूप;
व्रेहे वायु वायो घणो, विरवूटयो आम्र अनूप ।१०।[२]

मार्गशीर्ष :

कार्त्तिक गयो दुःखमां रे, वाला विजोगे दाझी;
मार्गशीर जाय सुखमां रे, एवू करो राम राजी ।१।
दिवस अति नानो रे, रात मोती नव जाये;
रडु स्वर छानो रे, दुःख दिलमां थाये ।२।
असुर मोकलतो रे, पानबीडां खावा;
मारो व्रे' नथी वलतो रे, लावे उष्ण जल नावा ।३।
सुगंधिका मरदन रे, करवा दासी लावे;
उंचु जोई गरदन रे, वाला दुःखवा आवे ।४।
जाणे मारूती उपर रे, बेशी राम आवे;
लक्ष्मण ने रघुवीर रे, तनडानु दुःख तजावे ।५।[३]
त्रिजटा समजावे रे, लंकामां राड़ मची;
विजोग न भावे रे, व्रेमां जईशु पची ।६।
टाढ जैथी भाजे रे, एवां वस्त्र मोकल्याँ प्रभु;
मारे मन न राजे रे, हृदे रघुनाथ विभु ।७।

---

२. [नूतन वर्ष के आरंभ में लंका के लोग नगर सजाते हैं । रावण ने देवों को भी दास बना लिया था । वे देव सीता का विरह दुःख देखकर ग्लानि का अनुभव करते हैं । कार्तिकी पूर्णिमा का आगमन हुआ । अब तो देवों ने भी नये कपड़े पहनकर आनंद मनाना आरंभ कर दिया। फिर भी जानकी जी तो दुःखी है। सोचती है—'हे प्रभो ! आप दया की वर्षा कहाँ बरसाते हैं ?' जाड़े की ऋतु का आरंभ हुआ । ठंडी हवा चलने लगी । सीताजी विरह में दिन व्यतीत करती हैं । आज सीता दुःख की वेलि है । रामचन्द्र जी आम्रवृक्ष है । दोनों का पूरा-पूरा विरह है ।]

३. [इस तरह विरहिनी सीताजी ने कार्त्तिक मास तो बिता दिया । मार्गशीर्ष के आरंभ में ही सीताजी राम से प्रार्थना करती हैं—'हे प्रभो ? मार्गशीर्ष में तो सुख प्रदान करो क्योंकि छोटे दिन और लंबी रातों को मैं रो रोकर व्यतीत करती हूँ । हररोज दानव-राज मेरे लिए ताँबूल भेजता है । सुबह स्नान के लिए उष्णोदक भेजता है सुगंधि-मर्दन के लिए दासी आती रहती है । फिर भी मैं आपकी राह देखती हूँ । आकाश में दृष्टि रखकर मैं रात दिन देखा करती हूँ कि आप मारूती पर सवार होकर कब आयेंगे ?]

चोलुं तेल दासी रे, एवुं कही अंग अडके;
प्रभु अभि दासी रे, केशपाश जोई भड़के ।८।
अलगी थाय वाला रे, तेल नव अंग सांचे;
दास द्वारकाना लाला रे, जानकी दुःखे आंख मीचे ।९।

दोहरा :

रघुवर घन वन आम्रनुं, कोयल सीता नार;
धूमस पड्यो विजोगनो, मंजरी जले कुठार ।१०।[४]

पौष :

मार्गशीर्ष वीत्यो रे, माणिगर नव मलिया;
पोषे वधी प्रीत्यो रे, दुःख दिन नव खलिया ।१।
वाला जुओ वेलुं रे, नहि तो हवे प्राण तजुं;
केशो काढ़युं घेलुं रे, हवे प्रभु मोत भजुं ।२।
उत्तराणे अभी डगली रे, आपुं हरि दान केरी;
वलखुं विजोगी बगली, हरि तमो परि धरी ।३।
मारी हठ मने आणी रे, रीबावो राम राजा;
दुःखद्यो शुं प्रभु जाणी रे, वाँकनी वाली माझा ।४।
आडपण मूक्युं रे, हवि मने आवी भलो;
चपलता चित्त चूक्युं रे, हार्द अंतरनुं कलो ।५।[५]
साथे जो लीधी रे, तो वीमासी नव घटे;
कृपा जोये कीधी रे, जगजीवन मलो झटे ।६।

---

४. [हे प्रभो ? सरदी से बचने के लिए दानवराज अच्छे अच्छे कपड़े भेजता है। पर मुझे तो 'राम' चाहिए। आप तुरन्त आ जाइये त्रिजटा दासी कहती रहती है—'बहना लाओ, मैं तुम्हारे शरीर पर तैल मर्दन कर दूँ।' परन्तु जैसे ही वह मेरे बालों को देखती है तो भयभीत होकर दूर जा बैठती है। राम आमों का घना वन है। सीताजी कोकिला है। पर आज दोनों के बीच पूरा पूरा विरह है। सीताजी विरह से प्रज्वलित होती जा रही है।]

५. [मार्गशीर्ष बीत गया। पूस आया, किन्तु दुःख के दिन बीते नहीं। हे प्रभु, अब तो आ जाइए, वरना मैं अपनी मृत्यु कर डालूँगी और मेरी मृत्यु के बाद मत कहना कि सीताजी ने पागल का काम किया। हे प्रभो। उत्तरायन के उत्सव निमित्त मैं एक कदम दान में देती हूँ। अब तो आ जाओ। हृदय की चपलता शनैः शनैः कम होती जा रही हूँ। मैं प्रतिदिन मरण की ओर जा रही हूँ।]

नवोढा नारी रे, परणी आवी तम पासे;
साधी सेवा न सारी रे, लाजतणा भासे ।७।
गई कंईक लज्जा रे, हरि सुख गयु नासी;
बले मांस मज्जा रे, दासी करे हासी ।८।
राक्षसी बोले रे, नार घे'ली सीता;
द्वारकादास कालज ढोलेरे, मन थाये भे भीता ।६।

दोहरो :

कीच बिच करिणी कली (गई), द्विरद रघुपति दूर;
व्रे'तापे कर्दम तप्यो, जाय नागिणी नूर ।१०।[६]

माघ :

पोष ग्यो पण ना मल्या रे, प्राणजीवन प्रभु राम;
जीव्याना ओरता ना वल्या रे, मर्यु नहीं कंई काम ।१।
टाढ़ उडी तन मननी रे, लाग्यू लोकने सुख;
आशा पूरी जननी रे, तो दयाल मारे शुं दुःख ।२।
मुग्धपणे आवी साथ शुरे, थया मुग्ध मारे माटे नाथ;
जाणी राक्षस मार्या हाथ शुरे, इवि किम दुःख वेडुं हुं नाथ ।३।
लक्ष्मणजी ने खीजी हरि रे, कह्यां अघटतां वेण;
विचार तेनो जुओ फरी रे, हुंने हुतां सुख देण ?४।
लक्ष्मणे मन कदी फेरव्युं रे, हठीलो जानकी नार;
वदुं न जूठुं भेरव्युं रे, पण विचार जो हनोसार ।५।[७]

---

६. [हे प्रभो ? आपने मुझे अपने साथ ले लिया है। जिसे साथ में लिया उसे आप क्यों भूल जाते हैं ? मैं आपके साथ रहकर आपकी कुछ सेवा भी नहीं कर पाई हूँ कि मेरा-तुम्हारा वियोग हो गया ? उस विरह से मेरे माँस-मज्जादि जल रहे हैं। हे प्रभो ? शीघ्र आ मिलिये। कर्दम में सीता रूपी हथिनी फंस गई है और उस हथिनी को कर्दम से निकालने वाले रघुपति रूपी द्विरद बहुत दूर हैं। कर्दम विरह रूपी धूप से उष्ण हो गया है और उस धूप में फँसी हुई करिणी सीता का तेज प्राय. नष्ट होता जा रहा है ?]

७. [पौष गया। फिर भी आप न पधारे। शरदी की ऋतु चली गई। लोगों के मन और तनकी सरदी उड़ गई। लोग सुखी बने। हे प्रभो। केवल मैं ही दुखी हूँ। मुझे भी वल प्रदान कीजिए। हे नाथ ! मुझ पर आप मुग्ध हो गये थे। कई राक्षसों का भी आपने वध कर डाला था। तो आज मुझे इतनी तड़पाते क्यों हैं ? हे पति ! लक्ष्मणजी आपको नहीं आने देते होंगे। पर उनकी बात पर विचार करने के साथ साथ मेरी बात और प्रार्थना पर भी आप कुछ ध्यान देने की कृपा करें। मैं विरहिणी हूँ। दुःखी हूँ।]

सारुं करवा गई सती रे, थयुं विपरीत तेमां स्वाम;
सीधी उलटी थई मती रे, कथल्युं सुधारतां काम ।६।
वा'ला तमने ना साँभरे रे, कदलीवन केलि राम;
वेगे नयेना शुं भरे रे, फागे केतुं सुन्दर श्याम ।७।
शूर्पनखा अभिनव लही रे, रह लीधी लक्ष्मण काज;
मानी मारुं लखियुं सही रे, मुने दुभावी नहि रघुराज ।८।
ए सहु वाला वीसर्या रे, काढुं कर्मतणो हुं वाँक;
दास द्वारकानो बार नीसर्या रे, थई दुखियारी सीता राँक ।९।

दोहरो :

जोई परिमल पद्मनो, षट्पद पेडो मांय;
भमरी भण भण करी रही, (प्रे) वारण आव्यो त्यांय ।१०।[८]

फाल्गुन :

माघ वित्यो नव मल्यां रे, हवे जीव्यानुं शुं काज;
फाल्गुन फूल्ये मन बल्यां रे, अमो निरख्या नहि मा'राज ।१।
दासी आवी रावण तणी रे, लावी वधादो वसंत;
जाणी काम वासना जागी छणी रे, पण ब्रेह दुणो वसंत ।२।
कोयल काली न जाणती रे, काम जगाडवा करे नाद;
मन मारुं दुःख न आणती रे, टौकी टौकी बेसो तारो साद । ३।
अल्या हुं दुखियारी जोगणी रे, केशु फूल्यो शुं फाल;
दुःख न लत्धुं विजोगणी रे, तारा लोक करे बेहाल ।४।
विजोगमां जेवी हुं बलुं रे, तेवो बाले तने दउं शाप;
विजोगमां जेवी हुं जलुं रे, तेवो उकाली रे तने ताप ।५।[९]

---

८. [हे प्रभो ! मैं तो अच्छा करने गई थी, विपरीत हो गया । इसमें मेरे कर्म का ही दोष है । मैं और किसी को दोषी नहीं ठहराती हूँ जैसे कमल का परिमल देखकर भ्रमर उसके अन्दर प्रवेश करता है और इतने में हाथी आकर उस कमल को तोड़ डालता है । कमल बंद होने से भ्रमर भीतर रह जाता है और भ्रमर-पत्नी बेचारी वियोग के गीत में भिनभिनाती रहती है । ठीक वैसी हो, हे प्रभो ! मेरी स्थिति है ।' स्वर्णमृग = पद्म का परिमल; राम = भ्रमर ; विरह = हाथी; सीता = भ्रमर पत्नी ।]

९. [माघ गया । अब तो फाल्गुन खिल उठा । काम वासना जागृत हो गई होगी, यह समझकर रावण की दासी वसंत आ पहुँची । किन्तु वसंत आते ही मेरा विरह दुगुना हो गया । वन में काली कोकिला बोलती है । मैं उसे शाप देती हूँ—हे कोकिला ! तुझे मेरे दुःख की परवाह नहीं है ? जाओ, तेरा नाद ही कम हो जायेगा । सभी फूल खिल उठे । मेरा विरह और बढ़ गया । मैं सभी फूलों को शाप देती हूँ—'हे सुन्दर पुष्पो ! जाओ तुम भी मेरी तरह विरहाग्नि में जलकर भस्म हो जाओगे ।']

अंबे अबला नव गणी रे, द्रष्टि घूमस नांखी त्यांय;
अंबे मुख था तो भणी रे, खरो मंजरी खाली ज्यांय ।६।
तरु पर फूल्यां अति घणांरे, तेनुं कासल काढो लोक;
दुःख देता राखो नव मणारे, होलिका करे हुं सरखो शोक ।७।
काम वृद्धि भमरो करे रे, शापुं तेने हुं आज;
काष्ठादिक तुंथी शरे रे, लागे पदमे डंखने लाज ।८।
एम शाप देई सर्वने रे, संभारती राजा राम;
दासद्वारको छोड़े गर्वने रे, रीझे विप्रगुरुथी सुंदर श्याम ।९।

दोहरो :

सुख शय्या करा फूलनी, शीतल वाय समीर;
विजोगनो पावक झग्यो, रघुवर थाय न नीर ।१०।[10]

चैत्र :

फाल्गुन वीत्यो वालमा रे, नव मनमां लाव्या;
चैत्रे वीसरो आल मारे, मने अति मन भाव्या ।१।
चैत्रिए चांदो चढ्योरे, आव्यो नभनी मध्य;
राघवजी चैडको पड्यो रे, मुआ असुर अवध्य ।२।
जन्मदिवस गयो रायजी रे, वै कंसारे भूख न भागी;
अपशुकन धगा थाय जीरे, जुओ रघुवर जागी ।३।
हिम रश्मि पीडे घणुं रे, शापुं तेने हुँ आज;
थाओ रूप एनुं क्षय तणुं रे, मने मल्या नहि महाराज ।४।
शुं कराए शाणां थई रे, दया दयाले मूकी;
तेथी तन मननी जई रे, आज शुध्धि चूकी ।५।"

---

१०. [आम्र फल तैयार होने लगे। मेरे विरह की उन्होने भी परवाह न की। आखिर दुःखी दिल से मैंने उन फलों के मंजरी की ओर देखा। मेरी दृष्टि पड़ने से मंजरी टूट पड़े होलिका भी दुःखी होकर अपनी ज्वालाएँ प्रज्वलित करने लगी। भ्रमर काम वृद्धि करता है। मैं उसे शाप देती हूँ—तेरे पांवों में कमल को भेदने की शक्ति न रहे। फूल की शय्या बनाके समीर उस पर खेलता-कूदता है। सीता के दिल में विरहाग्नि की वृद्धि होती जा रही है। रघुवर नीर नहीं बनते हैं।]

११. [हे नाथ ! फाल्गुन बीता। चैत्र आया। अब तो मुझे याद कीजिए। चैत्र का चन्द्र नभ के मध्य में आ पहुँचा। चन्द्र के तेज में देखा कि अभी तो दानव बहुत बाकी हैं तो दिल में दुःख की वृद्धि हुई। हे प्रभो ! चन्द्र मुझे दुःखी करता है। मैं उसे शाप देती हूँ कि जाओ, तेरे रूप का क्षय हो जायेगा। हे नाथ ! चतुर होकर इस तरह से आप मुझे पीड़ित क्यों करते हैं ? आपको इसमें क्या मजा आता है ? आपके विरह से तन-मन की सुधि भी जाने लगी है। हे प्रभो ! शीघ्र आ मिलो।]

बंधनथी छोड़ा विये रे, 'रण छोड' कहे, राम ! लोक;
असुर बेड़ी तेज विये रे, तो तो हले तन शोक ।६।
आपडुं कयुं में शुं कंथजीरे, प्रेम करी नांख्यो फाके;
निहालुं बेठी पंथजी रे, नीची द्रष्टे करुं आलोक ।७।
आपहुं नो तु जाणती रे, नहि तो आपत क्यारनो भोग;
सुख हरि न थी माणतो रे, त्रण वर्ष थी धर्यो जोग ।८।
आपघात करी मरुं रे, जो लाग्यो व्रेहेनो रोग;
द्वारकोदास के हुं डरुं रे, वाला क्यारे हाले विजोग ।९।

दोहरो :

मेंक माधुरी मोगरे, फूल्यां फूल सराग;
सीता लेवा संचरी, करडयो विरहनाग ! १०।[१२]

वैशाख :

चैत्र गयो चतुरा कहे रे, तोय चित्त न थयुं प्रसन्न;
वैशाखे वनमां रहे रे, प्राण जीवन मारुं मन ।१।
शुं कहाए रघुनाथने रे, संभारे नहि कांई;
वनमां फरता झाली हाथने रे, ते सुख गयुं खोवई ।२।
वीजणो हाथे हुं झालती रे, नारपती नाथजी वाय;
ते सुख हुं नथी भालती रे, कँपे छे कूडी काय ।३।
रावणे रीझशुं मोकल्या रे, शीततणा उपचार;
गुण तेना नव जाय कल्यारे, ना सामुं जोयुं भरतार ।४।

---

१२ [हे पति ! आपको सारा जगत 'रणछोड़' कहता है । मुझे भी बंधन से मुक्त कीजिए । मेरा शोक तभी दूर होगा । हे नाथ ! मेरी कौन-सी भूल हो गई कि आप मेरी सुधि नहीं लेते हैं । आपकी राह देखती हुई मैं पथ को देखा करती हूँ । कुछ क्षण रास्ते पर तो कुछ क्षण नीचे देखकर मैं सोचती रहती हूँ कि तीन-तीन साल से मैंने आपका दर्शन तक नहीं किया है । अगर पहिले से ही मालूम होता तो मैं आत्मघात कर डालती । मोगरे के वृक्ष पर सुन्दर सुगंध वाले पुष्प खिले हैं । सीता उन्हें तोड़ने गई । मोगरे के नीचे से उसे साप ने काँट लिया । मोगरा=राम; फूल=संयोगसुख ।]

अमि एवां पाप ते शां कर्यां रे, जे पिसाही दीघां आम;
पापना भारे शां भर्यां रे, जे संभारो नहि स्वाम ।५।"
ताप तपे सूरज तणो रे, बीजो विरहानल विशेष;
तेथी परिताप थाये घणो रे, रही वाला जी देह शेष ।६।
शुं करीए करे कंथजी रे, ऊनो वायु न वायो जाण;
विचारी आवो पंथजी रे, जाले कूडो काम ने भाण ।७।
राक्षसीओ अतिशे हसे रे, मने कहेती राय संभार;
समजी रहवे ज्यां पसे रे, त्यां अन्य रामनो शो सार ! ८।
अति थयुं हृदि नाथजी रे, तलपी तर्जाशुं प्राण:
द्वारकादासनो साथ जी रे, प्राण गयो वाला थाशे जाण ।६।

दोहरो :

गोरी गुलाबी हुं हरि, खटपद रघुकुल भाण;
वे चंपक जोई वल्या, परिमल ग्रही न जाण ।१०।[१४]

ज्येष्ठ :

वैशाख वही गयो रे, तोय दीन्हा न देव दयाल;
ज्येष्ठ आवी रह्यो रे, हरि आवी नहि भाल ।१।
वाला घन गरजे रे, तोय दीसो न देव दयाल;
विधात्री शुं सरजे रे, दुःखडां करी भाल ।२।
नमेरा वयम कहुं रे, थई चोभीली चतुर सुजाण;
दुःखी दमने रहुं रे, करुं गुणकेरां व खाण ।३।

१३. [चैत्र गया और वैशाख आरंभ हुआ। किन्तु मेरे मन की विरहाग्नि जरा भी क्षीण नहीं हुई। हे प्रभो ! आपको क्या हो गया है कि आप मेरी खबर तक नहीं लेते हैं ? आपके बिना मेरी काया क्षीण होती जा रही है। रावण ने ग्रीष्म ऋतु में मुझे शीतलता मिले इस विचार से कई चीजें भेजीं किन्तु मैंने उन चीजों की ओर देखा तक नहीं। हे नाथ ! अब तो मुझ पर कृपा कीजिए।]

१४. [एक ओर सूरज की ऊष्मा है, दूसरी ओर विरहानल की। दोनों की गर्मी के बीच मेरी देह केवल आपकी राह देखती हुई शेष है। हे नाथ ! जल्दी आइये। दोनों तापों से आकर बचा लीजिए। मेरी दशा पर राक्षसिनियाँ हँसती हैं। हे पति ! शीघ्र आ जाइए, नहीं तो मेरे प्राण निकल जायेंगे। हे हरि ! मैं गुलाबरूपी गौरी (नारी) हूँ, और आप (रघुकुल सूर्य) भ्रमर हैं। किन्तु बीच में गुलाब पुष्प का परिमल ग्रहण किय बिना विरहरूपी चंपा को देखकर आप लौट गये।]

देह मारी सूकी रे, वाय पायरो अपार;
उराडी न भूकी रे, ज्यांही राघव वसिया सार ।४।
भीजे चीर माहरां रे, ते तो आपो आप सुकाय;
कीरतन करुं तीहरां रे, तोये व्रेहे दुःखडं नव जाय ।५।[१५]
पशु पंखी थयां रे, हरि मतबालां अपार;
दुःख मारां नव गयां रे, नव उतर्या व्रे सागर पार ।६।
हवि कंईक जोंवु रे, भुज दुःखणी सामे;
निशदिन रोवुं रे, निर्दय यया शुं आमे ।७।
अति थई वाला रे, हवे क्षमा मन लावो;
विलपे छे बाला रे, संजोगे अति भावा ।८।
वधुं शुं कहीए रे, थवानुं ते तो थारो;
द्वारका संगे रहिए रे, हवि हरि प्राण जाशे ।९।

दोहरो :

सुवरण लंकामां घणुं, लेवा आप्या नाथ;
खडियोखारज व्रे थयो, आप्युं नहि मुज हाथ ।१०।[१६]

आषाढ़ :

ज्येष्ठ गयो मारा वाला रे, रडी चूक्यां लोचन वार;
आषाढ़े तनमां ज्वाला रे, लागे कहुं भरतार ।१।
बारंवार शूं कहीए रे, मेघ वरसे मूसलधार;

१५　[वैशाख गया । किन्तु आप ही न आये । ज्येष्ठ आ पहुंचा फिर भी आपका पता नहीं है । अब तो बादल आ पहुँचे । आकाश बादलों से छा गया । बिजली दौड़ने लगी । हे विधाता ! तुमने मेरे भाल में क्या लिख दिया ? और हे नाथ ! आपको मैं निर्मम कैसे कह सकती हूँ ? दुःखी हूँ फिर भी आपके गुणों का अहर्निश ध्यान रखती हूँ। मेरी देह क्षीण है । वर्षा की वायु मेरी देह को लड़खड़ा देती है । वर्षा शुरू हुई । मेरे कपड़े इससे भीग गये । किन्तु विरहानल की ताप के कारण भीगे कपड़े भी सूख गये । हे नाथ ! अब तो मुझे शांति प्रदान करो ।]

१६　[पशु पक्षी भी सुखी हो गये । किन्तु एक मेरे दुःखों का पार नहीं आया । मैं विरह सागर को पार न कर सकी । हे नाथ ! अब मेरी ओर अवश्य देखो । निशदिन रो रोकर मेरी आँखें भी लाल और बड़ी हो गई हैं । बहुत दुःखी हुई, अब तो सुखी करो । हे नाथ ! लंका में सुवर्ण बहुत है, यह समझकर सुवर्ण लेने के लिए आप आये किन्तु विरहरूपी क्षार ने उस सुवर्ण को गला दिया । सुवर्ण आपके हाथ नहीं लगा ।]

हरि ! तपेलो पेणो लहीए रे, तिम बले पडतु वार ।२।
मयूर कोयल बोले रे, राम घालु आंजलि कान;
काम कूजे रहदे छोले रे, हरि भूलावे मारुं भान ।३।
काम ने प्रभु विनवु रे, नव बीजानु ले वाडे नाम;
रखे मानो ए नवू रे, आवी अहीं जोई जाओ राम ।४।
तमगां कान ने फोडे रे, काम कूडो एथी दबाय;
भय क्रोधमां चित्त जोड़े रे, एक विरह ना ओलवाय ।५।[१७]
अति थई बहु नामी रे, हठनो पामी हुं पाँर;
कंचुकी भली स्वामी रे, न जाण्यो राक्षस सार असार ।६।
घणु दुःख नव देवारे, तमो कठण मनना राम;
करी नथी करुं हरि सेवा रे, करो काला पालानु आ काम ।७।
संताप साचो पामी रे, बहु नामी राघव राय;
प्राण परो करुं स्वामी रे, मुओ जीव शेणे नव जाय ! ८।
मारुती मोकल्यो जेवो रे, तेवा पधारो प्रभु आप;
द्वारकादास नो मेवो रे, कापे सीतातणो संताप ।९।

दोहरो :

विपिनराजा केहरी, करत हरिणी संजोग;
विरह घन गरज्यो घणो, नरहरि हवो विजोग ।१०।[१८]

---

१७ [ज्येष्ठ गया । बहुत पानी बरसा । आँखों से भी आंसुओं की धाराएँ बह कर सूख गईं । आषाढ़ में तनकी ज्वाला बढ़ गई । वर्षा भी जोर जोर से बरसने लगी। परन्तु हे प्रभो ! जैसे गर्म पत्थर पर पानी की बूंद पड़ते ही शीघ्र ही सूख जाती है, ठीक वैसे ही विरहानल से उष्म मेरे शरीर पर वर्षा की कोई क्रिया सफल नहीं होती है ! मयूर, कोकिला बोलते हैं। मैं उनके स्वरों को कान में अंगुलि डालकर ! नहीं सुनती हूँ। मदन से प्रार्थना करती हूँ कि तुम मेरे पास अन्य पुरुष का नाम मत बुलवाओ । आप जल्दी आ जाइये। अब तो मैं विरह जरा भी सहन नहीं कर सकती हूं !]

१८. [हे प्रभो ! अब तो हद होगई । आजतक मैंने हरि-सेवा नहीं की है। चलो, मैं हरि सेवा करती हूँ। अब तो मुझे शीघ्र अपने पास ले लीजिए। जिस तरह आपने हनुमानजी को मेरे पास भेजा था वैसे ही आप आजाइये । विपिनराज सिंह ने मुझ-हरिणी के साथ संयोग किया है। पर इतने में विरहरूपी घन की गर्जना हुई। फलतः नरहरि का मुझसे वियोग हो गया । (मेघ की गर्जना होती है तब सिंह क्रोध से दुःखी होता है—यह मान्यता प्रचलित है ।]

श्रावण :

आषाढ़ वीत्यो रामजी रे, मुकियो मेघे क्रोध;
श्रावण आव्यो श्यामजी रे, तोय लीधी नहि शोध ।१।
पर्वनो दिन आवतो रे, त्यारे आसुरी लावे भेट;
सामु' न जोये लजावतो रे, सर्व साथ मारे मन पेठ ।२।
मारो वालो काले मले रे, पोरवु' पर्वनां दिन;
असुरं आवे छे छले रे, रूप लेई भिन्न भिन्न ।३।
राघव थाय छे तम जशा रे, तेवां वनकुल जटा शीश;
संशे मारा रहदे वश्या रे, जोई सामु' के पाड़े चोस ।४।
प्रभु तमारा प्रतापथी रे, सलीनु' सत्य निरधार;
डरे तमारा मापथी रे, भुज इक तणो शो भार ।५।[१९]
अति गहनगति दिठ्ठला रे, करो दूरथी मारी संभाल;
भजन करना हरि मल्या रे, पास तेडो जनक की बाल ।६।
हठ हदि हरि नहि करु' रे, दुखणी हदि भूलु' हु' क्यम ।७।
गहन वनमां एकली रे, मारु' नाथ अहीं छे कोण;
एक त्रिजटा आली मली रे, थई विश्वासी तेह आोण ।८।
घणु' थयु' हवे शु' कहु' रे, वीतक वीत्यां अपार;
दासद्वारका के दुःखी रहु' रे, सुणी जानकी केरां विचार ।९।

दोहरो :

शिलिमुख सज करीने वर्या, फरशीधर हरताप;
त्रे' रूपियो उंदर थयो, ज्यां कापे संताप ।१०।[२०]

---

१९. [आषाढ़ चला गया। पर्वों का मास श्रावण आ पहुँचा। किन्तु आप नहीं पधारे। पर्व आता है। आसुरियाँ भेंट लाकर मेरे सामने रखती हैं, किन्तु मैं उनके सामने देखती तक नहीं हूँ। असुर रावण भी मुझे प्रसन्न करने के लिए भिन्न-भिन्न रूप धारण करके आता है। कभी-कभी तो आप जैसा रूप धारण कर लेता है! किन्तु आपकी कृपा से मैं सती हूँ। मेरे सत्य के तेज के कारण जैसे ही मैं उसके झूठे स्वरूप की ओर देखती हूँ कि वह गर्जना करके चीत्कार करता है। भयभीत होकर चला जाता है। मैं इस प्रक्रिया को अपने तेज से बनी हुई नहीं मानती हूँ। वह तो आपकी ही कृपा है।]

२०. [हे नाथ! आपकी गति महान है। दूर रहते हुए भी आप मुझे संभाल रहे हैं। हे पति! अब मैंने आपका बहुत भजन कर लिया है। अब तो कृपा करो। मुझे अपने पास बुला लो। हे नाथ! अब मैं 'कोई चीज ला दो'—यह आग्रह ही नहीं रखूँगी। वन में अकेली हूँ। यहाँ कोई मेरा नहीं है। यह त्रिजटा भी अभी अभी मेरी बनी है। परशुराम के प्रताप को हरण करने वाले हे राम! आपने शिलिमुख को (शर) तोड़ कर मेरे साथ विबाह किया है। परंतु धनुषबाण की दोनों कोटियों का इकट्ठा करने वाली प्रत्यंचा को भी विरह रूपी चूहा काट डालता है। इससे मुझे संताप होता है। विरह आपके और मेरे संयोग के साधन का नाश कर देता है।]

भाद्रपद:

श्रावण शरवडे गयो रे, तोय श्रवणा न सुण्या नाथ;
भादरवो भर थई रह्यो रे, कावु संदेशो को साथ ।१।
मलवुं नव जो नाथजी रे, मोक लो मारुति एकवार;
जीव आपुं तेनी साथजी रे, मटे मनडाकेरा विकार ।२।
जीव जोरो रघुराजने रे, पछे बीजो नहि लोभ;
ईच्छा नथी सुख साजने रे, दिजोगनो एक क्षोभ ।३।
श्राद्ध पक्ष तो आवियां रे, हरि सार्युं शुं मारुं श्राद्ध;
एम होय तो मन भावियां रे, मुने जणाय नहि कांई बाध ।४।
पण तेम कयुं तो कावजो रे, पामुं आनंद अपार;
रोष राख्ये नव फावजो रे, कांईक करजो विचार ।५।[२१]
वचन एकने कारणे रे, हलवलता मूक्यां तात;
एक करशो नहि बारणे रे, संभारजो देव साक्षात की बात ।६ ।
रढियालो स्वभाव नारनो रे, पुरुष मन विशाल;
ओषड करजो विचारनुं रे, बीजी वारकी लेजो संभाल ।७।
दर्शन विना जीव जो जशे रे, अवगतियो धाशे देह;
त्यारे चिंता हरि तमने दशे रे, एम जाणुं हुं निःसंदेह ।८।
घणुं थयुं हवे रामजी रे ! करो कृपा देव दयाल;
द्वारकाना प्रभु स्वामीजी रे, एक वारनी लेजो भाल ।९।

दोहरो:

उरज अति परसन्न थयां, कंचुकी भात विभात;
कंतक विरह उद्भवथयो, कयुं कष्ट विख्यात ।१०।[२२]

---

२१. [श्रावण भी गया । किन्तु आप न आये । भाद्रपद आ पहुँचा । अब मैं आपको एक संदेश भेजती हूँ । यदि आप आना न चाहते हों तो मारुति को एक बार तो अवश्य भेजिए । मैं उसके साथ अपना जी आपके पास भेजूंगी । मेरा सब विकार शांत हो जायेगा । आप एक समय मेरे जी को देखेंगे तो मेरे हृदय को शान्ति मिलेगी । मुझे और कोई दुखः नहीं है, केवल आपके वियोग का क्षोभ है । श्राद्धपक्ष आ गया है । क्या आपने मेरा श्राद्ध कर दिया है ? हाँ, तो मैं बहुत राजी होऊँगी । हे प्रभो ! मुझ पर क्रोध न करके आ जाइये ।]

२२. [हे नाथ ! आपने अपने एक वचन के कारण माता पिता को दुःखी छोड़कर वनवास लिया । पर मेरे लिए ऐसा मत कीजिए । देव-साक्षात् की बात याद कीजिए । स्त्री का स्वभाव ही संकुचित होता है; पुरुष का मन विशाल होता है । कृपा करके विचार कीजिए, और मेरे पास आ जाइये । अगर आपके दर्शन के बिना मेरी मृत्यु हो जायेगी तो मन अपगति को प्राप्त होगा और फलतः आपको मेरी और चिंता करनी पड़ेगी ! हे नाथ ! अब तो मेरी बहुत परीक्षा हो गई, शीघ्र आ मिलिये । भाँति-भाँति की कंचुकी देखकर स्तन अति मुदित हुए किन्तु कंचुकी में छिपे हुए विरह रूपी काँटे ने स्तन को बहुत दुःख पहुँचाया !]

आश्विनः

भादरवो गयो भेदमां रे, नव मलिया नाथ;
आश्विने रही कदेमां रे, राम राक्षसी साथ ।१।
शुं कराए वाला हवे रे, न गमे दिन रात;
हवे मलशो ते कवे रे, वेरण पड़ती न जात ।२।
एम कही केश छोड़ती रे, जानकी वालती फांस;
त्रिजटा त्यां दोडती रे, आवुं काराए न हांस ।३।
सीता के नव बालशो रे, प्राण प्रभु कने जाय;
त्रिकम मन नहि तोलशो रे, सखि ! काम आवे शे काय ।४।
धिरज बहु में तो धरी रे, हवे मानुं न हुंय;
त्रिजटा त्यां ओचरी रे, माजी बोलो ए शुंय ।५।[२३]
कुंभकर्ण ने मारियो रे, इंद्रजीत मार्यो काल;
रावण के छे हारियो रे, अमे सुणी छे भाल ।६।
यज्ञ भंग कपिए कर्यो रे, गयो वढ़वा भूपाल;
रामजीए हाथे हर्यो रे, एवी सांभली भाल ।७।
हवि उतापल शे करो रे, एक बे दिन काज;
दुःखना दिन थोडा भरो रे, मल शे रघुराज ।८।
एम कहीने वारियां रे, मात मन न प्रसन्न;
द्वारकानां काम सरियां रे, तोय रह्या दुःखनां दिन ।९।

दोहराः

पान लवंग पलंगमां नवल रंग उमंग;
व्रे वींछी डंखी गयो, थयो रंगमां भंग ।१०।[२४]

---

२३. ['भाद्रपद भी बीत गया। आश्विन आया। राक्षसी के साथ मैं कैद में पड़ी हूँ। हे प्रभो ! अब चैन नहीं पड़ता है। हे देह ! तू भी क्यों नहीं समाप्त हो जाती है ?' यों कह कर सीताजी ने अपने बाल मुक्त किये। गले में जोर से फाँसा दिया। इतने में त्रिजटा दौड़ती हुई आई। बोली—'हे देवी ! यह क्या कर रही हो तुम ?' सीता ने जवाब दिया—त्रिजटा ! कुछ मत बोलो। मैं मर जाऊँगी। मेरा प्राण प्रभु के पास जायेगा। मैंने बहुत दिनों तक धैर्य धारण किया। अब तो मैं मर जाऊंगी।' त्रिजटा बोली—'हे देवी ! आप यह क्या कहती हैं ?]

२४. ['कुंभकर्ण को मार डाला। इन्द्रजीत को भी जीत लिया। कहा जाता है कि कल रावण भी पराजित हो गया। कपि ने यज्ञ भंग किया। रावण उसे मारने गया। रामचंद्र जी ने हरा दिया। हे देवी ! अब दो-तीन दिन के लिए जल्दी क्यों करती हैं ? अब तो एक दो दिन में ही रामचंद्रजी आकर आपको सुखी करेंगे।' त्रिजटा ने यह सब कहा। किन्तु सीताजी के हृदय में प्रसन्नता का कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हुआ। झूले में बैठे हुए पान खाया था। नवल रंग की उमंग छाई था। किन्तु इतने में आकर विरह रूपी बिच्छू ने मुझे काट लिया। रंग में भंग पड़ गया।]

अधिक मासः

आश्विन मास गयो सखी रे, न मल्या रघुराय;
अधिक मास अंतर लखी रे, पाडुं आज काय ।१।
पुरुषोत्तम ने कारणे रे, व्रेहे जाग्यो अपार;
केशपाश धरो बारणे रे, करे लटकवा अविधार ।२।
डांखलिये बाल बांधिया रे, लटके जेवे नार;
सानमां श्याम ने सांधिया रे, कर्यो मिलन विचार ।३।
लटकवा मन नारनुं रे, एवे आव्या देव मोरा;
आशुं करे छे क्यारनुं रे, घेली सीता नार ।४।
केश छोडी स्वयं राम रे, आलिंगन आपे;
मेघ विद्युत करें नाम जी रे, शोभा कुण मापे ।५।[२५]
नारो रावण मारियो रे, तारे काजे आज;
दानव कुल संहारियो रे, इम बोल्या रघुराज ।६।
जोई प्रभु-जानकी भेटिया रे, भयो जय जयकार;
दंपतिना दुःख मेटिया रे, पाम्यां सुख सागर पार ।७।
मेघ रघुकुल रामजी रे, विद्युत ज्योति मात;
रूप राजे एवुं श्यामजी रे, चंपक वर्णा जानक मात ।८।
विप्र गुरु प्रताप भी रे, वाया रामजीना गुण;
वृद्ध पणे छूट्या ताप भी रे, गुहु पीयूष प्राण ।९।
सोलसें एं शीमां जन्म छे रे, पंचास वर्षे गुरु मेलाप;
द्वारकोदास आजन्म छे रे, विप्र गुरु केरे परताप ।१०।

---

२५. [आश्विन गया। रघुराय नहीं आये। अधिक मास है। चलो, आज देह को समाप्त कर दूं। पुरुषोत्तम के कारण दिल में विरह है। यों सोचकर केश का फांसा गले में डाल दिया। मन ही मन राम से चित्त जोड़ा, और मिलन की कल्पना की। इतने में स्वयं रामचंद्रजी ही सीता के पास आ पहुंचे केश छुड़ाकर सीता से आलिंगन किया। मेघ के समान राम और विद्युत के समान सीता के आलिंगन की शोभा अवर्णनीय है!]

दोहरो:

उजड बेट उदधि विशे, कमल नयन संजोग;
गयो विरह भयु द्वारका श्याम कृपा संभोग ।११[२६]

२६. [राम सीताजी से कहने लगे—'हे देवी ! तुम्हारे मिलन के लिए रावण का नाश किया । दानव कुल का नाश किया ।' राम-सीताजी के मिलन से चारों ओर जय जयकार की गगनभेदी ध्वनियाँ उठीं । दंपति का दुःख मिटा । सुख-सागर में तरंगें उठने लगी । रामजी मेघ हैं । सीताजी विद्युत की ज्योति हैं । रामचंद्रजी का वर्ण श्याम है । सीताजी का रंग चंपा के समान है । विप्र गुरु के प्रताप से द्वारकादास ने रामचंद्रजी के गुणों का वर्णन किया । भगवद्नाम से वृद्धत्व के ताप से मुक्ति पाई । गुरु तो पीयूष प्राण है । मेरे उन्हें हजारों वंदन ! १६८० में मेरा जन्म है । ८५ वर्ष की उम्र में मुझे प्रेमानंद से गुरु मिले । गुरु की कृपा से मैं अजन्म (मोक्ष धाम में जाने योग्य) हो गया । उदधि के बीच में एक उजाड़ बेट है । वहाँ कमल नयन संयोग हुआ । विरह चला गया । अब तो बेट भी रामजी की कृपा से द्वारिका हो गया !]

द्वारकादास ने पंद्रह तिथियों का और सप्तवारों का भी काव्य लिखा है । हम उन्हें भी बारहमासा काव्य के अंतर्गत ही मानते हैं ।

श्री ऐस० भागीरथी

तमिल साहित्य में षड्ऋतु वर्णन

तमिल एक बहुत प्राचीन भाषा है और उसका साहित्य अपनी प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध है। द्राविड भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण लिखने वाले डा० काल्डवेल तथा अन्य महान् विद्वानों ने इस तथ्य को स्थापित किया है कि तमिल भाषा में ही सर्व प्रथम द्राविड़ मुहावरों का वर्णन हुआ है और ये विद्वान् अनेक तथ्यों द्वारा यह भी सिद्ध करते हैं कि तमिल को द्राविड भाषाओं की जननी माना जा सकता है। डा० काल्डवेल ने यह स्पष्ट किया है कि तमिल संस्कृत से स्वतन्त्र भाषा है। माधुर्य, स्वतन्त्रता, निर्मलता, साहित्य की विशालता, और पर्वतों के सदृश प्राचीनता आदि गुण युक्त भाषा की विशेषताओं के कारण तमिल भाषी 'ग्रीक' अथवा 'पूर्व के स्काट' जाने जाते हैं। 'तमिल' यह नाम ही माधुर्य अर्थ को संकेतित करता है और तामिल जनता अपनी मातृ भाषा को 'कन्नी' (कुमारी) कह कर प्रशंसा करती है। भाषा की इस संज्ञा से उनका अभिप्राय यह है कि यह भाषा पुरातन होकर भी अब भी कमनीय कन्या है जो अपने अनुपम सौन्दर्य एवं शाश्वत माधुर्य के द्वारा सहस्रों विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट करती है।

तमिलभाषियों के रीति-रिवाज और सामाजिक जीवन में अस्वाभाविकता या असम्भव बातें नहीं पाई जाती हैं। उनके व्याकरण तथा वाङ्मय से एक सुसंस्कृत जाति का जीवन भासित होता है जो कभी नष्ट नहीं हो सकता है। उनके पंच प्रकार के भू-विभाग, तथा पांच प्रकार के उत्कृष्ट प्रेम की दशाएँ षड्ऋतु जिनका वर्णन प्राचीन तमिल व्याकरण "तोल्गाप्पियम्" में है उनसे तमिल जनता की समुन्नतिशील बौद्धिक उत्पादन का प्रमाण मिलता है।

तमिल ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिस में अर्थ का भी व्याकरण विद्यमान है। अर्थ को आन्तरिक और बाह्य दो रूपों में विभाजित किया गया है। इन में प्रेम सम्बन्धी विभिन्न भाव ही आन्तरिक अर्थ या विषयीगत भाव हैं। तोलगाप्पियम् से हम जानते हैं कि तमिल जनता ने उदात्त प्रेम का बहुत ही आदर किया है और उसे पांच रूपों में विभाजित किया है। उनके अनुसार प्रेम के पांच रूप ये हैं—मिलन, वियोग, वियोग में पत्नीवत धैर्य, वियोग में

तड़प तथा पति के आगमन पर मान। प्रेम के पांच रूपों के पांच प्रकार के भूविभागों के लिए उपयुक्त थे। भूविभाग के पांच भेद ये हैं—कुरिञ्जि 'पर्वतप्रदेश' पालै 'मरुप्रदेश' मुल्लै 'वन प्रदेश', नेयदल 'सागर तटवर्त्ती प्रदेश' मरुदम 'समभूमि'। आगे इसको, वर्षा, 'कार' शरद 'कुदीर' शिशिर 'मुनपनि' हेमन्त 'पिनपनि' वसन्त 'इलविनिल' और ग्रीष्म 'मुदवेनिल' वर्ष की इन छ: ऋतुओं से सम्बन्धित किया गया है। तमिल के व्याकरण में वर्ष की ऋतुओं का बड़ा विभाग 'पेरुम्फेलुदु' नाम से उल्लेख किया गया है और दिन के विभाग को लघुविभाग 'चिरुपोलुद' के नाम से अभिहित किया गया है। वर्ष की तरह दिन के भी छ: विभाग किये गये हैं। जिन के नाम ये हैं:—रात का प्रथम पहर 'मलै' मध्य रात 'यमम' ब्रह्ममुहूर्त्त 'वैगरै' प्रात: 'कालै' मध्याह्न 'नन्पगल' और सन्ध्या 'इरुपदु'।

नीचे दी हुई सारणी से पाठक को भूमि के विभाग और उनसे सम्बन्धित प्रेम-पक्ष और ऋतुओं का स्पष्ट ज्ञान हो जायगा।

	भूमि-विभाग	प्रेम-दशा	ऋतु	दिन-विभाग
१	कुरिञ्जि	मिलन 'पुन्रतल'	कूदिर, मुन्पनि	यामम
२	मुल्लै	धैर्यधारण 'इरुन्तल'	कार	मालै
३	मरुदम्	मान 'उडल'	षड्ऋतु	कालै तथा वैगरै
४	नेय्दल	तड़प 'इरगल'	षड्ऋतु	इरुपदु
५	पालै	वियोग 'पिरितल'	वेनिल, पिन-पनि	नन्दगल

प्रारम्भ से ही तमिल लोगों ने केवल छ: ही ऋतुयें मानी हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में ऋतुओं की संख्या तीन, पांच, छ: सात, बारह और चौबीस तक दी हुई है। संस्कृत के उत्तरकालीन साहित्य में प्राय: केवल छ: ऋतुओं का ही वर्णन आता है। ये छ: ऋतुयें हैं—बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर और हेमन्त।

संघ काल के तमिल साहित्य में और मध्यकाल में भी ऋतु वर्णन भरा पड़ा है। हम पहले यह देखेंगे कि संघकालीन ग्रन्थों में वर्षा ऋतु का कैसा वर्णन किया गया है। कार (वर्षाऋतु) शब्द से मेघ और एक प्रकार के धान का बोध होता है। इस धान का नाम 'कार' इसलिए है कि यह कार अर्थात् वर्षाकाल में काटा जाता है। तमिलनाड में अगस्त (आवणि) सितम्बर (पुरट्टासी) वर्षा के महीने हैं। यह ऋतु और इसके सिरुपोलुदु (छोटे विभाग) जिन का नाम 'मालै' है विशेषरूप से वन्य भूमि में प्रधान रहती है।

एक संघ कालीन कवि (नप्पुदनार) के द्वारा लिखे हुए १०३ पंक्तियों के प्राचीन गीत 'मुल्लैपाट्टु' में हमें इस ऋतु का एक बहुत ही सजीव एवं आकर्षक वर्णन मिलता है। इस गीत के नायक ने युद्ध भूमि में अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिए अपनी प्रेयसी पत्नी का त्याग किया। उसने वर्षा ऋतु में वापस आकर उस

से मिलने का वचन दिया। अपनी ग्राम्य कुटी में अकेली छूटी हुई उस सुन्दर युवती ने अपने प्रिय पति के वियोग में अत्यन्त दुःख के साथ दिन व्यतीत किये और सेज पर पड़े पड़े उसकी वापसी की राह देखती रही। पानी से भरे हुए काले मेघों और अत्यधिक वर्षा के साथ आने वाली वर्षा ऋतु उस की वियोग-पीड़ा को और अधिक बढ़ा देती है।

इस गीत में कवि अविरल रूप से वर्षा करने वाले काले मेघों की वामन अवतार के विष्णु या काले 'माल' के रूप से तुलना करता है। जिस प्रकार राजा माबली से ग्रहण किया हुआ यज्ञ-जल वक्षस्थल में लक्ष्मी और हाथों में शंख और चक्र धारण करने वाले विष्णु के चौड़े हाथों से बाहर निकल गया, उसी प्रकार मेघ समुद्र से जल पीकर घनघोर वर्षा करने में उसे बाहर निकालता है। गीत में वर्णित संध्या जो कि वर्षा ऋतु की प्रथम वर्षा को साथ लाती है प्रेयसी के हृदय को शोकान्वित कर देती है। उसका धैर्य जाता रहता है। क्योंकि संध्या ही वह समय है जो अपने प्रेमी पति से वियुक्त पत्नी के लिए घातक है। तिरुक्कुरल का लेखक तिरुवल्लुवर कहता है "यह व्याधि प्रातः वेला में कली रूप में रहती है, दिन भर फैलती है और संध्या-वेला में पुष्प रूप में विकसित हो जाती है।" इसी गीत में उन विविध वनस्पतियों का भी उल्लेख है जो इस विशेष ऋतु में पुष्प देती हैं। काया नामक पेड़ से काले रंग के फूल पैदा होते हैं, 'कोन्रै' और 'तोन्री' नामक पेड़ स्वर्णिम और गहरे लाल रंग के फूल पैदा करते हैं। कान्दल के पुष्प कुमारी के सुन्दर हाथों की तरह खुलते हैं। वर्षा को देखकर हिरण रागी के खेतों में अब उत्साह से नाचने लगते हैं।

एक संघकालीन कवि जिसका नाम कुरुंगुडि मरूदनार है ग्रीष्म की शुष्कता के कारण शोकान्वित होकर वर्षा का स्वागत करते हुए इन शब्दों में कहता है—"मेघ बिजली और गर्जन के साथ घिर रहे हैं और ऊँचे आकाश से बरस रहे हैं। सूखा हुआ वन हरीतिमा से आवृत हो गया है। मुल्लै लता की कलियाँ खिल रही हैं। सुपारी और कोन्रै के वृक्ष खिले हुए पुष्पों से सुशोभित है। हिरण जिनके काले सींग मुड़ी हुई लोह की शलाकों के तुल्य है अपनी कंकरीली खाइयों में खुशी से नाच रहे हैं। वर्षा ऋतु इस विशाल मही के ऊपर राज्य करने लगी है"। (आगम चौथा गीत)

एक दूसरा कवि इस वर्णन से भी आगे बढ़कर कहता है कि कैसे वाडै (उत्तरीय वायु) को साथ लेकर 'कार' ऋतु ने समग्र वन्य भूमि को 'मुल्लै' पुष्पों की सुगन्ध से व्याप्त कर दिया है। वर्षाकाल में होनेवाले गर्जन की उपमा यहाँ ढोल के बजने से की गई है।

ओक्कूर मसदनार इस ऋतु का प्राकृतिक वर्णन करता है। उसके गीत का अर्थ इस प्रकार है--

"लाल मोम की तरह गहरे लाल रंग की भूमि के बीच से जाने वाले मार्ग में टूटे हुए गहरे बैंगनी रंग के पत्ते बिखरे हुए हैं। गहरे लाल रंग के पतंगे धीरे धीर एक जलूस बनाकर रेंग रहे है, और पर्वत ऐसे चमक रहे हैं जैसे प्रवाल और नीलम से मिश्रित हों। उस पर्वतीय वन्य प्रदेश में सींगवाले हरिण और हरिणियाँ परस्पर आलिंगन करते हुए और चरते हुए विचरण कर रहे हैं। गायें अपनी इच्छानुसार 'मुल्लै' के चरागाहों में चर रही

हैं। प्रसन्नचित्त चरवाहे पर्वतों से फूल एकत्र कर रहे हैं और उनसे मालायें बनाते हैं।" (अगम चौदह)

शिलाप्पदिकारम् का लेखक इलंगो अडिगल अपने महाकाव्य में इस ऋतु में स्त्रियों पर होने वाले प्रभाव का बड़ा सुन्दर वर्णन करता है।

"(मदुरा नगर की महिलायें) अपनी कमर में फूलों का काम किया हुआ गहरे लाल रंग का रेशम पहने हुई हैं। अपने बालों को (जो पहले से ही कलियों से युक्त है) वन्य जैतून से और फिर श्रीमलै पर्वत के ढालों पर उगने वाले सुगन्धित और ताजे कुरिञ्जि और लाल फ़ाली के फूलों से सजाती है। (उसके पश्चात् वे) अपने स्तनों को लाल रक्त चन्दन के लेप से अनुरञ्जित करती हैं। और फिर प्रवालों की तथा लाल संगोद पुष्पों की मुड़ी हुई पंखुड़ियों की बनी हुई मालाओं से उन को सजाती हैं।" (उर्कन्कडै पंक्तियाँ ८५—९५) रेशमी वस्त्रों का पहनाव इस ऋतु की विशेषता है।

इसके बाद शीत ऋतु (कुदिर) आती है। इस ऋतु की पर्वत प्रदेश (कुरिञ्ज) में विशेष प्रधानता रहती है। प्रेम-मिलन इस की विशेषता है। शीत ऋतु एप्पसी और कार्त्तिकै—अक्टूबर और नवम्बर में होती है। तृतीय संघ के प्रसिद्ध कवि नक्कीरर ने इस ऋतु का तथा चरवाहों, पशुओं, पक्षियों, पेड़ों, युवक और युवतियों और विशेष रूप से प्रेयसी की अपेक्षा युद्ध से प्रेम करने वाले वीर पति के द्वारा महल में अकेली छोड़ी हुई विरह से व्यथित रानी के ऊपर होने वाले इस ऋतु के प्रभाव का अपनी मनोहर कविता नेड़ुनल-वाडै (दीर्घ शीत) में प्राकृतिक वर्णन करता है "शाश्वत आकाश अपनी जलधारा का संचार कर चुका है, संसार अतिशीत से कांप रहा है, गड़रिये अपने डण्डे से अपने गाय-बैलों को हांकते हुए ताजे चरागाहों में ले जाते हैं। उनको बाढ़ का डर है। अपने प्यारे घरों से जिन की प्यारी स्मृतियाँ उनके हृदय में है दूर जाते हुए उन को वियोग की वेदना होती है। वर्षा के कारण उनकी मालायें अस्तव्यस्त हो गई हैं। कड़ाके की सर्दी से वे काँप रहे हैं। ठण्ड से जिनके दाँत बज रहे हैं ऐसे वे अपने साथ लकड़ियाँ संग्रह करते हुई साथ मिलकर चल रहे हैं। गाय-बैलों का झुण्ड चरना छोड़ चुका है। पक्षी अपने घोंसलों की ओर उड़ते हुए भूमि पर गिरते हैं। जब बछड़े दूध पीने के लिए गायों से थन पर मुँह लगाते हैं तो गाय उनको लात मारती हैं। मध्य-रात्रि में जब कि सब सोये हुए हैं पर्वत ठण्ड से व्याप्त है।"

कुमुग वृक्ष पके हुए फलों से भरे हुए हैं और बाग़ फूलों से लदे हुए वृक्षों से शोभायमान है।

कसबों के भोले भाले बलवान मनुष्य ताड़ी पीते हैं और भयंकर सर्दी की चिन्ता न करते हुए रात्रि में नशे में चूर गलियों में घूमते हैं।

चन्दन लेप और पुष्पमालाओं की कोई मांग नहीं है। स्त्रियाँ घड़ों में रखे हुए पानी को पीना पसन्द नहीं करतीं। इस ऋतु में शीत निवारणार्थ अग्निकुण्ड और हुक्के की बहुत मांग है। अगरबत्ती और धूप जलाई जाती है। ठण्ड और जुकाम से बचने के

लिए शोरे का उपयोग किया जाता है। खिड़कियाँ बन्द कर दी जाती हैं। और ऊपरी मंजिल के कमरों में कोई नहीं जाता है। अपने परिपूर्ण महल में उदास बैठी हुई रानी 'ताली' के (मांगल्यसूत्र) के अतिरिक्त कोई भी आभूषण न पहने हुई सूती वस्त्रों को पहनकर अपनी हाथी दांत की सेज पर लेटी हुई है और आँखों को खोले हुए एकाकी थकानेवाली जाड़ों की रात्रि को व्यतीत करती है।

इलंगो-अडिगल खिड़कियों को बन्द करने और धूप जलाने का इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

"जाड़े की ऋतु में शर्मीली युवतियाँ और उनके प्रेमी अपने वक्षस्थल पर सुगन्धित लेप करके धूपदानी में धूप की लकड़ी जलाकर उसके सामने बैठे हुए हैं और कुशल शिल्पकारों द्वारा निर्मित गगन-चुम्बी महलों में अपने कमरों की खिड़कियाँ बन्द किये हुए हैं। (अरुकनकदै पंक्तियां ९७-१०१)

शरद ऋतु के बाद शिशिर ऋतु आती है। 'मार्गलि' और 'तै' महीनों में जो कि लगभग दिसम्बर और जनवरी के महीनों में पड़ते हैं फूलों की पङ्खड़ियों पर प्रातःकाल ओस की बूंदें जमी हुई दिखाई देते हैं। इस ऋतु की विशेषता यह है कि इस में गन्ने और करुविलै में फूल आते हैं और काले और हरे चने पकते हैं। इस ऋतु के आगमन का चिह्न 'अवरै' (सेम) लताओं पर फूल आना है। अनेक कवियों ने इसका उल्लेख किया है। अपने पति के आने की बाट देखती हुई एक युवति कहती है "क्या वह इतना निर्दय है कि इस ऋतु में भी जबकि अवरैलताओं में सुन्दर पुष्प आते हैं, मुझ से दूर परदेश में रह सके।" (कुरुन्तोगै)

लोग इस ऋतु में भी जाड़े से थरथराते हैं और अग्निकुण्ड के समीप रहना पसन्द करते हैं। जीवक चिन्तामणि के लेखक ने इस ऋतु में शाल की मांग का उल्लेख किया है। चूहे के बालों से बने हुए शालों के प्रयोग के बारे में अपनी एक कविता में उल्लेख करते हैं। इन महीनों में लोग केवल गरम पानी पीना और अदरक जैसी गरम चीजों को खाना पसन्द करते हैं। सफेद चमेली इस ऋतु का पुष्प है। शिलप्पदिकारम् में यह लिखा है कि इस ऋतु में प्रातःकाल के उगते हुए सूर्य का ताप लेना लोग पसन्द करते हैं।

"शिशिर ऋतु में स्त्रियां अपने प्रेमियों के साथ अपने बड़े बड़े मकानों के चन्द्रमा से प्रकाशित छत्तों पर बैठती हैं और उगते हुए सूर्य की धूप सेंकते हैं। और सूर्य दक्षिण क्षितिज पर अपनी फैलती हुई किरण के द्वारा सफेद बादलों को हटाता हुआ प्रतीत होता है (उरुकनकदै १०२–१०५)

शिशिर ऋतु के बाद हेमन्त (पिनपनि) ऋतु आती है। तमिलनाड में हेमन्तऋतु के महीने मासि औ पंगुनि हैं जो कि लगभग फरवरी और मार्च के महीनों में पड़ते हैं। यह ऋतु अपनी पूर्वीय हवा से प्रेमियों की वासना को उद्दीप्त करती है। खजूर के पेड़ पके हुए फलों से भरे हैं और कोंगु वृक्ष फूलों से लदे हैं। युवतियां इस ऋतु में अपने

स्तनों पर कुंकुम का लेप करती है। पंगुनि के महीने में "विलविलि" नामक उत्सव मनाया जाता है। इसका उल्लेख शिलप्पदिकारम् और कुरुन्तोगै में है।

"पंगुनि के महीने में हेमन्त का राजा कहाँ है जो पाण्डयनगर में विलविलि के कामोत्सव को देखता और पूर्वादि वायु के साथ प्रवेश करता ?" (शिलप्पदिकारम्)

योद्धा बसन्त का उगते हुए सूर्य के साथ आगमन हो चुका है जो सूर्य की अपनी उज्ज्वल किरणों को फैला कर अंधकार के आवरण को दूर करता है और विशाल पृथ्वी को प्रकाशित करता है। बसन्त ऋतु में जो कि लगभग अप्रैल और मई में पड़नेवाले 'चित्तै' और 'वैकासी' महीने में होती है प्रत्येक वस्तु का सौन्दर्य बढ़ जाता है। प्रेम का राजा "मारण" बसन्त के साथ आ चुका है। फूले हुए अशोकवृक्ष और विकसित कमल परस्पर वियुक्त प्रेमियों के हृदय को अत्यधिक उद्दीप्त करते हैं। सुगन्धित दक्षिणीपवन के साथ आनेवाला बसन्त आम की कोमल पत्तियों को झुका देता है। कोयल की कूकू अपने प्रेमियों से बिछुड़ी हुई कामिनियों को शोक विदग्ध कर देती है। यह ऋतु माधवी लताओं को हरीभरी करती है और बनों और कुंजों को सुगन्धित पुष्पों से परिपूर्ण कर देती है। इन महीनों में प्रेम का देवता 'काम' अपने पुष्प-शरों से विशाल जगत के ऊपर राज्य करता है।

प्रेम के देवता काम का मित्र बसन्त है। उसका दूत दक्षिण पवन (तेन्रल) है। और कोयल उसका शंखध्वनि करनेवाली प्रतिहारी है। इसका उल्लेख इलंगो-अडिगल ने किया है। इस कविता का अर्थ नीचे दिया जाता है:—

"उर्वर तमिलभूमि के ऊपर कामदेव और उसके विनोदी मित्र बसन्त का साम्राज्य है। बसन्त के आगमन की सूचना अगस्त्य मुनि के उर्वर पोदियल पर्वत से चलनेवाली दक्षिण-पवन रूपी दूत ने दी है। कोयल लताओं से भरपूर कुंज में रहती हुई कामदेव की सेना की प्रतिहारी का नाटक करती हुई कूकू की ध्वनि करती है। जैसे कि मानो यह सन्देश दे रही हो कि हो मछली की ध्वजावाले राजा के सैनिको ! अपने अपने पदों के उपयुक्त वस्त्र धारण कर लो।" (वेनिरकदै पंक्तियाँ—१-१३)

इस ऋतु के पुष्प हैं—चम्पक, माधवी, सफेद चमेली (मल्लिगै)। लाल कपास के वृक्षों में फूल आना इस ऋतु की विशेषता है। एक संघकालीन कवि लिखता है, "बसन्त ऋतु में कोंगु वृक्षों से भ्रमर पंक्तियों के द्वारा जो पराग धूलि लाल कपास के फूलों से लदी शाखाओं के ऊपर बिखेर दी गई है वह सुवर्णकार के मूंगे के पात्र में डाले हुए सुवर्ण के सदृश है।" (अगनानूरु २५)

कोवलन के द्वारा मादवी का परित्याग करने के बाद मादवी ने उसको जो पत्र लिखा है उसमें बसन्त ऋतु का अपने प्रियपतियों द्वारा परित्यक्त युवतियों के ऊपर प्रभाव का सुन्दर वर्णन है। अपने पत्र में वह समझाती है कि कोवलन द्वारा उसका परित्याग किये जाने पर उसको जो असह्यवेदना हो रही है उसमें बसन्त कितनी वृद्धि करता है। बसन्त जो कि एक युवक सम्राट् है दूसरों की वेदना को नहीं समझ सकता है और संसार

के ऊपर अच्छा शासन नहीं कर सकता है। चन्द्रमा और उसके साथी सुगन्धित पुष्प भी उसकी वासना को उद्दीप्त करते हैं।

इलंगो-अडिगल के शब्द में—

"वह जो संसार का शासन करने के लिए आया है, युवराज वसन्त है जो प्रेमियों और प्रेमिकाओं का संयोग करता है। चन्द्रमा भी जो कि संध्या बेला में दिखाई देने वाली प्रेम-पीड़ा के साथ उदित हुआ है, निर्दोष नहीं है, अतः चाहे वे संयोग के बाद वियुक्त होने वाले और वापस आने में विलम्ब करने वाले प्रेमी हों अथवा वे अपने साथियों को सुगन्धित छोड़ कर भूलजाने वाले प्रेमी हों, इस में कोई आश्चर्य नहीं है कि यह चन्द्रमा अपने पुष्पों के तीक्ष्ण बाणों से अकेले रहने वालों की हत्या कर दें।" (वेनिरकदै—पंक्तियाँ ६४-७३)

आनि और आडि जो कि लगभग जून और जुलाई में पडते हैं, वे महीने हैं जब बन और पर्वत प्रदेश अपने स्वाभाविक रूप को त्याग देते हैं और सूर्य की उष्ण किरणों के कारण मरुस्थल का रूप धारण कर लेते हैं। तमिल देश में "सहारा" के सदृश कोई स्थायी मरुस्थल नहीं है। भूमि के पांच प्राकृतिक विभागों के अन्तर्गत आनेवाली मरुभूमि से केवल मुल्लै, (वन) कुरिञ्जि (पर्वत) का ग्रीष्म के कारण बदले हुए रूप से तात्पर्य है। कवि इलंगो-अडिकल ग्रीष्म के तप्त सूर्य की तुलना एक क्रूर राजा के साथ करता है और उस के सहायक पवन की दुष्ट परामर्शदाता से तुलना करता है।

सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणों के साथ विशाल भूमि को आवृत करने वाले अन्धकार को निगल कर उदित हो चुका है। यह ऋतु और उस की भयानक गर्मी इतनी क्रूर है कि हाथी अपने प्रेमपूर्ण आलिंगन से अपनी हथिनी की रक्षा करने के लिए बाध्य हुआ है। मुर्गा अपनी मुर्गी को तप्त सूर्य से बचाने के लिए उस के ऊपर अपने पंखों को फैला देता है और हरिणी अपने हरिण की छाया में शरण लेती है। प्यासा वन्यजन्तु दूरस्थ मृगतृष्णा को जलाशय समझ कर उसकी ओर दौड़ता है। हाथी जो सूर्य की किरणों से तप्त होकर अपने सूखे हुए मुखों से गीली झाग छोड़ते हैं, भयानक प्यास से मरे जा रहे हैं। इस ऋतु में कदम्ब वृक्ष की शाखायें फैलती हैं, ओमै वृक्ष सूख जाते हैं, वागै का तना फट जाता है, बाँस सूख जाता है, सूखे हुए मरल में काली दरारें पड़ जाती हैं और बनों में प्यासे हरिण पानी की खोज में भटकते हैं। इस ऋतु में नारियल के कुंज उगते हैं। और आम और पनस फलों से लद जाते हैं। माधवी वृक्ष जो बसन्त ऋतु में ताजे और हरे पुष्पों से भरपूर दिखाई देता था, ग्रीष्म के असह्य ताप से मुरझा गया है और अपनी सुन्दरता नष्ट कर रहा है।

इस ऋतु में चन्दनलेप और पुष्पमालाओं की बहुत माँग होती है। मैंने पाठकों के सामने तमिल साहित्य की वाटिका से कुछ सुन्दर पुष्पों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दूसरी भाषा में वर्णन करने की कठिनाई के कारण बहुत से ऐसे उद्धरण हैं जिन को छोड़ दिया गया है। हमें आशा है कि एक ऐसा दिन आयगा जब भारतवासी तमिल साहित्य के दैवी माधुर्य का स्वयं तमिल भाषा में आस्वादन कर सकेंगे जिसकी महान् भारतीय संस्कृति को कम देन नहीं है।

श्री के० मीनाक्षीसुन्दरम् तथा एन० कुमारसामीराजा

तमिल-साहित्य में बारहमासा और षड्ऋतु वर्णन

संसार में सभी प्रकृतिवादी प्रकृति के सौन्दर्य से आकर्षित हुए हैं और उन्होंने ऋतुओं के प्रत्येक पहलू का—वृक्ष, पुष्प तथा पशुओं का वर्णन किया है। ऋतु परिवर्तन तथा प्राकृतिक दृश्यों में पाये जाने वाले परिवर्तन कला की सृष्टि के अंग हैं। कुछ ऋतुओं और ऋतुओं के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करते हैं किन्तु यह वर्णन केवल तभी उच्चकोटि का होता है जब ऋतुएँ जीवन की विविध अनुभवों की प्रतीक बन जाती हैं। अच्छी कविता को प्रकृति की व्याख्या इस प्रकार करनी चाहिए कि "अनुभूति तीव्र हो, व्यथा गहरी हो और स्फूर्ति प्राप्त हो"।[1]

प्राचीन तमिल कवियों के ऋतुओं और प्रकृति के अन्य पक्षों पर किये गए विचार प्रौढ़ हैं। रेवरेण्ड जेवियर एस० तनिनायगम् का विचार—'यथार्थता की इच्छा', 'सूक्ष्म वर्णन की प्रवृत्ति' तथा 'प्रकृति की अभिव्यक्तियों के प्रति संवेदनशीलता', सम्पूर्ण तमिल साहित्य में व्याप्त है।[2]

योरोपियन काव्य के पद्य विभिन्न ऋतुओं के अनुसार वर्गबद्ध किये जा सकते हैं।[1] लेकिन तमिल में कविता का आधार मानवीय भावों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यद्यपि प्रकृति का दूसरा स्थान है और मानवता का प्रथम तथापि तमिल कविताओं में मानवीय भावों का प्रदर्शन थोड़ीसी पंक्तियों में ही हो जाता है और अधिकांश पंक्तियों में प्रकृति का वह वर्णन है जो मानवीय भावों के अनुकूल होता है। कविता जितनी लम्बी होगी प्रकृति की अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक होगी।

तमिल के प्राचीन साहित्य में प्रकृति का पूर्ण और यथार्थ वर्णन मिलता है। ईसा-मसीह से लाखों वर्ष से पूर्व असंख्य कविताएँ छन्दोबद्ध की गईं जिनमें से थोड़ी ही बच पाई हैं। तोलगाप्पियम् प्राचीन तमिल व्याकरण है और इससे तमिल जाति के सामाजिक जीवन और साहित्यिक परम्पराओं के अध्ययन के लिए प्रभूत सामग्री प्राप्त होती है। इसका अस्तित्व मात्र यह प्रदर्शित करता है कि इसके लेखक से पहले तमिल प्रदेश में अनेक वैयाकरण हुए और प्रचुर साहित्य रहा होगा। आज प्राचीन तमिल साहित्य के नाम से

१. एस० जे० लब्बाक 'ब्यूटीज ऑफ़ नेचर'
२. जेवियर एस० तनिनायगम—नेचर इन एन्सयंट तमिल पोयिट्री

हमारे पास दस पत्तुप्पाट्टु[१] और आठ संग्रह (एट्टुत्तोगै)[२] हैं। कई कवियों के कविता संग्रह मौजूद हैं जिन में से अधिकांश को एक ही युग का माना जा सकता है। डा० उ. वे. स्वामिनाद अय्यर ने लिखा है कि ये सब कवितायें ईसा की दूसरी शताब्दी तक संगृहीत हो चुकी थीं।[३]

ये तमिल कवितायें अगम (प्रेमकाव्य) और पुरम् (इतरकाव्य) इन दो वर्गों में रखी जा सकती हैं। इन प्राचीन काव्यों में 'तमिल प्रदेश और उसकी ऋतुओं के दीर्घ और सुन्दर वर्णन है'[४] नेडुनल वाडै इन कविताओं में से एक है। इसमें उत्तरीय पवन तथा उसके प्रभावों का वर्णन अनुपम है। आठ संग्रहोंका अधिकांश भाग अगम वर्ग में आता है जिसमें प्रेम भाव का वर्णन है।

सम्पूर्ण तमिल साहित्य में प्राचीन साहित्य अधिक ध्यान देने योग्य है। और उसमें भी 'अगम' वर्ग का काव्य जो प्राकृतिक काव्य के अधिक मौलिक पहलुओं को अभिव्यक्त करता है, अधिक आकर्षक है। तोलगाप्पियम् का लेखक तोलगाप्पियनार एक प्राचीन वैयाकरण है, वह केवल भाषा मात्र का विचार नहीं करता है बल्कि तमिल काव्य परम्पराओं का वर्णन भी करता है। उसके मतानुसार प्रादेशिक भूमि-सौन्दर्य, वर्ष की ऋतुएँ, दिन के विभाग और प्रदेशों में पाये जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ प्रेम काव्य की पृष्ठ भूमि का निर्माण करती हैं। अतः काव्य वस्तुओं को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है (तोलगाप्पियम् अगत्तिर्ण अ० सू० ३.)। ये शीर्षक हैं—मुदलपोरुल (मुख्य वस्तु) करुप्पोरुल (प्रादेशिक वस्तु) और उरप्पोरुल (प्रेमपक्ष)। प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति का कोई स्थान और काल होना चाहिए।[५] अतः मुदलपोरुल निलम (स्थान) और पोलुदु (काल) इन दो में विभाजित है। निलम् और पोलुदु के भी कई उपविभाग हैं। स्थान के पर्वत (कुरिञ्जि) चरागाह (मुल्लै) कृषि (मरुदम्) और सागरतटभूमि (नेयदल) ये चार परम्परागत विभाग हैं। इनके अतिरिक्त मरुप्रदेश भी है जिसकी अपनी अलग भूमि नहीं है बल्कि यह भूमि वही है। कुछ समय के लिए आंधी इत्यादि के कारण मरुस्थल (पालै) बन जाती है।[६]

---

१. दस पत्तुप्पाट्टुये हैं, तिरुमुरुगाट्रुप्पडै, पोरुनराट्रुप्पड, मुल्लैप्पट्टु, मदुरैक्कोजि, कुरिंजिप्पाट्टु, पट्टिनप्पालै, मलैपडुकडाम, चिरुपाणाट्रुप्पडै, पेरुंपाणाट्रुप्पडै, नेडुनलवाडै।

२. आठ संग्रह निम्न हैं। नट्रिणै, कुरुंतोगै, ऐंगुरुनूरु, पदिट्रुप्पत्तु, परिपाडेल, कलित्तोगै, अगनानूरु, पुरनानूरु।

३. डा० उ० वे० स्वामिनाद अय्यर—'कुरुन्तोगै' तमिल की भूमिका।

४. रेव० जेवियर एसं तनिनायकम—'नेचर इन एन्सयन्ट तमिल पोयिट्री।

५. तोलगाप्पियम पोरुलधिकारम् जि० १ भाग १ ई. एस. वरदाराज अय्यर का अंग्रेजी अनुवाद।

६. तो० अगत्तिणै अध्या० सू० ५।

'मुदलपोरुल'[1] का दूसरा भाग पोलुदु (समय) है। पुनः यह पोलुदु दो भागों में विभाजित है। एक है पेरुंपोलुदु (वर्ष की ऋतुएँ) और दूसरा है सिरुपोलुदु (दिन विभाग)। इस समय हमारा सम्बन्ध दिन के विभाग से नहीं है। वर्ष के छः विभाग अर्थात् ऋतुएँ ये हैं—कार (वर्षा ऋतु) कूदिर (शरद) मुनपनि (शिशिर) पिनपनि (हेमन्त) इलवेनिल (वसन्त) वेनिल (ग्रीष्म)। यह तमिल वर्ष के बारह मास के अनुसार इस प्रकार हैं चित्तिरै (एप्रल-मई) वैकाशी (मई-जून) आनि (जून-जुलाई) आडी (जुलाई–अगस्त) आवणि (अगस्त-सितम्बर) पुरट्टासी (सितम्बर-अक्टूबर) ऐप्पसि (अक्टूबर–नवम्बर) कार्त्तिगै (नवम्बर–दिसम्बर) मार्गलि (दिसम्बर–जनवरी) तै (जनवरी–फरवरी) मासि (फरवरी–मार्च) और पगुंनि (मार्च–एप्रल)। प्रत्येक पेरुंपोलुदु (ऋतु) दो महीने की होती है।[1]

प्रेम के पाँच पक्ष जो कि प्राचीन तमिल काव्य के आधार हैं पुणर्दल (संयोग) पिरिदल (वियोग) इरुत्तल (प्रेयसी की प्रतीक्षा) इरंगल (धैर्य) और ऊडल (मान) और इन से सम्बन्धित परिस्थितियाँ काव्य में पाये जाने वाले प्रेम के पक्ष हैं।[2] पहले उल्लिखित वैयाकरण एक विशेष पक्ष के लिए एक विशेष स्थान और एक विशेष काल निर्धारित करते हैं। ये उस पक्ष के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं। प्रेम पक्षों के नाटक के लिए ये काल, स्थान और वस्तुएँ एक उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती हैं। किन्तु यह पृष्ठभूमि मात्र नहीं है। तनिनायकम् 'नेचर इन एंसियट तमिल पोयट्री' के अनुसार इनको "सहानुभूतिपूर्ण पृष्ठभूमि" कहा जा सकता है। "कविता का महत्वपूर्ण पक्ष मनुष्य की अनुभूतियाँ, व्यवहार तथा आचरण है किन्तु प्रकृति इन से साम्य या वैषम्य रखती हुई इनको तीव्रता के साथ प्रदर्शित करने का साधन मात्र है।"

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कविता का आधार 'उरिप्पोरुल' प्रेमपक्ष हैं। इस से प्रथम है—संयोग और उससे सम्बन्धित पक्ष। कुरिञ्जि अर्थात् पर्वत प्रदेश इसकी पृष्ठभूमि है। क्या पर्वत प्रदेश छिपे छिपे मिलने के लिए अवसर प्रदान नहीं करता ? यह प्रादेशिक पृष्ठभूमि है। 'कूदिर' जो कि वर्ष का सब से ठंडा भाग है और जिस में घोर वर्षा होती है प्रेम के संयोग पक्ष के लिए ऋतु सम्बन्धी पृष्ठभूमि के रूप में चुना गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि इसके लिए मध्य रात्रि को ही चुना गया है।

---

१. कार (वर्षा)—आवणि तथा पुरट्टासि
   कूदिर (शरद) – ऐप्पसि तथा कारतिगै
   मुनपनि (शिशिर)—मारगलि तथा तै
   पिनपनि (हेमन्त)—मासि तथा पांगुनि
   इलवेनिल (वसन्त)—चित्तिरै तथा वैकाशि
   वेनिल (ग्रीष्म)—आनि तथा आड़ि

२. तो० अगत्तिणै सू० १६।

कार अर्थात् बादलों की ऋतु प्रेयसी की प्रतीक्षा के लिए बहुत ही अच्छा समय है। परम्परागत तमिल लोग अपने सब कार्यों को इस ऋतु के पहले समाप्त कर देते हैं। नायिका अपने नायक के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा केवल इसी काल में करती है। वियोग से उस को चिन्ता और शोक बहुत बढ़ जाते हैं।

वेनिल अर्थात् ग्रीष्म सब से दीर्घ और दारुण वियोग के लिए निर्धारित किया गया है। इलवेनिल (वसन्त) और पिनपनि (हेमन्त) भी ग्रीष्म की तरह इस पक्ष के प्रतिनिधि हैं।

प्रकारान्तर से कुरिञ्जि (संयोग) की पृष्ठभूमि कूदिर (शरद) है। वियोग 'पालै' पक्ष का वर्णन करते हुए इलवेनिल (वसन्त) और वेनिल (ग्रीष्म) का वर्णन किया गया है। मुल्लै प्रेयसी की प्रतीक्षा के पक्ष के साथ कार वर्षा ऋतु का वर्णन किया जाता है। मरुदम का कोई निश्चित समय नहीं है। नेयदल का भी कोई निश्चित काल नहीं है।

प्राचीन तमिल साहित्य में वर्णित ऋतुओं में कार (वर्षा ऋतु) सब से प्रमुख है। कुरुंतोगै जिसमें ४०० पद्य हैं आठ कविता संग्रहों में से एक है। इन ऋतुओं के कई दृष्टान्त हैं। पैंतीस पद्यों में कार का वर्णन है तथा सोलह कूदिर का, ग्यारह वेनिल का और सात मुनपनि और पिनपनि का। ये सब ऋतुओं के साथ प्रादेशिक वनस्पतियों तथा पशुओं का वर्णन है।

कार (वर्षा ऋतु)

यह ऋतु वर्षा का प्रारम्भिक काल है। यह अगस्त के मध्य से अक्टूबर के मध्य तक रहती है। यह प्रेयसी की प्रतीक्षा काल की पृष्ठभूमि है। इस ऋतु में संध्याकाल में बादल घिरते हैं। बादलों का गर्जन होता है और बिजली चमकती है। चरागाहों में वर्षा का नया पानी गिरता है। भूमि उर्वर होती है। 'मुल्लै' चमेली का पुष्प खिलता है जो कि अपनी सफेदी और सुगंधि के लिए प्रसिद्ध है (कुरुत्तोगै १०८, १२६, १६२, १८६, १८८, २२०, २२१, २३४, ३५८, ३८२, ३८७।

पीक्कुं में एक तरह की लौकी की कलियां निकलती है (नट्रिणै २२७, पुरनानूरु ११६। इन के अतिरिक्त 'कोंरै' और 'कुरुंदु' पुष्प भी सर्वत्र पाये जाते हैं (कुरुत्तोगै २१, ६६; पुरनानूरु १; अगनानूरु १; नट्रिणै ६६; कुरुत्तोगै १४८)। हरिण जोड़ों में चलते हैं, चरागाहों में चरते हैं और खाइयों में भरे हुए स्वच्छ जल को पीकर आनन्द मनाते हैं (अ० ना० १४, २३, ३४, १३६, १५४, ३०४, और ३१४)।

पदिनेण्कीलकणक्कु (अठारह ग्रन्थ संग्रह) में एक कारनार्पदु नामक ग्रन्थ है जिसमें ४० पद्यों में वर्षाऋतु का विस्तृत वर्णन है। इन में से एक कविता में बादलों को जल से गर्भित कहा गया है। वे मन्द मन्द वर्षा करते हैं। इस ग्रन्थ में वर्षा ऋतु का जो वर्णन किया गया है उस का संक्षिप्तरूप भी बहुत लम्बा होगा। मुल्लैपाट्टु दस काव्यसंग्रहों में एक है और प्रेम के प्रतीक्षा पक्ष से सम्बन्धित है। इसमें भी इस ऋतु का

विशद वर्णन है। इस कविता के अन्तिम पंक्तियों में "हरे और पुष्पित आवरण जिन से इस ऋतु में भूमि ढक जाती है, चित्रकार और दृश्यकार के कौशल के साथ वर्णित है।"[1]

जैसे कि पहले उल्लेख किया जा चुका है आठ काव्य संग्रहों में से अगम् 'प्रेम' नामक विभाग में पाई जाने वाले अनेक पद्यों में इस ऋतु का संक्षिप्त वर्णन है। कुरुंत्तोगै नामक कविता के २५१वें पद्य में यह उल्लेख किया गया है कि बादल के गर्जन को सुनकर मयूर प्रसन्न होकर नृत्य करते हैं। अगनानूरु के ६२वें छन्द में हम देखते हैं कि बादल के गर्जन से साँप डर कर ठण्डे पड़ जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके सिर धड़ से अलग हो गये हैं। कलित्तोगै के ११३वें छन्द में इस ऋतु का वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि लोग कुंजों में क्रीडा और नृत्य करना पसन्द करते हैं, जहां कि मुल्लै पुष्पों का आधिक्य है और अपने जानवरों की निगरानी करते हुए चरवाहे मुल्लै के सफेद पुष्पों से अपने को सजाते हैं। पेरूंपाणाट्रुप्पपडै की १७४,१७५वीं पंक्तियों में यह वर्णन है कि चरवाह शाखाओं और लताओं से विविध प्रकार के फूल तोड़कर पहनता है।

कूदिर (शरद ऋतु)

ठण्डी हवा की ऋतु कूदिर कहलाती है। इसका काल अक्टूबर के मध्य से लेकर दिसम्बर के मध्य तक है। इस ऋतु में कभी-कभी फुहार पड़ती है। गन्ना (अ० ना० १३, २१, २१७, २३५; कुरुंत्तोगै ३६) और ईंगैलता (कलित्तोगै ३१, कुरुंत्तोगै ११०, ३८०, अ० ना० २६४) पुष्पित होते हैं। ठण्डी हवा से लोग कांपते हैं। पक्षी और पशु भी ठण्ड से पीड़ित होते हैं। प्रेमिकायें अपने प्रेमी के साथ रहने की इच्छा करती हैं।

इस काव्य संग्रह में से नेडुनलवाडै, कुरिञ्जिप्पाट्टु और मलैप्पडुकडाम् का विशेष उल्लेख यहां आवश्यक है। क्योंकि इनमें शीत ऋतु का अच्छा चित्रण हुआ है उत्तारी या ठंडी हवा के प्रभावों के चित्रण का संक्षेप 'जबियर तनिनायकम्' के अनुसार नीचे दिया जाता है—"अब नवम्बर का अन्त है और घने बादल अपने विकराल रूप को शान्त करने के बाद मन्द मन्द वर्षा की विनयपूर्ण कला का अभ्यास कर रहे हैं। चरवाहे नये चरागाहों में जाते हैं और समूहों में रहते हुए आग सेंक रहे हैं जो दो लकड़ियों को रगड़कर पैदा की गई है। ठण्डक इतनी तीव्र और कंपाने वाली है कि जानवर चरने से मुंह मोड़ रहे हैं। बन्दर ठण्ड के कारण चिल्ला रहे हैं। पक्षी उड़ते उड़ते थक कर गिर रहे हैं। गाय अपने पास आने वाले बछड़ों को लात मारती है। सारस और बगुल झुण्ड बनाकर छिछले जल में आ जाते हैं जहाँ मछलियाँ इकट्ठी होती हैं। धानों के भार से धान के पौधे झुक जाते हैं। कुंजों और बागों में वर्षा की बूंदें टहनियों, पत्तों और पुष्पों से लटकती हैं।"[2]

अगनानूरु कुरुन्तोगै तथा अन्य कविताओं में भी कूदिर ऋतु का वर्णन है। लेकिन वह इतना विस्तृत है कि वह इस छोटे से लेख में नहीं दिया जा सकता है।

---

१. जेवियार एस० तनिनायकम्-नेचर इन एंसियट तमिल पोयिट्री।

२. जेवियर एस ०तनि नायकम्-नेचर इन एंसियट तमिल पोयिट्री।

मुनपनि (शिशिर ऋतु)

मध्य दिसम्बर और मध्य फरवरी के बीच की ऋतु का नाम मुन्पनि है। इसका नाम अंचिरम् और अच्चिरम भी है। इसमें रात्रि के प्रथम पहर में ओस गिरती है। उत्तरीय पवन भी चलती है। ओस की बूंदें बहुत ठण्डी होती हैं। अवरै लताओं में फूल आते हैं। उलुन्द (उड़द) पयिर (मूंग) दालें पक जाती हैं।

कुरुन्तोगै के दो सौ सतत्तरवें पद्य में गरम पानी के बर्तन में रखे जाने का उल्लेख है। ओस के कारण इस ऋतु में लोग गरम पानी पीना पसन्द करते हैं। दूसरे काव्यों में भी इस ऋतु का वर्णन मिलता है।

पिनपनि (हेमन्त ऋतु)

यह ऋतु मध्य फरवरी और मध्य अप्रैल के बीच पड़ती है। इसमें 'पालै' वियोग पक्ष का प्राधान्य है। यह माना जाता है कि इलवेनिल, वेनिल और पिनपनि में सूर्य की गरमी वनस्पतियों को सुखा देती है और स्थायी मरुस्थल पैदा कर देती है। कुरुन्तोगै के १०४वें पद्य में कवि ओस की बूंदों के गिरने की माला के मोतियों के गिरने से तुलना करता है। गायें प्रातःकाल ताजी लता को चरती हैं।

वेनिल (ग्रीष्म ऋतु)

लेख के इस भाग में प्रारम्भिक ग्रीष्म और उत्तर ग्रीष्म का वर्णन किया जायगा। इलवेनिल का समय मध्य अप्रैल से मध्य जून तक है जब कि वेनिल का समय मध्य जून से मध्य अगस्त तक है। इन दोनों में 'पालै' वियोग पक्ष प्रधान रहता है। प्रारम्भिक ग्रीष्म में 'कोंगु' और 'इरूप्पै' नामक फूल खिलते हैं। चन्दन लेप ठण्डक पहुँचाता है। मुख्य ग्रीष्म में पर्वत प्रदेश अस्थायी मरुस्थल बन जाते हैं और शुष्क दिखाई देते हैं।

कलित्तोगै के ३२वें पद्य के अनुसार वर्षा और हेमन्त ऋतु के बाद आने के कारण प्रारम्भिक ग्रीष्म सुखद होता है। लेकिन यह थोड़े समय तक ही होता है। अगनानूरु पद्य ८९ में कवि मुख्य ग्रीष्म के बनों, मरुस्थलों, कठोर भूमि और असह्य ताप की भयानकता का वर्णन करता है। वियोग पक्ष का वर्णन करने वाली सब कवितायें इस ऋतु की भयानकता का स्पष्ट चित्रण करती हैं।

ऊपर उल्लिखित सभी कवितायें छः ऋतुओं के वर्णन विषयक स्वतन्त्र कवितायें हैं। जिन कविताओं में इन ऋतुओं का वर्णन है उनकी सूची बहुत लम्बी है। जिन आठ काव्य संग्रहों का ऊपर उल्लेख हुआ है उनमें लगभग २५०० छन्द हैं। रोचक बात यह है कि इन कविताओं का अधिकांश भाग ऋतु वर्णन से सम्बन्धित है और इस दृष्टि से सामग्री की कमी नहीं है। केवल यह तथ्य कि प्राचीन व्याकरण तोलगत्पियम में प्रकृति वर्णन है, सिद्ध करता है कि उससे पूर्व भी इस प्रकार का काव्य रचा जाता रहा होगा।

जिस काल का ऊपर उल्लेख हुआ है उसमें महाकाव्य दुर्लभ है। जो कुछ हमें प्राप्त है उसमें विभिन्न कवियों द्वारा रची हुई कविताओं के संग्रह हैं जिनका सामूहिक नाम "संघ साहित्य" है। संप्रति उपलब्ध महाकाव्यों में सबसे पुराना "शिलप्पदिकारम्" है। इसका सदैव संघ साहित्य में समावेश नहीं किया जाता है। शिलप्पदिकारम् में ग्रीष्म और अन्य ऋतुओं के स्पष्ट और आकर्षक वर्णन हैं। उत्तर कालीन वैयाकरणों ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुए यह नियम बनाया है कि ऋतु वर्णन भी इसका विशिष्ट अंग होना चाहिये।[1]

उत्तर कालीन काव्यों में ऋतु वर्णन बहुत कम है और जहाँ कहीं भी है संघ साहित्य की तुलना में कम स्पष्ट और सुन्दर है।

मध्यकाल को भक्तिकाल कहा जा सकता है। शैव ग्रंथ 'तेवारम्' इसी काल का है। शिव की स्तुति करते हुए तिरुञ्ञानसम्बन्धर कहते हैं कि शिव वर्षा काल में उगने वाले 'कोन्रै' नामक पुष्प को धारण करते हैं। "पेरुंकदै" जो कि उत्तर संघ-कालीन महाकाव्य है में वर्णित है कि हरिण चरागाहों में आनन्द मनाते हैं। कम्बरामायण जो कि बाल्मीकि रामायण का तमिल प्रतिरूप से प्रकट होता है कि इस ऋतु में पिडवु पुष्प खिलता है।

'कूदिर' के बारे में भी कुछ उत्तरकालीन साहित्य में वर्णन मिलते हैं। कम्बरामायण में इस ऋतु को यम का प्रतीक माना गया है क्योंकि इसमें भयानक सरदी पड़ती है। 'वेनिल' ग्रीष्म ऋतु में 'मरम्' का वृक्ष पुष्प देता है। इसका उल्लेख तिरुवाचकम् मे हुआ है। तिरुवारुरमुम्मणिक्कोवै ग्रीष्म की भयानकता का वर्णन करते हुए कहता है कि इस में बहुत ताप है और बनों में कहीं छाया नहीं दिखाई देती है। उत्तरकालीन तमिल नेरिविलक्कम् में कहा गया है कि ग्रीष्म में वन्य प्रदेश बहुत उष्ण रहता है। तिरुच्चिट्रम्बलक्कोवैयार में हरिण की अवस्था का चित्रण करते हुए कहा गया है कि हरिण मृगतृष्णा के धोखे में आते हैं और बेचारे हरिण उसको पानी समझते हैं। पाण्डिक्कोवै भी ग्रीष्म के अत्यधिक ताप पर जोर देता है।

प्राचीन तमिल ग्रंथों में वर्षा के बारह महीनों का वर्णन नहीं मिलता। फिर भी यत्र-तत्र किसी-किसी महीने का उल्लेख पाया जाता है। उदाहरणार्थ कुरुत्तोगै में कहा गया है कि "तै" (मध्य जनवरी से मध्य फरवरी तक) में पर्वतों की नदियों का पानी बहुत ठण्डा और स्फटिक की तरह उज्ज्वल होता है। (नट्रिणै, ऐंगुरुनूरु और पुरनानूरु में भी इस का उल्लेख है) उत्तर कालीन साहित्य में विशेषतया आण्डाल् और माणिक्कवाचगर के गीतों में मारगलि महीने का विस्तृत वर्णन है।

हमें मानना पड़ेगा कि यह अध्ययन विस्तृत नहीं है। फिर भी हम को लिखते हुए सन्तोष होता है कि भारत के दाक्षिणात्य भाग मे एक प्राचीन भाषा और उसका एक प्राचीन साहित्य है। यह ध्यान देने की बात है कि तमिल में भी प्राचीन भारतीय संस्कृति मौजूद है। बहुत पहले से तमिल काव्य ऋतुओं की विस्तृत व्याख्या में आगे बढ़ चुका है।

---

१. तण्डि—तण्डियलंकारम।

श्री न० वी० राजगोपालन

तेलुगु साहित्य में षड् ऋतु-वर्णन

लगभग एक हज़ार वर्ष पुराना तेलुगु वाङमय* प्रबन्ध-रचना के साथ आरम्भ हुआ था। तत्कालीन परिस्थितियों ने आंध्र-प्रदेश में नये रूप से वैदिक आर्य-धर्म के प्रचार की आवश्यकता उत्पन्न कर दी थी। इसके फलस्वरूप राजराजनरेंद्र ने, जो राजमहेन्द्री को अपनी राजधानी बनाकर आंध्रराज्य पर शासन कर रहे थे, महाभारत का अनुवाद तेलुगु में 'आंध्रवागनुशासन' नन्नय भट्ट के द्वारा कराया। नन्नय भट्ट संस्कृत महाभारत के आरम्भ के ढाई पर्वों को ही अनूदित कर पाये। उस अनुवाद की पूर्ति आगे की दो शताब्दियों में 'कविब्रह्म' तिक्कन तथा महाकवि एर्राप्रेगड ने की। आंध्र साहित्य के इतिहास में सन् १००१ ई० से १३८० ई० तक का यह समय 'आदियुग' और 'पुराण-युग' के नाम से अभिहित होता है। महाभारत के अनुवाद के अतिरिक्त भास्कर रामायणमु, रंगनाथ रामायणमु, हरिवंशमु, उत्तर हरिवंशमु और पल्नाटिवीर चरित्रमु इस युग के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

इन प्रबन्धों के आदर्श थे संस्कृत के महाकाव्य। संस्कृत के लक्षण-ग्रंथों में, प्रबन्ध काव्यों में जो नगर, समुद्र, पर्वत, षड्ऋतु आदि के अष्टादश वर्णन आवश्यक बताये गये

*तेलुगु साहित्य में काव्य तीन प्रकार के माने गए हैं:—१. मिश्रकाव्य या पुराण (Myth) जिसमें काव्य के लक्षण होते हैं किन्तु जिसका ध्येय रस-पोषण नहीं होता, प्रस्तुत इतिवृत्त का मनोरंजक प्रतिपादन करना और तद्वारा धर्म का उपदेश देना होता है। २. विपुल काव्य (Epic) विविध कथा-काव्यों का समावेश इसमें होता है; काव्य शिल्प की ओर कवि की दृष्टि होती है। ३. काव्य-प्रबन्ध (Romance) पुराण या इतिहास प्रसिद्ध अथवा कल्पित ही कोई कथानक इसमें होता है और शृंगार-रस प्रतिपाद्य होता है; घटना वैचित्र्य, चमत्कारपूर्ण शैली और सरस संविधान का योग होता है। क्रमशः उनके उदाहरण हैं - 'भारतमु', 'भागवतमु' और 'कलापूर्णोदयमु'। यहाँ पर प्रबन्ध शब्द का व्यापक अर्थ लेकर उपर्युक्त तीनों प्रकार के काव्यों के लिए उसका प्रयोग किया गया है।

हैं, उनका समावेश तेलुगु-प्रबन्धों में सर्वत्र किया गया है। इन काव्यों के अन्तर्गत प्रकृति-वर्णन के दो रूप मिलते हैं,—एक, ऋतुओं का संश्लिष्ट वर्णन; दो प्रकृति के अन्यान्य दृश्यों, सूर्योदय, सूर्यास्त, चंद्रोदय, इत्यादि का वर्णन। इन काव्यों में बसन्त, शरद् आदि ऋतुओं का जो विस्तृत चित्र यत्र तत्र उपस्थित किया गया है वह औचित्य के अनुसार कथानक की घटनाओं की भूमिका के रूप में हुआ है। इन वर्णनों का प्रयोजन घटना-काल का निर्देशमात्र है और पात्रों के कार्य-व्यापारों को एक विशिष्ट प्रकृति-सन्निवेश की पार्श्व-भूमि में रखकर दिखाना मात्र है जिससे रसोत्कर्ष पुष्ट होता है। इनसे न तो पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य के परिचय में कुछ सहायता मिलती है, न घटनाओं की गति में तीव्रता बढ़ती है। ऐसा ही ऋतु-वर्णन क्रम तेलुगु वाङ्मय में अब तक चल रहा है। हाँ, दृश्यों के उपस्थापन में अवश्य तत्तत्कवि के अनुकूल विपुल वैचित्र्य दिखाई देता है।

हिन्दी के 'पद्मावत' जैसे काव्यों में ऋतुवर्णन की एक विशिष्टता यह है कि शृंगार का उद्दीपन विभाव बनकर षड्ऋतुओं का अनुक्रम वहाँ पर स्थित है और ऋतु-परिवर्तन का पात्र के जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है उसका भी विशद चित्र अंकित हुआ है; 'बारहमासा' का सन्निवेश भी इसी प्रकार का है। तेलुगु साहित्य में षड्ऋतुओं का इस प्रकार का क्रमगत वर्णन कहीं नहीं है; 'बारहमासा' की पद्धति तो दक्षिण की किसी भी भाषा के साहित्य में दृष्टिगत नहीं होती। वियोग-शृंगार के पोषण के अवसर पर भी प्राकृतिक उपादानों के पृथक्-पृथक् चित्र खड़े किये गये हैं; विरहणी नायिका कहीं चन्द्र का उपालंभन करती है, कहीं कोयल को शाप देती है और कहीं मलयानिल के दु:सह स्पर्श से कराह उठती है। संयोग-शृंगार में चांदनी, पुष्प सौरभ इत्यादि वस्तुएँ उद्दीपन बनती हैं।

'पुराणयुग' में षड्ऋतुवर्णन अधिकतर स्वाभावोक्ति पर आधारित हैं। कवि कहीं भी कल्पना की उड़ान नहीं भरता है; उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि की संयोजना नहीं करता है। आखिर उपमा और रूपक अलंकार भी कम देखे जाते हैं। वर्णन बहुत सीधे-सादे, पर अत्यन्त हृदयग्राही होते हैं। इस युग के कवि का ध्येय था, संस्कृत के मूल का सरस एवं यथावत् अनुवाद अपनी जनता के सम्मुख रखना। उसका ध्यान विषय-वस्तु पर ही केन्द्रित रहा। अतः संदर्भ के अनुगुण प्रकृति के कुछ खंडचित्र उपस्थित कर वह कथानक के साथ आगे बढ़ जाता है। न चमत्कार-प्रदर्शन की इच्छा करता है, न चित्र-कविता के निबन्धन के प्रति आकर्षण दिखाता है, न ही प्रकृति-निरीक्षण जन्य उल्लास और तन्मयता अभिव्यक्त करता है। बसन्त का एक दृश्य है:—

"सुरभि भरे लता-सुमनों पर भ्रमर् कुल टूट पड़ता है; भ्रमरगण का मधुरनाद सर्वत्र भर जाता है। आम के पेड़ों के मृदु-पल्लव और सुगन्धित वकुल पुष्प खाकर कोकिल समाज मस्त हो गा रहा है। अशोक, चंपक और किंशुक वृक्ष पुष्प भार से शोभित हैं"।

[नन्नय भट्ट कृत 'भारतमु'—आदिपर्व–११वीं शताब्दी]

"उपवन लताओं से, वे लताएँ सुन्दर अग्रभागों से, वे अग्रभाग गुच्छों से, वे गुच्छे मृदुल किसलयों से, वे किसलय नूतन पुष्पों से, वे पुष्पचर भ्रमरों से, और वे भ्रमर मीठे नाद से बहुत ही शोभायमान हो रहे थे।"

[मंचन कवि कृत 'केयूर बाहु चरित्रमु'—१३वीं शताब्दी]

शरद का दृश्य है:—

जब से शरद काल हुआ है तब से चन्द्रमा नई स्फूर्ति से चमकने लगा है। नदियों में निर्मल जल धाराएँ बह रही हैं। गगन पर बिलकुल मेघ नहीं है। धरती पर कहीं भी कीचड़ नहीं है। सभी दिशाएँ शुभ्र दिखाई देती हैं। कांस प्रफुल्लित हो उठे हैं और जल-बिन्दुओं के उगलने वाले कमल-संघ के साथ सरोवर बहुत मनोहर है।"

[भास्कर कृत 'रामायणमु'—किष्किन्धाकाण्ड —१४वीं शताब्दी]

ऐसी स्वाभाविक उक्तियों के साथ ही कहीं कहीं सरल रूपक संवलित वर्णन भी मिलते हैं; कहीं कहीं ऋतु-परिवर्तन के जनजीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन हुआ है:—

"इन्द्रगोपों तथा बादलों के विविध रंगों से भरे हरियाली के नृत्य रंग पर मोर रूपी नर्तक अपने पंखों को भावस्फूर्ति के साथ उठाकर वर्षाकाल रूपी राजा के सामने नाचने लगे और उनके केकानाद के अन्त में मेघ ने अपना गर्जन रूपी 'आतोद्य' मिलाकर साथ दिया।"

[नन्नेचोड़ कृत 'कुमारसंभावमु'—१२वीं शताब्दी]

ग्रीष्म ऋतु वर्णन में कवियों का ध्यान प्रकृति के वस्तुजाल के विविध रूपों की अपेक्षा गरमी से होनेवाले जनता के कष्टों और दुःखों पर अधिक रहा—

"निदाघ इस प्रकार अपना प्रताप दिखाने लगा कि लोगों का बचना कठिन हो गया; चन्दन-जल के छिड़काव से, मोती के हारों से कमल तुल्य नयनवाली तरुणियों के पीन स्थनों से जो शीतलता मिली, उसी की शरण पाकर बचे; नहीं तो दूसरा क्या शरण्य था?"

[एर्रा प्रेगड कृत 'नृसिंहपुराणमु'—१३वीं शताब्दी]

हेमंत और शिशिर का उल्लेख मात्र कहीं कहीं मिलता है।

चौदहवीं शताब्दी ईस्वी के अंतिम पाद में तेलुगु साहित्य के अंतर्गत द्वितीय युग का प्रादुर्भाव होता है। सन् १३८१ से १६५० ई० तक का यह 'काव्य प्रबन्ध युग' कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस युग के पूर्वार्ध में रेड्डि, नामक और कर्णाटक राजा लोग कवियों को आश्रय देते रहे। अब भी संस्कृत काव्यों और पुराणों के ही तेलुगु में अनुवाद हो रहे थे; किंतु पुराण युग को अपेक्षा इस युग के अनुवादों में विलक्षणता है। तेलुगु काव्य की भाषा-शैली में, शिल्प-विधान में, उद्देश्य में, प्रतिपादन प्रणाली में सर्वत्र यह नवीनता दृष्टिगत होती है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का मेल वैसे तो शुरू से ही हो रहा था; फिर भी इस युग में कवियों ने लंबे-लंबे समासों, अनुप्रासमय पदावलियों और संस्कृत व्याकरण के प्रौढ़ प्रयोगों

से तेलुगु शैली में नूतन गंभीरता उत्पन्न करदी, नवीन उद्भावनाओं और चमत्कारमय उक्तियों से अपने काव्यों को इन्होंने सजाया। वर्णनों में काफी स्वतंत्रता दिखाई। ये अनुवाद केवल अनुवाद न रह कर स्वतंत्र रचनाएँ बन गईं। "भागवतम्" के रचयिता पोतना और "कविसार्वभौम" श्रीनाथ इस समय की विभूतियाँ हैं।

इस युग का उत्तरार्ध आंध्र-साहित्य का अतिवैभवपूर्ण काल रहा। कृष्ण देवराम ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की और आंध्रसाहित्य के मंदिर को भी अपूर्व शोभा और अतुल वैभव से भर दिया। स्वयं महाकवि थे और 'आमुक्तमाल्यदा' नामक प्रौढ़ रचना के कर्ता थे। उनके दरबार के 'अष्टदिग्गज'—आठ महाकवियों ने एक से बढ़कर एक सुन्दर प्रबंध लिखा। भट्टमूर्ति का "वसु चरित्र", पेद्दन का "मनुचरित्र" सूरन का "राघव-पांडवीयमु" (श्लेषकाव्य जिसमें रामायण और महाभारत-दोनों कथानक हैं) आदि इस काल की देन हैं।

इस समय के प्रकृति वर्णनों में उत्प्रेक्षाओं की प्रचुरता है जिनमें कवि-प्रतिभा का प्रदर्शन हुआ है। ये उत्प्रेक्षाएं अधिकतर रूपक और श्लेष पर आधारित हैं। शब्दालंकारों तथा कोमल एवं परुष पदगुंफन रीतियों में चमत्कार का आधान हुआ है। इन दो-ढाई शताब्दियों के विपुल साहित्य में प्रकृति के स्वभावोक्ति मूलक स्वरूप-आधायक चित्र बहुत कम मिलते हैं। षड् ऋतुओं के वर्णन में शृंगार-विलास का दृश्य अंकित हुआ है और कवियों ने प्रकृति की वस्तुओं में नारी-रमणीयता की ही छटा अधिक देखी है।

वसंत—

"मधुमास के दिन आए तो कामिनीजनों के गंडूष (कुल्ला) किए हुए मधु की धारा से उपवन भूमियाँ पुलकित हो उठीं। कोकिल किसलयों को खाकर पंचमस्वर में संगीत करने लगा। प्रफुल्ल पुष्प गुच्छों पर भ्रमरी मंडराने लगी। खूब पके आम्र फल का रसास्वादन कर कीर मस्त हो कुछ बोलने लगा। विट-विटी समुदाय उमंग से भरे उपवनों में विविध क्रीडाएँ करने लगा। सभी लोगों को इस समय बड़ा सुख मिला।"

[श्रीनाथ कृत 'शिवरात्रि माहात्म्यमु'—१४वीं शताब्दी]

"झड़े पत्तों के मिस (वनलक्ष्मी का) वस्त्र शिथिल हो गया था। उसके शरीर में कलियों के मिस पुलक भर आई थी। सुगंधित पुष्प मालाएँ (माधव ने) उसे पहनाईं। और अनंत मधु-पान से उसे मस्त कर दिया। अलियों का झंकार रणित हो रहा था। वनलक्ष्मी के फल रूपी स्तन थे और उसका लता-शरीर बल खा जाता था जिसका माधव ने आलिंगन किया। शुकों की मधुर बोल थे और मकरंद रूपी कस्तूरी रज बिखरे। वसंत वनलक्ष्मी के संग अनुराग में डूबा।"

[वेंकटनाथ कृत 'पंच तंत्रमु'—१५ वीं शताब्दी]

निम्न उदाहरण में वसंत ऋतु में वर्षा का रूपक हुआ है:—

'गगन तल में उड़ने वाली शुक-पंक्तियाँ इंद्र-धनुषी आभा उत्पन्न कर रही थीं। पुष्प-मधु के पान से मत्त मधुकरों के गुंजार गर्जन से थे। झुंडों में बढ़े हुए तमाल वृक्षों

मेघों के दृश्य उपस्थित कर रहे थे। फूलों की मधु-धारा बहती हुई वर्षा का रूप ले रही थी। उपवनों में क्रीडा करने वाली तरुणियाँ मानों विद्युतें थीं। यों वसंत मे ही वर्षा ऋतु का दृश्य उपस्थित हो गया।"

[तेलगनार्य कृत 'ययातिचरित्रमु'—१६वीं शताब्दी]

इसी प्रकार किसी कवि ने पवन रूपी दुश्शासन के द्वारा वनदेवी का पत्र रूपी वस्त्र हरवाया है और फिर माधव (वसंत और कृष्ण) के द्वारा अनंत पल्लव वस्त्रों का दान कराया है।

श्लेष-चमत्कार का एक सुंदर नमूना यह है:—

"भूज संघ (मनुष्य संघ, वृक्ष संघ) यद्यपि विटपालि (जार लोगों, नये पल्लवों) से मिला हुआ है। वह बहुपलाश (खूब मांस खाने वाला, बहुत टेसू फूलों से युक्त) हो गया है, तथापि सुमनों (सज्जनों, पुष्पों) पर प्रभुता कर सका। माधव (विष्णु, वसंत) की सेवा कब विफल हो सकती है?"

[वेंकटाचार्य कृत "चमत्कारमंजरी"— १७वीं शताब्दी]

शरद—

"गगन पर के सफ़ेद बादलों पर संध्या का राग अभी पड़ने लगा; वन में सकुल रूप में उड़ने वाले शुक समुह के बीच में वे बादल ऐसे दिखाई देते थे मानों हरे पत्तों से युक्त "कर्करिकावन" वन हो जिस में खूब फल लगे हों और भ्रमरों के पंखों में उड़ते समय उनकी आभा झलक जाती हो।"

[कृष्णदेवराय कृत "आमुक्तमाल्यदा"—१६वीं शताब्दी]

वर्षा—

"मेघ ने पहले समुद्र जल के साथ बड़वाग्नि को भी पी लिया था जो अब—वर्षा ऋतु में बिजली बन चमक रही है। मेघ ने अपने गर्जन से ब्रह्मांड में छेद कर दिया है और ब्रह्मांड के बाहर जो महाजल राशि उसे घेरे हुए रहती है, वह उस छेद के द्वारा बहने लगी है जो अब वर्षा-धारा हो गयी है। ओले जो गिर रहे हैं वे प्रभंजन के संघट्टन से टूटे हुए तारे हैं। घनजाल ने घनघोर वर्षा की तो भूमि और नभ के अंतराल में अंधकार छा गया और सभी लोक जल मय हो गये।"

[सूरन कृत "कलापूर्णोदयमु"—१६वीं शताब्दी]

ग्रीष्म—

"ग्रीष्म की गरमी से झरनों की धाराएँ सूख चलीं तो बड़ी चट्टानों पर उगी हुई काई में दरारें पड़ी दिखाई दीं। खेतों की भूमि चिर गई। वात्याचक्र चल रहे हैं और उन से उड़े पत्तों को कबूतर समझ कर बाज उन पर झपटते हैं। पेड़ों की छाया में सोकर अजगर हिलने लगते हैं जिससे मिट्टीपर धारें पड़ती हैं। जहाँ-तहाँ मृग मरीचिकाओं के दृश्य उठे

हैं। दिशाएँ सफेद हो ऐसी लगती हैं मानों दिक्पालकों के वस्त्र सुखाने के लिए धोबी के घाट हों।"

[धूर्जटि कृत "काल हस्ती माहात्म्यमु"—१६वीं शताब्दी]

दक्षिण प्रांतों में हेमंत और शिशिर का वैसा प्रकोप नहीं होता जैसा उत्तर भारत में होता है। अत: यद्यपि कवि लोग जाड़े का साधारण-सा वर्णन उपस्थित करते हैं, तो भी हेमंत और शिशिर के मध्य उतना भेद नहीं करते हैं। जाड़े में लोक-जीवन किस भांति कम होता है—इसका चमत्कार पूर्ण वर्णन कवियों ने किया है।

"उदयाचल पर उदय होने के समय से ही सर्दी लग जाने से सूर्य शीघ्र पश्चिमाचल में जाकर छिप जाना चाहता है।"

[पोतन्ना कृत 'भागवतम्'—१४वीं शताब्दी]

"लोग जाड़े की विपदा से बहुत पीड़ित हुए। किन्तु युवतियों के स्तन-तटों में आश्रय पाकर बच गए। नहीं तो क्या ब्रह्मादि देवता भी इस विपदा से बच सकते थे [वही]?"

हेमंत के स्वरूप का एक सुन्दर वर्णन है:—

"हेमंत ऋतु में काफी बरफ पड़ने लगी; धरती पर मानों संगमरमर के पत्थर बिछ गए हों। गगन का यह दृश्य था मानों क्षीर-समुद्र उमड़कर वहाँ पर फैल गया हो। संसार के वस्तु-जाल पर सफेदी का यह विस्तार था मानों हरि की कीर्ति सर्वत्र प्रकट हो गई हो। दिशाओं पर मानों पर्दे गिरे थे। सभी पर्वत हिमाचल बन गए। सभी वृक्ष घनसार बन गए। सभी विहंगम राजहंस बन गए।"

[सिंगन कृत पद्म पुराण—१५वीं शताब्दी]

सन् १६५१ ई० से १८०० ई० तक का समय तेलुगु साहित्य का मध्ययुग माना गया है। एक सौ वर्ष पूर्व तक विजय नगर साम्राज्य का विनाश हो चुका था। इस युग में सुदूर दक्षिण में तंजौर के आस-पास विजय नगर के राजकुल के लोगों ने एक नया राज्य स्थापित किया। इधर बहमनी के राज्य भग्नावशेषों से गोलकुंडा बिजापुर आदि छोटे राज्य निकले। अंग्रेजों का आगमन यहाँ हो चुका था; और इन छोटे-मोटे राज्यों में परस्पर कलह बढ़ रहे थे। देश की इस अस्त-व्यस्त परिस्थिति में तेलुगु साहित्य कोई उतना उत्कृष्ट निर्माण नहीं कर पाया। इस युग में गद्य, नाटक आदि रचनाओं के साथ कुछ प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये। प्रबन्धों में शृंगार की अधिकता है जो स्थान पर अश्लीलता की सीमा तक पहुँच जाता है।

काव्य रीतियों की दृष्टि से इस युग में कोई नवीनता नहीं प्राप्त होती है। तिम्मकवि, लक्ष्मणकवि इत्यादि ने पुरानी काव्य शैली का ही अनुकरण किया है; ऋतु वर्णनों में भी केवल परिपाटी का पालन किया है। उनमें न तो आदियुग के समान स्वभावोक्ति मूलक और स्वरूपाधायक चित्र मिलते हैं; न प्रबंध युग के समान चमत्कार और वक्रोक्ति प्रधान शिल्प-नैपुण्य दृष्टिगत होता है। रूपक और उत्प्रेक्षा के विधान में कल्पना का बड़ा हाथ रहा है और चित्रों में बिंबग्राहिता कम है।

जैसे निम्नलिखित वसंत का यह वर्णन :—

"यह वसंत भी क्या है। मन्मथ ही अपने दल बल के संग विरहियों की चित्त-वृत्तियों को अभिभूत करने के लिए आया है। उसने पहले ही अरुण-प्रवालों के प्रहार से शिशिर को मार भगा दिया। अब देखिए, वसंत का वैभव सर्वत्र विद्यमान है; पद्मराग स्वर्ण आदि की कांति हरकती उज्ज्वल हो रही है; ये लाल लाल पल्लव वसंत की प्रतापाग्नि की शिखाएँ हैं या गगन से अबीर और कुंकुम की वर्षा बरस रही है; अथवा विरहियों की रक्त-धाराएँ बह रही हैं।"

[सूरकवि कृत 'कविजन रंजनमु'—१८वीं शताब्दी]

अन्य एक कवि ने वसंत में वनलक्ष्मी की प्रथम "ऋतुमती" होने की बात कही है। शारदीय प्रकृति में काँस के क्षीमवस्त्रवाली, कमलनयना, पद्मस्तनी, सैकतनितंता और चन्द्रमुखी रमणीमणि के दर्शन किसी ने किये हैं। एक अन्य कवि को वर्षा के दृश्य में तोपों का युद्ध होता हुआ दृष्टिगत होता है।

सन् १८०१ से १९०० ई० तक का समय तेलुगु-साहित्य के इतिहास में 'सन्धि युग' माना गया है जिसमें प्राचीन रीतियों का पिष्टपेषण तथा नूतन सरणियों का नवागम हुआ। उपन्यास, कहानी, नाटक, समालोचना आदि गद्य-शैलियों का हाथ ही ऊँचा रहा।

बीसवीं सदी ई० से पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव तेलुगु साहित्य पर पड़ने लगा। अंग्रेजी के 'रोमांटिक' कवियों की अनुकरण पर 'भाव-कविता' की धारा बही। यह 'भावकविता' या 'भाववाद' की प्रवृत्ति हिन्दी की 'छायावादी' प्रवृत्ति की सी है जिसने छन्द, अभिव्यंजना, काव्य-रीति—सभी क्षेत्रों में प्राचीनता को छोड़कर नये पंथ का अनुमान किया। प्रकृति का मानवी भावानुभूति युक्त वर्णन, प्रकृति के प्रतीकों के द्वारा मानव जीवन की अभिव्यक्ति इत्यादि के होने पर भी षड्ऋतु वर्णन का कोई स्थूल और सर्वांगीण रूप साहित्य में नहीं मिलता। जिन प्राचीन पद्धति के नये प्रबंधों में इसका समावेश हुआ है वहाँ पर प्राचीनता से कोई उल्लेखनीय वैलक्षण्य नहीं दृष्टिगत होता है। हाँ, आधुनिक युग के महाकवि वि. सत्यनारायण ने 'ऋतुसंहारमु' नामक एक मुक्तक काव्य का प्रणयन किया है। यह कालिदास के संस्कृत 'ऋतुसंहार' का अनुवाद या अनुकरण नहीं है, किन्तु स्वतंत्र कृति है। कवि का प्रकृतिनिरीक्षण बड़ा हीं सूक्ष्म और तत्वग्राही है; अतः वसंत आदि के वर्णन में केवल परंपराभुक्त सुखमयता ही देखकर उस समय में होने वाली कुछ असुविधाओं का भी यथार्थवादी निर्देश करता है।

"अलकों में भी प्रस्वेद भर देती है गरमी जहाँ पर चंदन लेप के लिए स्थान नहीं है। प्रेयसी के वक्षालिंगन से भी उमस बढ़ती है जहाँ पर भावों को मिलाने का माधुर्य नहीं रहता। छोटे गहने भी खटखते हैं जहाँ मंदानिल के प्रवेश के लिए स्थान नहीं है। प्राण भी गरमी से तपते हैं जहाँ पर मद्य का कुछ प्रभाव नहीं हो सकता।

कामिनी- कामुक गण भी वसंत में होने वाले कुछ असुखों से परेशान हो सूर्य के बाह्य ताप और मनोज के अंतः ताप से बहुत दुखी हुए ।"

आंध्रप्रदेश के वसंत के वातावरण का यह बिलकुल यथातथ्य चित्र है।

ग्रीष्म का भीषण रूप है :—

"बवंडर धूलि उड़ाता हुआ ऐसा उठ चला मानों आकाश भूमि अग्नि-संदेश परस्पर भेज रहे हों। सूखे पत्ते यों उठे मानों ग्रीष्मानिल अपने हजारों पंखों को फड़ फड़ाकर उड़ रहा हो। धरती पर ऐसी दरारें पड़ीं मानों धूप के वेग से अपना मुँह खोल रहा हो। नहरों का जल सूखा और झील के अन्दर की धरती ऊँची उठ आई है; मानों उधार लेकर वैभव करने के उपरांत धीमा पड़ा हुआ प्रकाश हो। नए शिरीष पग ऐसे कुम्हला गए मानों आर्द्रमति वाले का प्राण हो। पंख नहीं उड़ा सकने वाले पक्षियों की भाँति ग्रीष्म का आतप पलटा खाने लगा।"

छहों ऋतुओं के ऐसे सुन्दर, संश्लिष्ट, रसमय कई चित्र कवि ने अंकित किए हैं। आंध्रप्रदेश की जनता का जीवन-चित्र ही इसमें अंकित हुआ है। अलंकार भाषा-शैली तेलुगु मुहावरे इत्यादि का बड़ा ही स्वाभाविक और उचित प्रयोग इसमें हुआ है। प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी ऐसा ग्रंथ शायद पूरे तेलुगु साहित्य का यही एक अकेला है। अब कवियों का ध्यान प्रकृति के वर्णन में केवल रूढ़ि-ग्रस्त नहीं है; वह स्वतंत्र निरीक्षण स्वानुभूति और सहज अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख हुआ है।

टिप्पणी—१

ब्रजलोक साहित्य में मंगलकाव्य

[मंगलकाव्यों की भारतीय साहित्य की परंपरा का परिचय 'भारतीय साहित्य' वर्ष १ के पहले और दूसरे अंकों में दिया गया था, भारतीय लोक में भी मंगलकाव्यों का प्रचार है। वहाँ ये मंगल भी कहे जाते हैं और 'व्याहुले' भी। यहाँ मंगल और व्याहुले दोनों दिये जा रहे हैं। व्याहुले विवाहों के अवसर पर निम्न तथा उच्च वर्णों में गाये जाते हैं—निम्न वर्णों में व्याहुले बहुत व्यवस्थित होते हैं। समस्त अनुष्ठान व्याहुले के अनुसार चलता है।]

१. पार्वती मंगल
२. रुक्मिणी मंगल
३. सीता व्याहुलौ [चमारों का]
४. सीता व्याहुलौ [उच्च वर्णों का]

'गंगा जी कौ व्याहु' और गाया जाता है। वह अभी संकलित नहीं हुआ है।

पार्वती मंगल

१. तुही सीता तुही सती तुही गायत्री सकती रानी
चारों वेदन में परगट भई मैया, रटिरे पंडित ज्ञानी।
आउर्बुदि परगट हो मैया गुरुगन्नेस मनाइ,
पार्वती व्याहु, राम की चर्चा, हरि-जस कहूँ बनाइ।

२. सकल मितिरी जुरे गवरि के मंडप छाये,
विसकरमा सुत ढार काटि कंचन लगवाये।
सोरन खंभ लगें मड़हे में रेसम बींछे बान,
आई लहर मोरि गये अम्मा छाये नागर पान।

३. महादेव नें कही सुरसुती हाल बुलाई,
जलपोती लई हात बीच फुलवारि लगाई।

तोता मुहर धरे कागद में घन्नि सुरुसती माइ,
सोरन मोहर दिपै सिम्भू पै पदमु भमारै पाइ।
कहै चन्द्रावली।

४. करिकें पेखनौ चल्यौ नाथ बांबीपै आयौ
पढ़ि पढ़ि सरसों मारि कालिया नागु जगायौ
कछू बैल में भरि लए, कछू अंग लये लिपटाय
करिकें पेखनौ चल दिये, हेमंचल के द्वार।

५. करिकें पेखनौ चले द्वार कुम्हरा के आये
कुम्हरिन उठी रिस्याय पेंड़ द्वैचारि हटाए।
चकरेटी पालें परी द्वै की दैगई चारि
अब कहा रूठे जात गुसाँई न्या तिहारी सुसरारि?

६. बैल नांदिया कही सुनै रघुनाथ गुसांईं
धीआ बाती भली आजु कुम्हरा घर खाईं।
ना तेरे ओटूँ टए-टोपरे, ना तेरी धरूँ पलान
चेटक एक देइ बाबाजी, कुम्हरिया ऐ करै वेरान।

७. बुह जोगी औधूत जाइ लखि लागै हाँसी
आक धतूरे भखै, घुमै जैसे मैंगल हाथी।
जाइ बिराज्यौ खेत में बुअ जोगी औधूत
बहमाता जूरी दई, गौरी ऐ लीजौं पूछि।

८. उमहि नगर कौ लोगु सबै दरसन कूँ आयौ
सुनिरे जोगी बात बराती चौंना लायौ।
मचलि बरात रही घर अपने, गये गुसांई रूठि
बहमाता जोरी दई, गौरा ऐ लीजों पूछि।

९. चाएँ मानौ चाएँ मति मानौ
बरना हमकूँ भी पहँचानौ
मेरौ होइगौ गवरि संग व्याहु रे।
बुढ़रा कहैत समं नांइ आई
तैनें गौरा भली लजाई
गौरा तुम लाइक हति नांइ रे।

बिछि रही बांथ बर मृग छाला
गल में रुंड मुंड की ऐ माला
बरना मोई ऐ पहचानौ रे।
१०. दुल्हा खेत में पिटै, परैं दीमन की झोरी
तीनि लोक के नाथ गवरि कूआ में गेरी।
निकुमरि कन्या, चिकुमरि बालकु बरु ढूँड्यौ पिया और
अबई कंत कछू नांइ बिगर्‌यौ फेरि द्वार ते मोरु
११. बनखड़ पहुँच्यौ जाइ मोरि मुख लौंहु बजायौ
ऐसो फूँक्यौ नाँदु, नादु तीन्यौ लोक सुनायौ।
खबरि परी तीन्यों लोक में देव जुरे सबु आइ
सबै सैम्बर जुरि गयौ, सुक्कुर सनीचर साथ।
१२. न्यांते ठाकुर चलि दये चल तन लगी अवार
न्यांते तौ म्वां जूं गये पहुँचि गये दरबार
पहुँचि गये दरबार मिति एकै ठहराई
तीनि लोक के नाथ सिपैह सबु जुरि आई।
आइ सनमख ठाड़े भये, तीनि लोक के राय।
हाथ जोरि बिनती भई खुसी भये रघुराय।
१३. न्यौते राजा चल्यौ पास ठाकुर के आयौ
तीनि लोक के नाथ पार तेरौ ना पायौ।
बार-बार तुमते कहूं मैं बचन कहूँ समझाय।
मेरी खबरि लीजियौं स्वामी सरन गहे की लाज।
१४. न्यांते लाला चले पास मारिग में आए
मढ़ए दए बैठारि फेरि वे पत्तरि लाए।
कोंटे पै कोंटे चलें झाइनि लई निकारि
मन में राजा छोंआ है गयौ दीये महल बताय।*
१५. एक कोठे में धँसे गुहू कोठौ सबु झार्‌यौ।
दूजे कोठे में धँसे गुहू कोठौ सबु झार्‌यौ।
तीजे कोठे में धँसे गुहू कोठौ सबु झार्‌यौ।
चौथे कोठे में धँसे गुहू कोठौ सबु झार्‌यौ।

*शुक्र शनिश्चर कुँवर कलेऊ के लिए गये।

सबु कोठे लए झारि कें (गुननें) लीये चना सम्हारि ।
न्यांते लाला चलि दए पहुँचे किश्न पै जाइ ।
१६. सबु कोठे भरि गये, जीमनौ मेरौ नाँएँ
तीनि लोक के नाथ औरु कोई मेरौ नाँएँ ।
बारबार तुमते कहूँ बचनु कहूँ समझाइ ।
मेरी लज्जा राखौ स्वामी सरन गहे की लाज ।
१७. सबु भैया लए बुलाइ, मिंति एकै ठहराई
तीनि लोक के नाथ करी मेरी लोक हँसाई ।
हेमंचल को चौंतरा मतौ कियौ ठहराइ
ऐसी मिंति करौ मेरे भैया, सबै सर्म रहि जाइ ।
१८. दोऊ कर बांधे हाथ किश्न के जोरें आए
तीनि लोक के नाथ पार तेरे न पाए ।
काऊ ढब लज्जा राखि लेउ, बचूँ न अबकें आइ
तीनि लोक के नाथ अन्तर्जामी लीजों मोइ उबारि ।
१९. चुकटी दीनी मारि, फेरि परसाद बढ़ाए
न्यांते राजा चले आपने महलन आये ।
देखतु महलनु आइकें सबु कोठे भरि जांइ
मन में राजा खुसी भयौ ऐ, धन्नि किश्न भगवान ।
२०. पंडितु लीनो बोलि फेरि मड़हे पै आए
चौक दिये पुरवाइ फेरि वानें समद मगाए
सगु भैया लिये बुलाइकें सखियां लईं बुलाइ
मंगलचार म्वाँ है रहे, महादेव को व्याहु ।
२१. नाऊ दियौ खँदाइ पास करता के आयौ
सुनि लेउ स्वामी बात पास में तिहारे आयौ ।
बारबार तुमते कहूँ बचनु कहूँ समझाइ
भामरि अपनी लै लेउ स्वामी चलौ हमारें साथ ।
२२. न्यांते करता चले, सवन कूँ हुकम चढ़ाए
मौहर दयौ बँधवाइ, फेरिवे म्वांते आए ।
माढ़ए तरवें पहुँचि गये, मतौ कियौ ठहराइ ।
जाइकें सिम्भू बैठि गये, है रहे मंगलचार ।

२३. धरि सिम्भू पै मौहरु धरी गौरा पै मौहरी
तीनि लोक के नाथ, सरनि लै लई मैं तेरी
गौरा की भामरि परें, अचरजु कह्यौ न जाइ
तीनि लोक के कर्तमकर्ता दीने सवय सुनाइ।
२४. गौरा लीनी व्याहि गर्द-नीसान घुराए
थैलीन के मुँह खोलि दरव म्वां खूबु लुटाये।
मोहर रुपैया को गनै खरचे हीरा लाल
इतनी दरब लुटाइ खेत में बंधी मेंड़-मरजाद।
२५. राजा सोबौ देइ कसै हाथी अम्मारी।
ऊंटन की लंगारि और घोड़ा असवारी
राजा सोबौ देंतु ऐ देंत न लाए हार
गोवरहारी दई सरनि में लैजाओ संग लिवाइ।
२६. सोलह सै सहस नाम हरिके कहँत में सुख पाइयै
कहै 'प्रभुदास' प्रभु के रहसि मंगल गाइयै।

रुकमणि मंगल

१. सीता गई समाइ लच्छि म्वां झुलमन लागे
दरसन पाए नांइ, करम के बड़े अभागे।
डीक फोरि कें लछिमन रोएँ, भेटे कंठ लगाइ।
आपुन जाइ पताले बैठी केस रहे फौराइ।
२. सीता गई समाई, जनमु भीखम घर लीयौ
धरती धर्यो न पांउ नाम रुकिमिनि धरि दीयौ
ऐसी बेटी मैं जनूँ ऐसी जनें न कोइ
घरते निकरि अँगन भई ठाड़ी सूर्ज की सी लोई।
३. मानसरोवरि ताल रुकमिनी न्हमन सँजोयौ।
बरियौ पहुँच्यौ आइ राम मेरौ कियौ बिगोयौ
संग सहेलेन्यौं कहें सब जंगल दीसै सेत
पकरि बाँह रथ में धरि लेगौ कहाँ सुखावै केस।
४. संग सहेली जुरी बैठि रुकिमिनि समझाई
खर्यौ तिहारो बिरनु ब्वाइ चौंन देउ खँदाई।
कै आवै नांहीं करै मेरे मन की धोखौ जाइ
गुपत संदेसौ भेजि रुकमिनी, लीजौ ऊवरि मंडाई।

५. घर-घर रुकिमिनि फिरै बीर में जू डोलूँ बौरी
सबरौ कुटमु जरि जाइ लगी मेरी हरते डोरो।
ऐसौ धापी ना मिलै नेंक द्वारा मति कूँ जाई
अपनी कहै उनें समझावै लावै संग लिवाइ।
६. न्यांते रुकिमिनि चली महल माधौ के आई
मेरी सुनिरे माधौ पिता सरनि गहि तेरे आई।
धीअ तेरे जिजमान की, तीइ पै राखूं मानु
तूतौ पाती लैजा माधौ द्वारा मति कूँ काउ।
७. बेटी नांइ आयौ न गयौ द्वारिका में ना देखी
तीनि लोक के नाथ फसीना उनते डोरी।
बार-बार तोतें कहूँ बचनु कहूँ समझाइ
कैसे पाती लै जाऊं भैना नित लाऊ नित खांउ
८. काका ऐसौ उठ्यौ रिस्याइ, तोइ का सेंति खँदाऊं
कर कौ कांकनु देंउ, पाछें तेरौ कुनबा ज्याऊं।
पांच लाल खाइबे कूँ दुंगी, पाती दुंगी हात
सवा लाख कौ कांकनु दुंगी, पहरि पंड्याइनि नारि।
९. काका कछु पातीं में लिखूं कछू मौखादी कीजै
मैं उनके विसवास सरनि उनकी लै लीजै।
बार बार तोते कहूँ बचन कहूँ समझाइ
तूतौ पाती लैजा माधौ बेगि द्वारिका जाइ
१०. काका नांइ मरद कौ अंसु कह्यो तिरिया कौ मान्यौ
लालच बींध्यौ विरफ़ दोसरौ कांकनु मांग्यौ।
बार बार तोते कहूँ बचनु कहूँ समझाइ
दोऊँ काँकन लैजा माधौ वेगि द्वारिका जाइ।
११. पाती लैकें चल्यौ गाम ते बाहिर आयौ
चल्यौ पेंड़ द्वै चारि पेडु पंसेंदू पायौ।
पोखरि पारि पसेंदुआ माधौ सोइगौ पाम पसारि
जिअ पाती रुकिमिनि ने भेजी, लीजौ किस्न मुरारि।
१२. माधौ दगा मोइ दै गयौ
काका दगा मोइ दै गयो

मैंने तौ पठ्यो माधौ द्वारिका,
अब सोयौ पोखरि की पारि ।माधौ०
जौ मैं ऐसी जानती,
देंती न दरब लुटाइ ।माधौ०

१३. रुकमिनि भमति विरोग गैल में माधौ सोयौ
नारद रथु लै जाउ, भालु रुकिमिनि कौ खोयौ।
नारद रथु लै जाइऐ हरि खिचि कें करी मुरालि
द्वारामति के फूलबाग में औधौं अइयौं स्वाइ।

१४. [घरत पामु पैजनी पै रथु उड़िगौ पंचास कोस
जौजूँ माधौ त्रिराम्मनु बैठ्यौ न ठहराइ कें।
द्वारामति के फूल बाग में औधौ अइयों स्वाइकें]
उठिकें बैठ्यो भयौं करे ब्वानें मनि पछिताए।
ऐसौ बरियौ कौन म्वांने मोइ न्यां लै आए।
आजु मेरी ब्राम्मनि रोइ मरैगी
जानें कौन की सरनि गहैगी
रुकमिनि तैनें बादर फारे
मेरे घरते व्रिम्मा तारे
करता नें बदन दुराए
माधौ के जौरें आए
सुनि लीजौ अरजी मेरी
मैंनें सरनि लई ऐ तेरी
म्वां असुरन की भीर घनेरी
म्वां डरपै बरनी तेरी
बन्दूक धड़ाधड़ बाजै
बम्मन में डंका गाजै।
आजु कहाँ छिपे गुफा में जाई
आजु मेरी खबरि लेउ जादों राई।
असुरन पैते लेउ बचाई।

१५. छीपी बसें सुनार, पौरि पै बतियाँ न्यारे
कोरी बसें चमार, किनक के छबे उसारे।

बेबस हेरे बसत ऐं, विन के अटा अगास।
माधौ नें द्वारामति देखौ सिरीकिस्न के साथ।
१६. महल बने नौरंग रंग विच मारै झाँई
नचैं पातुरा द्वार किस्न घर बजै बधाई।
कुबिजा तौ चंदन घिसै धरै किस्न के हाथ
माधौ नें पाती दई सिरीकिस्न के हाथ।
१७. सोरे जल करवाइ और ताते धरवाए
चंदन चौकी डारि विरफ म्वाँ उघटि न्हवाए।
छत्तीसौ भोजन किए परसे चरन अधाइ
जैमें विरफ जिमावै नारद दोऊ कर ढारै व्यारि

गाली

१८. तुम रा कहांते आये बार बाम्हन, तुमर कहांते आये।
तिहारी मैया नें तुमई जाए, बड़ बड़े पेट वढ़ाये।
पुरु सौ पेटु, सूपसी ऐ डाढ़ी उरझत सुरझत आए।
तिहाही भैना नें दिवला जोर्‌यौ ब्वाके उजीतै में आए।
आक कीले ढाक ढ़कीले, उरझत सुरझत आये।
१९. भोजन दिये जिमाइ बिदा बाम्हन की कीनी
मन रथ दिये सजवाइ नारि की माला दीनी।
न्यों जाइ कहियौं कुमरिते मन राखै प्रीति लगाइ
हम दल आमें साजि सामरे, तौजूँ पूजै अंबिका माइ।
२०. आमतु देख्यौ विरफु रोसु करि रुकिमिनि धाई
काका, कहौ कुसर के बैन धीम्र तेरी रोमति आई।
बारबार तोते कहूँ बचन कहूँ समझाइ
बे दल आमें साजि सामरे, तौजूँ पूजौ अम्बिका माइ।
२१. फूफी चोटी गुहै, रहसि कें मंगल गावै
पूजै पनही मौरु, कुटमु परिवार बुलावै।
चुनि चुनि पहरैं कापड़े, दुलहा पै बाँध्यौ मौरु
हाथी के हौदा चढ़े ढुरे किश्न पै चौरु।

२२. कोई चढ़यौ सुखपाल कोई हाती अम्मारी
ऊँटन की लंगारि और घोड़ा असवारी।
आपुनि दूल्हे वनि गए तीनि लोक के राइ
नवल वरात सजाइ सामरौ कुंडल पुर कूँ जाइ।
२३. के सौरे की चारि नगर परिकम्मा दीनी
लिकरी खेत बरात, फूल खसबोई लीनी।
के सौरो बरना बन्यौ, मुख में वन्यौ तमोलु
घर ते निकरि खेत भयौ ठाड़ौ, बाज्यौ जंगी ढोलु।
२४. हांकि दिए गजराज बाजि असमान उड़ाए।
ताजी चलें तुरिंग खेत कुंडिलपुर आए।
घरी कोस सांड़िनि चलै रथ राखौ ऐकई ओर
दल ते पहलें चलें पखेरु, दल के चार्यौ ओर।
कृष्ण व्याहन कूँ आए।
२५. मकरधज्ज नें कहौ सुनै ससिपाल पिरानी
बड़ी कठिन की चोट मिलैगी रुकिमिनि रानी।
ब्रिजवारे की मांग ऐ, तेरी क्या उनमानि
आँधी मेहु जाइ मति जानै, ऊपरि छई बरात।
२६. तीनि लोक के नाथ पार तेरौ ना पायौ
जोइ जोइ जोधा सज्यौ सोई कुंडिलपुर आयौ।
अटत बराती लीदि में अचिरजु कहयौ न जाइ।
करि करि मुंह ऊपर कूँ देखें अचिरजु कहयौ न जाइ।

गारी

२७. तैंने गरब कियौ बजमारे, मेरे हरिजते पहिलें आयौ।
अब माढ़ में मूँड़ु मजा मारतु औ कौरु भातु नाइ खायौ।
व्याहन कहँ तो वो हरिकी रुकिमिनि बांधि सेहरौ आयौ।
दस हज्जार की भीर सजी ऐ अब तैंनें नेंक खौपु नाउ खायौ।
२८. सात सहेलिन बीच रूकिमिनी रोमति आई।
मिलिलै री मेरी मातु मैं तौ तेरी कोखि की जाई।
कछू मिली कछू मिलन न पाई, नारद झपटी आइ
तीनि लोक के कर्तम स्याली रथ लीनी बैठारि।

२९. बे जगुला बगुला नहीं, बे सारे मुसरारि,
छोड़ौ मुसक मेरे बीर की।
को तुमें हुक्का देइगौ, को धरै चिलम पै ग्रांच,
छोड़ौ मुसक मेरे बीर की।
तुम सामन में जाउगे, हम जांगे हरियाली तीज,
छोड़ौ मुसक मेरे बीर की।

३०. रूकमैया नें कही सुनौ मेरे छत्तुरधारी
लिकर्‌यौ जाति कमीनु हमरी बात बिगारी।
ग्रबऊ सोचि कछू नांइ बिगर्‌यौ, रुकिमिनि लांउ न छिड़ाइ
बु गाइन को ग्वारिया, देखत ई रहि जाइ।

३१. जोधा छूटे साठि क्रोधु करि मन में भारी
इति ठाकुर घनस्याम, जु जप ग्वां बीते भारी।
कटि-कटि सीस गिरें धरनी पै रूंड करै तरवारि।
तीन लोक के कर्तमकर्ता पेस एक न जाइ।

३२. मति क्वारी लै चलै मती मेरौ नामु धरावै
डारि भमरिया डारि रुक्मपुर नयौ बसावै।
द्वापर ग्रौरु तिरेता में सबु कोई जनियौं धीग्र
क्वारीन कूं बे खेंचि लै जांइ सुनि करता जगदीस।

३३. धारि कान्हा पै मौरु धरी रुकिमिनि पै मौरी
तीनि लोक के नाथ गाँठि ग्ररजुन नें जोरी।
रुकिमिनि की भामरि परें कान्हा के संजोग
जो बैठ्यो जो गहवारे ग्रायौ राउ भीकम कौ लोगु।
हरीगुन गाइए।

३४. सोलह सै सहस नाम हरि के कहँत में सुख पाइए
कहें प्रभुदास प्रभु के रहसि मंगल गाइये
छायौ ऐ रे छायौ ऐ,
विन धरती विरछु कहां छायौ ऐ।
पहलें फूलु ग्रगिनि कौ ग्रायौ
जापै फलु इमिरत कौ ग्रायौ ऐ। विन धरती०

हाथ ते छियो न मुखते चाख्यो
जामें स्वादु अनेक बतायो ऐ। विन धरती०
कहें कबीर, सुनो भाई साधो
गुरु नेंकसे नें गायो ऐ। विन धरती०

सीताव्याहुलौ

[चमारों के विवाहों के अवसरों पर यह गाया जाता है

१. तुही मुकुति की खानि बैठि देवनु जसु तेरौ गायो ऐ
ब्रह्मानें रचना रची, बैठि माल खंडे ने अटलु पदु पायो ऐ।
मेरी धन्नि सारदा माई
मैंनें पिरथम तुही मनाई
करि हुकमु सभा जुरि आई
सूए चोलने वारी
सुधि लै लै मातु हमारी
माता में बालकु अज्ञानी
दै जानिक बुदि भमानी
तेरे हात गजा तिरसूल ऐ
मांगन में भर्यो सिंदूर ऐ
तू नगर कोट ते आवै
नैंक भूले ज्ञान बतावै
तोइ सुमिरि, हम सबरे गामें
अब तेरो ऊ ध्यानु धरंता
रे घट बैठि मिटै सबु चिंता।

२. राजा अपने नाम जनकपुर गाम बसायो
सिया लियो औतार पिता को नामु चलायो
चार्यो कौन भमन के लीयें, चौदा दियो सम्हारि
इतते बानु उठाइ कुमरिनें धर्यो एकई हात।
अन्त रघुवंसी आए।

३. भई रसोई त्यारु जनकु जैमे कूँ आयो
अपुकूँ मूढ़ा डारि पती कूँ पलंगु नवायो

राति कूं बात कहा कहूँ बलमा, अचिरजु मेरे हात
इतते वानु उठाइ कुमरि नें धर्यौ एक ही हात
अन्त रघुवंसी आए ।

४. बलमा जिअ सपने की नांइ, जिऐ मेरी आंखिन देखी
लीयौ वानु उठाइ कुंवरि तेरी सीता बेटी
सीता गुन की आगरी, भई ब्याह भरि चूक
जुरि मिलि मिंति करौ महलन में, राउ जनक कौ लोगु
अन्त रघुवंशी आए ।

५. देंउ सभा में पांउ दागु मेरे कुल कूं आवै
कौन कौ टीकौ करूं कोजु वरू व्याहन आवै
साहन्यौ सूझनु नांइ रानी, कुँवरि भई भरि चूक
घरई बैंठें बोलिलुअगो सात दीप नव खूंट ।
अन्त रघुवंशी आए ।

पत्र । ५. "ओवरना सो बरना बनिया जोर चढ़ते अइयौजी
अग्गिम राजा पच्छिम राजा सबु राज जुरि अइयों जी
राजा नें पत्र बनाए
वे सगु भैया बुलवाए
भैया सरनि लई तिहारी
अब करौ व्याह की त्यारी
रानी नें बचन सुनाए
राजा के ढिग आए
तुम सुनि लेउ अरजी मेरी
प्रभु सरनि लई मैं तेरी
तुम सब सब कूं बुलवैयों
व्वा रामनै मतीं बुलैयों
रामनु बिगरि बुलायौ अबै
तेरौ आमतु धनुसु उठावै
जे धनस उठाइ घर जाइगौ ।
बेटी ऐ व्याहि लै जाइगौ
तेरे कुलऐ दागु लगि जायगौ

तुम ऐसी मिति उपाओ
ब्वा राम नै मतीं बुलाऔ
बेसवु रामन जुरिआमें
पलक न देर लगामें
अब तुम काए कूं रारि बढ़ाओ
सगु झगड़े ऐ न्यों निमटाओ।

६. नगर फुरे नीसान देव तम्मासे आए
सबरे राजा जुरे जनकपुर नगरी धाए
आइ कचैरी बैंठि गए, मतौ कियौ ठैराय
ऐसी मिति करौ मेरे भैया, हमकूं देखौ ब्याहि।

७. आगें बिसामित्र पाछेंते लछिमन बारे
तीन लोक के नाथ, अगारी जे पगु धारे
पहुँचे निकट जनकपुर नगरी जोति दई छुड़काइ
तीनलोक के कर्तमकर्ता पहुँचि गए सिरु नाइ।

८. छत्रपती इकु लाख तुरी सौ लाख भनंजय
असी लाख मैमंत बान लैकें इंदुर छरजे।
साठि लाख तनु तोपचीं, गोसा जड़ी कमान
इतनो दल बल जो भीरते जाइ छए भगमान।

९. इतने जोधा पहुँचि गये, मतौ कियौ ठहराइ
तीनि लोक के कर्ता पहुँचे सबै रहे सिरु नाइ।

१०. नेंक न करी अबार धनस के जौरें आए
कर्ता लियौ उठाइ क्रोधु करि मन में धाए
कर्ता लियौ उठाइ कें टुकड़ा करि दीए चारि
सबरे जोधा दुखी है गए, धन्नि हमारे भागि।

११. सीता लीनी ब्याहि गई नीसान घुराये
थैलीन के मुँह खोलि देख म्वाँ भौतु उड़ाये।
मोहर रुपैया को गनै, खरचे हीरालाल
इतनी दरब लुटाइ खेत में बंधी मेंड़ मरजाद।

१२. राजा सोबौ देइ कसै हाती जम्मारी
ऊंटन की लंगारि और घोड़ा असवारी।

राजा सोवो देंतु ऐ, देंतन लाए हार
गोवरहारी दई सजन मेरे लै जाऊ संग लिवाइ।
१३. अब सीता लीनी ब्याहि परे दगरेन के माहीं
राम लच्छि दोऊ बीर चलें छत्तुर की साईं
दसरथ तौ हौदा चढ़े दुहरे चौर ढुराइ
परसराम दलु साजि सामरौ गयौ अगारी आइ।
१४. रामचन्द चलि दए फेरि पाताल सिधारे
सीता लछिमन रहे, विरफ ते बचन उचारे।
पौंहचि गए पाताल में कहौ तौ सही खुसराइ
कैसें तौ तुम ब्याहु रच्यौ ऐ, कैसें आए आजु।
१५. परसुराम सौं बली दालिकें दल में आयौ
ऐसौ बरियौ कौन जानें मेरौ बानु सिंगार्यौ।
विरमा होइ सरवरि करुँ छत्री की धरूं न धीर
मेरी बानु महा बरी कहि कौनें तोर्यौ वीर।
१६. रथ में, सीता बेटी खाँति पछार।
मेरौ रथ की पैंजनी ऐ दोड़ौरे
चरत भरत मैंने घर ई छोड़े
औरु बान हत नांइ।
मेरे रथ की पैंजनी०
रामचन्द गए लोख पताल
बे तो अबऊ तक वेगदे नाँइ, रे।
मेरे रथ की पैंजनी०
१७. इतनी सुनी तौ रामचन्द आगे आए
लच्छि भए रुमपोस हरि बतराने आइ।
भारी दाख गल्ले में अगिनि दई भहराइ।
जैसे भट्टी काच की अगिनि रही फहराइ।
मारें मारें लाल तेरौ फरसा लु गो डरवाइ।
कितनी ऐ जोर तू तौ मेरे आगे दिखराइ।
गामत सनेही राम, पर्सराम जोरे हात
महाराज तू औतारु भयौरे
मेरौ काऊनें न बान गह्योरे।

सीता-ब्याहुलौ

आजु मेरी सीता ए ब्याहन आए
आजु रघुनंदन ब्याहन आए।
जब जब रामचन्द्र घरते निकरे, भले भले सगुन विचारि। आजु रघुनन्दन०
जब जब जसरत तालन आए, सिरीराम करें असनान। आजु०
जब जब जसरत बागन आए, सूखे बाग हर्याँइ। आजु०
जब जब जसरत सीमन आए, गाढ़ा दिये ररकाइ। आजु०
जब जब जसरत गलियन में आए, घोड़ि लरा हींसन लागे। आजु०
जब जब रामचन्द्र द्वारे आये, हाथी झूमन लागे। आजु०
कजरी रे बन ते खम्भ मगाए, गाढ़ि सीअ दुआर। आजु०
जब जब कुमर बारौठीनु आए, कलसन जोड़ी मगाइ। आजु०
सीतामाता करै आरती, केसरि तिलक संजोइ। आजु०
हरे हरे गोबर अंगन लिपाए, मोतिन चौक पुराए। आजु०
कूम कलस अमिरितु भरि लाए, चंपेकी डार झकोरि। आजु०
ऐंपनु घोरि, पटा गहि मारौ साठी के आछत डारौ। आजु०
खम्मन खम्मन दिवला जोरौ, जगमग जोति सवाई। आजु०
पानफूल कौ मँडपु छँवायौ, नेंह नीनें हती बंधन बंधाइ। आजु०
पंडित वेदु पढ़ै अच्छे निरमल, राजा जनकजी लेंइ कन्यादानु। आजु०
हात की लोई बाकी माता नें दीनी, राजा जनकनें कीये पीयरे हाथ। आजु०
कन्या भई ऐ पराई आजु मेरी सीता ऐं ब्याहन आये।
सीता सिरीपति परति भमरिया, सोभा बरनिन जाइ। आजु०

[उच्च वर्णों में भाँवर पड़ने के समय यह ब्याहुला गाया जाता है]

सीता-ब्याहुलौ

[२]

राजा जनक घर क्वारी सी कन्या,
जव रे सीता पाँच बरस की द्वार पै खेलन जाइ। राजा०
जव रे कन्या सात बरस की
सीता चौका दीयौ मंदिर में।
चार्यौ खूँट सम्हारि। राजा०

सिवि के धनुसु अलग धरि दीयौ ।
चौका दियौ सम्हारि । राजा०
बाहिर ते आए राजा जनकजी
इत-उत पूछन जांइ । राजा०
जवरे राजा महल बिच पहुँचे,
रानी उठीं अकुलाइ । राजा०
कैसे राजा मन-रंजन भए औ
कैसे भए उदास । राजा०
सिवि कौ धनसु किनन उठायौ,
जाकौ अरथु बताइ । राजा०
सीता चौका दियौ मंदुर में
उनईं नें धरयौ उठाइ । राजा०
जा बेटी वरु कौन सौ व्याहै
इक हात ते धनुष दीयौ उठाइ । राजा०
देस देस पाती भिजवाईं,
सुयंवरु दियौ रचाइ । राजा०
देस देस के भूप जुरे ऐं
रामु ऊ देखन जांइ । राजा०
सवरे भूप जुज्झ करि हारे
तिलु भरि धनसु न जाइ । राजा०
भौतु दुखी भए राजा जनकजी
सीता क्वारी रही ऐं,
आजु मेरें धनसु न तोर्‌यौ आइ । राजा०
राजा जनकजी सुखी भए ऐं
माता लेति बलैया । । राजा०
सवरौ नंगरु सुखी भयौ ऐ
सुखी भए नरनारि । राजा०
जवरे जसरथ घर से निकरे,
भले भले सगुन विचारि ।
जवरे दसरथ तालन आए, बरात करैं असनान ।

[शेष दूसरे व्याहुले के समान है]

[डा० सत्येन्द्र तथा श्री चन्द्रभान रावत]

टिप्पणी—२

कन्नड़ के कथाकाव्य

कन्नड़ साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि काव्यों के पाँच भेद माने गए हैं: चंपू, रगळे, षट्पदि, सांगत्य और गद्य। चंपूकाव्य के भी दो भेद माने गये हैं—पौराणिक और लौकिक। इन काव्यांगों में कन्नड़ का समृद्ध साहित्य पाया जाता है। कन्नड़ साहित्य को उच्च स्तर तक पहुँचाने का प्रथम श्रेय जैन कवियों को मिलता है। उन्होंने ९वीं सदी से अखण्ड तीन सौ वर्षों तक कन्नड़ में साहित्य का निर्माण किया है। इस दीर्घ काल में पंप, पोन्न, रन्न आदि कई महाकवियों ने कन्नड़ काव्य क्षेत्र में जो मार्ग दिखाया उसी का अनुसरण तथा अनुकरण कईयों ने करके ऊँचे दर्जे का साहित्य-सृजन किया है। उनकी अधिकांश रचनायें चंपू काव्य ही हैं। उनकी साहित्यिक कृतियों में हम पौराणिक, रामायण, महाभारत की कहानियाँ ही पाते हैं जो एक प्रकार से कथाकाव्य ही हैं। उनके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने संप्रदाय के अनुसार रामायण, महाभारत की कहानियों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर लिया है। विशेषत: जैन तीर्थंकरों की कहानियाँ ही उन्होंने लिखी हैं। जैन कवियों से रचित काव्यों में पंप कवि का 'विक्रमार्जुन विजय', पोन्न कवि का 'भुवनैक रामाभ्युदय', रन्न कवि का 'साहस भीम विजय', जन्न कवि का 'यशोधर चरित्र' आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा के लिए ही लिखे गये काव्य भी हम, पाते हैं और उनमें नेमिचंद्र कवि की 'लीलावती' देव कवि की 'कुसुमावली', नागवर्म कवि की 'कादंबरी', दुर्गसिंह की 'पंचतंत्र की कथायें', नयनसेन कवि का 'धर्मामृत', ब्रह्मशिव कवि की 'धर्म परीक्षा', 'समय-परीक्षा' तथा चौंडरस कवि का 'दशकुमार चरित्र' उल्लेखनीय हैं।

इनके उपरांत हम कन्नड़ साहित्य में १२वीं सदी में एकदम परिवर्तन पाते हैं। इस समय 'रगळे' नामक छंद में कन्नड़ काव्यों का निर्माण होने लगा। उनमें संस्कृत के छंदों की छाया एकदम गायब-सी हो गई। 'रगळे' में काव्य-रचना करने का धैर्य हरिहर नामक कवि ने किया और उसने शिव की लीलाओं का 'रगले' छंद में वर्णन करके दिखाया कि संस्कृत के छंदों में जो सामर्थ्य है वह 'रगळे' में भी है। इसकी काव्य-कौशल-शक्ति परखकर 'वीरमाहेश्वराचार संग्रह' नामक ग्रंथ के रचनाकार कहते हैं—

य: पुरातन चारित्र्यं कृतवान् देशभाषया।
पंपाहरीश्वरं नौमि संपादित शिवारचंद।।

हरिहर ने 'रगळे' में इसलिए काव्य की रचना की थी कि वही कथाकाव्य का उत्तम साधन है। वह 'रगळे' काव्यों का आदि प्रवर्तक माना जाता है और 'रगळे कवि' नाम से भी संबोधित किया जाता है। उसने शिवभक्तों की जो कहानियाँ लिखी हैं वे कथाकाव्य कहलाने योग्य हैं। उसकी रचनाओं में 'गिरिजाकल्याण' सुप्रसिद्ध काव्य है। सोमनाथ कवि का 'शरण बसव रगळे' भी प्रसिद्ध काव्य माना गया है। इस 'रगळे' छंद के भी कई भेद हैं और उनमें भी अच्छे कथाकाव्य लिखे गये हैं।

'रगळे' छंदों के उपरांत जो 'षट्पादि' काव्य कन्नड़ में आये वे भी एक प्रकार से कथाकाव्य ही हैं। उनमें भी हम किसी न किसी पौराणिक कथा को पाते हैं और वे विशेषत: जैनों, शैवों तथा वैष्णवों की पौराणिक कथाएँ हैं। कन्नड़ के कई महाकाव्य इसी षट्पदि छंद में लिखे गये हैं। इन काव्यों का प्रवर्तक कवि राघवांक है और उसका 'हरिश्चन्द्र काव्य' अत्यंत प्रसिद्ध है। चामरस कवि का 'प्रभुलिंगलीला' काव्य, कुमारव्यास कवि का 'भारत' काव्य, कुमार वाल्मीकी कवि का 'रामायण' काव्य और 'कन्नड़ भागवत', लक्ष्मीश कवि का 'जैमिनी भारत' काव्य आदि कन्नड़ के उत्तम कथाकाव्य ही हैं इन षट्पदि काव्यों का काल १३वीं सदी से १६वीं सदी तक अक्षुण्ण बना रहा।

'त्रिपदी' नामक छंद में 'चोर कथा' नामक काव्य के सिवा और कोई कथा-काव्य नहीं मिलता। इसमें मल्लिकार्जुन कवि ने यह लिखा है कि रत्नपुरी के राजा वज्रमुकुट के दो पुत्र कैसे चोर बने।

'सांगत्य' नामक छंद में काव्यों की रचना १३ वीं सदी से होने लगी और उनमें भी कथा-काव्य पाये जाते हैं और उनमें रत्नाकरवर्णी कवि का 'भरतेश वैभव', चंद्रम कवि का 'गोमटेश्वर चरित्र', लिंग कवि का 'चोळराज सांगत्य' शिशुमायण कवि का 'अंजना चरित्र' नामक कथा-काव्य उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा ऐतिहासिक महापुरुषों की कथाएँ भी इसी छंद में लिखी गई हैं और उनमें नंजुंड कवि का 'कुमार राम चरित्र' गोविन्द वैद्य कवि का 'कंठीरवनरस राज विजय' आदि प्रसिद्ध हैं।

दक्षिण और उत्तर कन्नड़ जिले 'यक्षगान' के लिए सुप्रसिद्ध हैं। यह 'यक्षगान' ग्राम की एक विशेष कला है। इसके लिए कवि ऐसे काव्यों की रचना करते हैं कि वे गाने और अभिनय करने के लिए योग्य हों। 'यक्षगान' कला के लिए लिखित काव्य एक प्रकार से कथा-काव्य ही हैं। पौराणिक, ऐतिहासिक कथाएँ ही विशेषत: इनकी कथा-वस्तु बनी हुई है। यक्षगान के लिए रचित कथा-काव्यों की संख्या काफी बड़ी है, यहाँ कुछ का ही जिक्र किया जाता है—

कथा-काव्य	कवि
१. भागानगरी की कथा	अनंत रामय्य।
२. चन्द्रहासन कते	गुरुसिद्दप।
३. कुचेलोपाख्यान	तिप्पणाचार्य।
४. गालव चरित्रे	तिम्मप्पदास।

५. हरिश्चन्द्र कते	नंजुंड ।
६. कुमार रामन कते	,, ।
७. द्रौपदी स्वयंवर	वि० पुट्टण्ण कवि ।
८. अनसूया कते	पुरंदरदास ।
९. कृष्ण मोहिनी कते	शांत कवि ।
१०. करियबंटन कते	सुब्बराय ।
११. कुश-लवर काळग	रायण्ण ।
१२. रत्नावली कल्याण	नंदाळ के लक्ष्मीनारणघ ।

जनपदीय साहित्य में रामायण, महाभारत की कथाओं के अलावा ऐतिहासिक वीर-पुरुषों और सामाजिक जीवन चित्रण करने वाली कथाएँ हैं ।

जैसे समय बदलता जाता है वैसे ही काव्यों के प्रकारों में भी परिवर्तन होता है । काव्य की परिभाषा भी बदलती है । आधुनिक साहित्यकार काव्यों के चार अंग मानते हैं— कथन, वर्णन, भावन, बोधन । इनसे क्रमश: कथन काव्य, वर्णन काव्य, भावगीत, बोधगीतों का निर्माण होती है । इनमें से कथा-काव्यों की परिभाषा यह करते हैं कि जिस काव्य में कवि अनुभव आदि का वर्णन एक कथा के द्वारा सरल छंद एवं भाषा में सुनाता है वही कथाकाव्य कहलाता है । कथा-काव्य की वस्तु किसी व्यक्ति की शूरता, देवभक्ति, पति-भक्ति, देशभक्ति, स्वामिनिष्ठा आदि होती है । कथा-काव्य की परिभाषा के अनुसार आधुनिक कथाकाव्य के रचयिताओं में सर्वश्री मास्तिवेंकटेश अय्यंगार, के० दि० पुट्टप, कृष्णशर्मा बेटगेरी, होसकेरे चिदंबरय्या, जी० पी० राजरत्नम्, पु० ति० नरसिंहाचार, एन० एस० वीरप्प, कृष्णमूर्ति पुराणिक, द० रा० बेन्द्रे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इनके अलावा और भी कवि हैं और उनका नाम लेने से नामावली खूब बढ़ेगी, इस विचार से कुछों का ही नाम लिया गया है । उपरोक्त कवियों के कथाकाव्य जो हमारी दृष्टि में पड़े हैं उन का उल्लेख नीचे लिखे अनुसार है—

कवि	**कवि की रचनाएँ**
श्री० मास्तिवेंकटेश अय्यंगार	रामप्रीय उदन्त, सिद्धर किन्नरि, देशाचार, कुरुब-हंपण्ण, दुर्गद अर्चक, वीर लक्ष्मम्म, गुंडुसूजि इत्यादि ।
श्री० के० वी० पुट्टप्प	किंदरि जोगि, करिसिद्द, मरसुबेटे, घंटाकर्ण, मंजण्ण हेळिद स्थळगते, डूलि, नागि, रक्तरजनि, तानाजी, जयसिंहन कोनेगाल, कुमुदिनि, प्रतापसिंह इत्यादि ।
श्री० कृष्णशर्मा बेटगेरी	शबरिय बाळु, अशोक चक्र, गंगावतरण इत्यादि ।
श्री० होसकेरे चिदंबरय्य	विद्यारण्य काव्यम्
श्री० जी० पी० राजरत्नम्	रत्नन प्रपंच, रुस्तुं रत्न, इत्यादि
श्री० पु० ति० नरसिंहाचार	शबरि, अहल्या, इत्यादि

श्री० एन० एस० वीरप्प	मेकेदाटु, हब्बद संते, कणिवेय दारि, मादन सेवे, अय्यप्पन स्वर्ग इत्यादि।
श्री० कृष्णमूर्ति पुराणिक	काळन केरे
श्री० द० रा० बेन्द्रे	कृष्णाकुमारी, सखीगीत इत्यादि।

आधुनिक कथा-काव्य की परिभाषा के अनुसार रत्नन प्रपंच आदि, शबरि आदि, विद्यारण्य काव्यं इत्यादि काव्य कथा-काव्य की सीमा में आ सकेंगे कि नहीं, कुछ संदेहास्पद है। गीत नाटकों की गिनती और बड़े कथा-काव्य की गिनती यदि कथा-काव्यों में हो सकती हो तो कन्नड़ के कथा काव्यों की संख्या और भी बढ़ जायगी और उनकी व्याप्ति भी। फिर भी, जो हो, आज के कथाकाव्यों को देखने से यही विदित होता है कि उनका भविष्य उल्ज्वल है। गद्य में छोटी कहानियों ने जो स्थान प्राप्त कर लिया है वही स्थान कथा-काव्य पद्य साहित्य में प्राप्त करेंगे तथा लोकप्रिय बनेंगे, इसमें संदेह नहीं।*

---

*यह लेख केवल परिचयात्मक है।

[श्री गुरुनाथ जोशी]

टिप्पणी--३

'उदयपुर राजवंशावलि' और राणी पद्मावती

जायसी कृत 'पद्मावत' नामक सुविख्यात ग्रन्थ में वर्णित मेवाड़ नरेश राणा रत्नसिंह तथा सिंहल द्वीप की राजकन्या पद्मावती के विवाह सम्बन्धी घटना से प्रत्येक व्यक्ति सुपरिचित है। कर्नल टॉड ने (टॉड राजस्थान, आक्सफ़ोर्ड संस्करण, भाग १, पृष्ठ ३०७-११) इस घटना को स्वीकार किया है तथा पद्मावती को लंका के राजा की पुत्री। परन्तु डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ४८६ तथा आगे) सम कुछ विद्वान् इस विचार का विरोध करते हैं। उनका यह भी कहना है कि 'मेवाड़ नरेश के लिये इतनी दूर जाकर सिंहल (या लंका) के राजा की पुत्री का पाणिग्रहण करना संगत प्रतीत नहीं होता।'[1] खेद है इस सम्बन्ध में तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री का अभाव ही है। अपरंच, सिंहलद्वीप की स्थिति के विषय में निश्चित-रूपेण किसी मत का प्रतिपादन सम्भव नहीं है। इस दिशा में डॉ० जितेन्द्रनाथ बैनर्जी[2] ने कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित तथा १८४० ईस्वी में समाप्त **"उदयपुर राजवंशावलि"** नामक ग्रन्थ[3] के १०वें फ़ोलिओ [Folio] का एक महत्वपूर्ण पद उद्धृत किया है यथा:—

> **"राजा रतनसिघ. जि · · · · · समल-द्वीप पाटन सहर में चोहान राजसंघ राज करत हो जठ जाइनें राजरी बेटी पदमनी ने परनी।"**

---

१. प्राचीन भारतीय इतिहास अतीव प्राचीन काल में भारत तथा दूरस्थ विदेशों के पारस्परिक सम्बन्धों का दिव्य साक्षी है। अतः यह तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि उत्तरी भारत का कोई नरेश दक्षिण भारत व उससे भी दूरवर्ती राज्यों के नरेशों से संबन्ध स्थापित करे।

२. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, कलकत्ता, त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष १४, १९३८ पृष्ठ ७५६। डॉ० बैनर्जी के इस लेख का आधार तो श्री एस. सी. दत्त का लेख है जो १९३८ की बंगाली पत्रिका 'विचित्रा' में प्रकाशित हुआ है। खेद है कि डॉ० बैनर्जी ने इस बंगाली पत्रिका के अंक व पृष्ठ-संख्या का किञ्चिन्मात्र भी उल्लेख नहीं किया है।

३. यह ग्रन्थ १९वीं शती ईसवी के पूर्वार्द्ध का है।

इस वृत्त के अनुसार :—

(१) राणा रत्नसिंह की राणी का नाम पद्मावती तो अवश्य था परन्तु वह चौहान नृपति 'राजसिंह' की पुत्री थी ।

(२) पद्मिनी के पिता की राजधानी समलद्वीपस्थ 'पाटन' नगर थी । अतः सिंहलद्वीप की स्थिति पश्चिमी भारत में समझनी चाहिए तथा "उदयपुर वंशावलि" का पाटन[४] शहर अनहिल-पाटण । इस विचार से तो राणा रत्नसिंह की ससुराल कुछ अधिक दूर नहीं पड़ती । आशा है भारतीय साहित्य व इतिहास के विद्वान् १९वीं शती की उक्त वंशावली के इस पद पर अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे । डॉ० बैनर्जी (उपर्युक्त लेख, पृष्ठ ७५६, पाद टिप्पणी २१) ने तो यह भी सुझाव रक्खा है कि यहाँ मध्यप्रदेश के जबलपुर-दमोह क्षेत्र का **पाटन** ही सम्भवतः समलद्वीप का पाटन नगर है । इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी सूचित किया है कि १४वीं शती ई० के प्रारम्भ में यह प्रदेश चौहान राज्यान्तर्गत एक प्रतिहार शासक के अधीन था ।[५]

१९वीं शती की उपर्युक्त वंशावली द्वारा यह तो ज्ञात हो ही जाता है कि आज से ११७ वर्ष पूर्व कुछ विद्वान् इस पक्ष में न थे कि पद्मावती को लंका-नरेश की पुत्री स्वीकार किया जावे । इस दिशा में अधिक सामग्री को प्रकाश में लाने की नितान्तावश्यक्ता है । उसी समय कुछ निश्चित विचार व निर्णय किया जा सकेगा । वर्तमान स्थिति में १९वीं शती के उक्त कथन को ही सर्वथा सत्य स्वीकार करने में शीघ्रता करना संगत न होगा । फिर भी यह वंशावली मेवाड़ के इतिहास के लिये एक महत्वपूर्ण रचना है । इसके अतिरिक्त पाटन नगर से सम्बन्धित 'समलद्वीप' की विद्यमानता एवं साहित्यिक उल्लेखों के विषय में खोज करना भी नितान्त आवश्यक है । अपरंच पाटन के चौहान नृपति 'राजसिंह' की ऐतिहासिकता निर्धारित करना परम आवश्यक है ।

---

४. राजस्थानान्तर्गत झालावाड़ के समीपवर्ती पाटन से सर्वथा भिन्न ।

५. द्रष्टव्य—"ऐपिग्राफ़िया इण्डिका," भाग १६, पृष्ठ ११ पर प्रकाशित वृत्त ।

[श्री रत्नचन्द अग्रवाल]

टिप्पणी—४

खुरपल्टा

बस्तीः—

खुरपल्टा ब्रज की एक घुमक्कड़ और निम्नतम जाति है। भंगियों का जूठा भी ये लोग खा लेते हैं। ब्रज में मथुरा, कोसी, छाता और आगरे में इनकी अस्थायी बस्तियां हैं। मथुरा में भूतेश्वर रेलवे स्टेशन के पास लगभग २०० खुरपल्टों की बस्ती है। एक कुटुम्ब की एक गाड़ी होती है। उस गाड़ी पर एक अस्थायी छाजन होता है। गाड़ी के नीचे १-२ चारपाइयाँ पड़ी होती हैं। बस यही उनका घर है। इसी में सारे कुटुम्ब के स्त्री, पुरुष तथा बच्चे रह लेते हैं। लेखक ने कई गाड़ियों के पहियों में दीमक लगी हुई देखी। इससे यह स्पष्ट होता है कि बहुत दिनों से वे गाड़ियाँ यातायात के कार्य में नहीं आ रहीं। वहीं पास में एक समाधि बनी थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह समाधि एक ऐसे वृद्ध की है जिसका देहान्त १२५ वर्ष की अवस्था में हुआ था। उस समाधि पर शंख, चक्र, फूल और चरण बने हुए हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि अधिक अवस्था में मरने पर समाधि बनती है।

उन लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे यहाँ लगभग १५० वर्ष से निवास कर रहे हैं। पर अभी उनके निवास में स्थायित्व नहीं आ पाया है। घुमक्कड़ जाति होने के कारण उनके बच्चों को अनिवार्य शिक्षा के नियम के अन्तर्गत शिक्षा भी नहीं मिलती। इस प्रकार वे शिक्षा-संस्कार से मुक्त हैं।

प्रथम प्रतिक्रियाः—

जब लेखक उनकी बस्ती में पहुँचा तो उसे संदेह दृष्टि से देखा गया। उनको भ्रम होने लगा कि जिस प्रकार भूभड़ियों को चित्तौड़ में बसाने का प्रयत्न किया गया था, उसी प्रकार हमें सरकार हमारे मूल स्थान पर भेजना चाहती है और इनको सरकार ने हमारी बोली-भाषा का पता लगाने के लिए भेजा है। अनेक प्रयत्न करने पर भी उनका भ्रम-मोचन नहीं हुआ। वे एक अक्षर भी लिखाने को तैयार नहीं हुए। पर, जाने-अनजाने उस समय में वे कुछ बातें कहते गए। उन बातों का निष्कर्ष यह है:—

१. हमको यहाँ रहते १५० वर्ष हो गये। हमारा अब गुजरात या काठियावाड़ से क्या संबंध है। हम अब वहाँ नहीं जा सकते। हमको यदि बसाना है तो यहीं बसाओ।

२. हमारी बोली-भाषा यहाँ जैसी है। रीति-रिवाजों में भी कोई अन्तर नहीं है। हम और आप एक हैं।

पहले तर्क में जिस बात को वे छिपाना चाहते थे, वही प्रकट हो गई : उनका संबंध गुजरात या काठियावाड़ से अवश्य प्रतीत होता है । दूसरे तर्क में उनका यहाँ से न जाने का निश्चय अन्तर्हित है । जब वे आपस में बातचीत करते थे तो उनकी बोली समझ में नहीं आती थी । इससे एक सी बोली-भाषा होने का तर्क भी समाप्त हो गया । पर उन्होंने कोई काम की बात बताई नहीं ।

कुछ बातें निरीक्षण से ज्ञात हुईं । सभी स्त्री, पुरुष तथा बच्चे गौरवर्ण के हैं । अधिकांश पुरुष बड़ी-बड़ी मूँछें रखते हैं । साफ़ा प्रायः सभी बाँधते हैं । स्त्रियों में लहँगे का पहनावा है । सभी निरक्षर हैं । स्त्री-पुरुषों को एक दूसरे के सम्मुख अश्लील से अश्लील गाली बकने में भी संकोच का अनुभव नहीं होता । वृद्धों के सम्मुख स्त्रियाँ पर्दा भी करती हैं । बस इससे अधिक कुछ ज्ञात न हो सका । दो-चार दिन पश्चात् उनके समीपवर्ती दूकानदार के माध्यम से एक वृद्ध खुरपल्टे का विश्वास प्राप्त किया गया । उससे जो सूचनाएँ प्राप्त हुईं, उनका विवरण नीचे दिया जाता है—

जन्म-संस्कार:—

जननी को जिस समय कष्ट का आरम्भ होना है, उसी समय से जाति वाले दारू (शराब) पीना आरम्भ कर देते हैं । अनेक प्रकार से अपने हर्षोल्लास की वे अभिव्यक्ति करते हैं । गीत भी गाए जाते हैं और नृत्य भी चलता है । वाद्य केवल करताल होती हैं । तालियाँ बजा बजा कर स्त्रियाँ भी गाती हैं । जाति वाले एकत्रित होकर जन्म के आठवें दिन बच्चे का नामकरण करते हैं । उस दिन तक गीत चलते रहते हैं । यदि किसी के बच्चे मरते रहे हों तो बच्चे की नाक को छेद दिया जाता है । कुछ स्त्री-पुरुषों के नाम नीचे उदाहरण स्वरूप दिये जाते हैं:—

पुरुषों के नाम	**स्त्रियों के नाम**
१. बन्ता	१. जसोदी
२. इन्तज़ार	२. कैतकी
३. जुग्गनियौ	३. रूमाली
४. गोपालियौ	४. बच्छी
५. इक्कमियौ	५. अंगूरी
६. करीबियौ	६. अकबरी
७. टीकमियौ	७. चोट्टी

जन्म-संस्कार पर जो गीत गाये जाते हैं, उनका संकलन नहीं किया जा सका । वैसे उन्होंने बताया कि आजकल अधिकांश फ़िल्मी गाने गाए जाते हैं । आजकल ऐसा सभी जातियों में मिलता है । पर नेग-जोग के गीत भी चलते हैं ।

विवाह-संस्कार:—

लड़के वाला लड़की वाले के पास लड़की माँगने आता है । यदि लड़की वाला सहमत हो जाता है तो विवाह का दिन निश्चित कर दिया जाता है । दिन के निश्चय करने में

'पंडित' से परामर्श भी लिया जाता है। निश्चित दिन बरात आती है। उसको जनवासे में ठहरा दिया जाता है। लड़की वाला एक हुक्का और एक रुपया भेंट करने जाता है। उसी समय लड़के वाले से अभिवादन किया जाता है। और सारी बरात से भोजनार्थ चलने की प्रार्थना की जाती है। भोजन के पश्चात् फेरा (भाँवर) पड़ती हैं।

बेटीवाले की गाड़ी के सामने माढ़वा गाड़ा जाता है। लड़की को गोद में माढ़वे तक लाया जाता है। दूल्हा और दुलहिन दोनों बराबर बैठ जाते हैं। लड़की के सिर पर एक कोरी हँड़िया में पानी रखा जाता है। उसके एक हाथ में सात सींकें दे दी जाती हैं। अग्नि के आसपास इस प्रकार सात चक्कर लगाये जाते हैं। प्रत्येक चक्कर पर साली एक-एक गाँठ खोलती जाती है। प्रत्येक चक्कर की समाप्ति पर दुलहिन दूल्हे में एक सींक मारती है। दूल्हा उस सींक को दुलहिन से ले लेता है। इस प्रकार सातों फेरों में सात सींकें मारी जाती हैं और उनको दूल्हा लेता चलता है। विवाह के तीसरे दिन उन सातों सींकों को कुएँ में डाल दिया जाता है। साली को गाँठें बांधने का इनाम दिया जाता है। यदि साली न हो तो यह समस्त कार्य छोटा साला करता है। माँ-बाप को जो कुछ दान करना होता है, वह दुलहिन के सिर पर रखी हाँडी में डाल दिया जाता है। तीसरे दिन बरात बिदा हो कर दुलहिन को लेकर चल देती है।

अपने पति के घर आकर उसे अपनी सास के पैर लगना पड़ता है। अन्य वृद्धाओं के भी पैर लगे जाते हैं। तब बधू से कहा जाता है कि—'तारौ हहरौ बैठो। घूँघट मारीले।' (तुम्हारा श्वसुर बैठा है; घूँघट मार ले) 'मुँह दिखामनी' की प्रथा भी है। जाति की वृद्धाएँ दुलहिन का मुँह देखती हैं और इसके बदले में उसे 'इनाम' दिया जाता है। यही उनके विवाह की संक्षिप्त रूपरेखा है।

मरणः—

चाहे बच्चे की मृत्यु हो, चाहे बड़े की, बहुधा विमान निकाला जाता है। सामूहिक रूप से रोने की भी रीति है। मृतक को सदैव ही जलाया जाता है: केवल छोटे बच्चों को नहीं जलाया जाता। दाह-संस्कार के पश्चात् कुछ अवशिष्ट हड्डियों को बीना जाता है और उनको एक स्थान पर गाड़ दिया जाता है। कोई-कोई उस स्थान पर समाधि बनवा देता है। वृद्धों की मृत्यु के पश्चात् जाति-भोज की भी प्रथा है।

धर्मः—

इस जाति में मुख्यतः कालिका या देवी की पूजा होती है। करौली या अन्य देवी के स्थानों की जात होती है। 'जात' से लौट कर एक देवी के भक्त (विशेषतः चमार) को बुलाया जाता है। वह देवी का 'होम' सम्पन्न कराता है। उस होम के पश्चात् बकरे की बलि चढ़ाई जाती है। उसका रक्त उस 'होम' में डाला जाता है और उसके माँस को होम की अग्नि में पकाया जाता है। उसका वितरण भी होता है। देवी के गीत भी गाये जाते हैं।

व्यवसाय :—

इस जाति का मूल नाम 'साँठिया' बताया जाता है। किन्तु पशुओं का क्रय-विक्रय और विनिमय करने के कारण इनका नाम खुरपल्टा हो गया है। 'खुर' पशु धन का प्रतीक है। पल्टा का अर्थ है बदलने वाला। इस व्यवसाय के अतिरिक्त इनका एक और कार्य है। जिन बैलों गायों या अन्य पशुओं के सींग बेतुके होते हैं उन्हें छील-छाल कर ये सुघड़-सुन्दर बना देते हैं। पशुओं के खुरों को भी छील देते हैं। बच्चे भीख भी माँगते हैं।

मूलस्थान:—

ये लोग अपना मूल स्थान चित्तौड़ बताते हैं और अपने आपको चौहान ठाकुर बतलाते हैं। पर इनकी बोली-भाषा काठियावाड़ी से मिलती-जुलती है। अतः इनका संबंध गुजरात-सौराष्ट्र से कभी-न-कभी अवश्य रहा दीखता है। इसी दीर्घ संबंध के परिणाम स्वरूप इनकी भाषा पर वहां का प्रभाव है।

भाषा:—

सबसे पहले संबंधियों के सूचक शब्दों की सूची नीचे दी जाती है—

संबंध	**खुरपल्टों की बोली**	**ब्रज की बोली**
१. पिता	१. बापौ	१. बाप
२. माता	२. मैया	२. अम्मा, मैया
३. भाई	३. बैया	३. भैया
४. बहन	४. बन	४. भैनि
५. पुत्र	५. दीकरौ	५. छोरा
६. पुत्री	६. दीकरी	६. छोरी
७. चाचा	७. काको	७. काका, चाचा
८. भतीजा	८. भत्रीजौ	८. भतीजौ
९. भतीजी	९. भत्रीजी	९. भतीजी
१०. भूआ	१०. बूआ, फूई	१०. भूआ
११. फूफा	११. फूऔ	११. फूफा
१२. बहनेऊ	१२. बनेवी	१२. बहनेऊ
१३. साला	१३. साड़ो	१३. सारौ
१४. साली	१४. हाड़ी	१४. सारी
१५. श्वसुर	१५. हहरौ	१५. सुसरु
१६. सास	१६. हाहू	१६. सासु
१७. मामा	१७. माँमौ	१७. मामा
१८. मामी	१८. माँमी	१८. माईं
१९. नाना	१९. नानौ	१९. नाना
२०. नानी	२०. आई	२०. नानी
२१. मौसी	२१. माँशी	२१. मौंसी

२२. मौसा	२२. माहो	२२. मौसा
२३. घेवता	२३. दोइतौ	२३. घेवतौ
२४. भानजा	२४. भाणेज	२४. भान्जौ
२५. ननद	२५. नणँद	२५. नन्द
२६. भाभी	२६. भोजाई	२६. भाबी
२७. देवर	२७. दीओर	२७. देवरु

इस सूची से इतना ज्ञात होता है कि कुछ शब्द हाबूड़ों से मिलते-जुलते हैं। कुछ साधारण हैं। कुछ शब्द गुजराती से मिलते हैं जैसे दिकरा (लड़का), दिकरी (लड़की) अब नीचे अंग प्रत्यंगों के नामों की सूची दी जाती है:—

सिर — माथू
माथा — लेलाड़
बाल — मुग्राड़
भों — भाँपड़ियौं
पलक — पलक
आँख — आँख
नाक — नॉक्क
मुंह — मूंडूं
दाढ़ी — डाड्डी
ओष्ठ — ओट्ठ
गर्दन — नाड़ि
कंधा — काँठिया
छाती — छात्ती
जाँघ — जाँघि
घुटना — गोडा
पींडरी — पींडी
टखना — मुचौं
उँगली — आँगली
अँगूठा — अँगूठा
तलवा — ताड़ुऔ
हथेली — अथेड़ी

संख्या सूचक शब्दों की सूची इस प्रकार है:—

एक — एक्क
दो — बे

तीन — तीनि
चार — चार
पाँच -- पाँछ
छः — छो
सात — हाथ
आठ — आठ
नौ -- नोव
दस — दह

ध्वनि संबंधी विशेषताएं:—

[स] के स्थान पर [ह] का प्रयोग मिलता है।

साला = हाड़ो
साली = हाड़ी
श्वसुर = हहरौ
सास = हाहू
मौसा = माहो
पैसा = पइहो
दस = दह
सात = हाथ

इसका अर्थ यह नहीं कि इनकी बोली में 'स' ध्वनि नहीं। 'स' का प्रयोग मिलता है पर जिस शब्द में मूलत: [स] होता है, उसके स्थान पर [ह] का प्रयोग होता है। भविष्यकाल की क्रियाओं में [स] की ध्वनि मिलती है:—

पड़ेगा = पड़से
जायगा = जासे

[ल] के स्थान पर [ड़] का प्रयोग मिलता है।

बाल = मुआड़
उँगली = आँगड़ी
तलवा = तड़ुआै
हथेली = अथेड़ी

[ह] का प्राय: लोप मिलता है। उसके स्थान पर स्वर प्रयुक्त हो जाता है। जैसे

बहन = बन
होठ = ओठ

हथेली = अथेड़ी
कही = कई
हम = अमें

प्राय: अन्त्य [न] के स्थान [ण] का प्रयोग मिलता है ।

दुलहिन = दूलण
थन = थण
इसने = ईणें
उसने = ऊणें

साधारणत: ध्वनि संबंधी ये विशेषताएँ मिलती हैं । उनकी ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण होने पर सम्भवत: अन्य विशेषताएँ मिलेंगी ।

सर्वनाम:—

मैं = ऊँ
तुम = तमें
तू = तू
हम = अमें
जिस = जो
किस = की
इस = आ, ई,
वह = ए या ऊ

अन्यपुरुष का बहुवचन 'वे' का कोई रूप नहीं मिला । उनसे पूछने पर 'वे' का अर्थ इस प्रकार व्यक्त किया गया 'ऊ सब' ।

उनकी बोली के नमूने:—

हिन्दी	खुरपल्टी
१. तुम अपनी लड़की हम को देते हो कि नहीं ।	१. तमे तारी दीकरी अमूनें देऐ क को देनी ।
२. मैंने तुम्हें दी ।	२. ऊँ तौ दई द्यौ तूनें ।
३. मैं नहीं दूंगा ।	३. ऊँ तो को द्यूनी ।
४. दस दिन में तुम अपनी बरात ले आना ।	४. तू तारी बरात दह दिन में लई आवे ।

५. हमारी बेटी को ब्याह ले जाना।	५. अमारी दीकरी नें व्याई नें लई जाजे।
६. उसको एक रुपया दे आओ और राम राम कर आओ।	६. एक रुपयौ नें ओ को दई आवो, राम राम करी आवो।
७. चलो रोटी खालो।	७. इन्डो रोटो खाई लो।
८. पीछे फेरा पड़ेंगे।	८. पछें फेरा पड़से।
९. तुम्हारा सुसर बैठा है, घूंघट मारलो	९. तारो हहरो बेहो, घूंघटू मारी ले।
१०. सास के पैर पूजती है।	१०. हाहू नें पग पूजै छै।
११. मुँह दिखा दो।	११. मौड़ूँ बताड़ी दे।
१२. एक राजा के सात लड़कियाँ थीं।	१२. एक राजा नें हाथ छोकरीं हतीं।
१३. एक दिन राजा ने बेटियों से पूछा।	१३. एक्क दन राजा एँ छोकरी नें पूछी।
१४. तुम किसके भाग्य का खाती हो?	१४. तमें सब कीना भाग नूँ खाउ।
१५. लड़कियों ने कहा—	१५. छोकरि ये कई—
१६. हम तुम्हारे भाग्य का खाती हैं।	१६. अमें तारा मुक्कर नूं खाई ऐ।
१७. एक ने कहा हम अपने भाग्य का खाते हैं।	१७. एके कई अमें अपणा मुकद्दरनूं खाई ऐ।
१८. इसने जाकर खाना खाया।	१८. ईणे जाई णें रोटो खायो।
१९. उसने आकर कहा।	२०. ऊणें आदीणें कई।

खुरपल्टों की बोली के ये कुछ नमूने हैं। अभी सम्पूर्ण सामग्री नहीं संकलित की जा सकी है। जब सम्पूर्ण सामग्री संगृहीत हो जायगी तब उनकी संस्कृति और भाषा के संबंध में विस्तार से कहा जा सकेगा। वैसे इस जाति का अध्ययन महत्वपूर्ण होगा।

[श्री चन्द्रभान रावत]

टिप्पणी—५

आगरे के साहित्य प्रेमी जगतराय और उनका छंदरत्नावली ग्रन्थ

हिन्दी भाषा मूलतः मध्यप्रदेश की बोली थी। अमीर खुसरो ने अपने 'नुह सिपेहर' में हिन्दी भाषा की प्राचीनता और दिल्ली के आसपास में बोली जाने का उल्लेख करते हुए लिखा है, कि "अन्य भाषाओं के समान हिन्दुस्तान में भी प्राचीन काल से 'हिन्दवी' भाषा बोली जाती थी, किन्तु गोरियों और तुरकों के आगमन के उपरांत लोगों ने फारसी भाषा का भी ज्ञान प्राप्त करना आरंभ कर दिया। हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। सिन्धी, लाहौरी, काश्मीरी, कुबरी, धीरसमुद्री, तिलंगी, गूजरी, माबरी, गोरी, बंगाली तथा अवधी भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में बोली जाती है। देहली के आसपास हिन्दूवी भाषा बोली जाती है जोकि प्राचीन काल से प्रचलित है।[1] इसके अतिरिक्त एक अन्य भाषा है जिसका प्रयोग केवल ब्राह्मण करते हैं इसका सर्वसाधारण को कोई ज्ञान नहीं, उसका नाम संस्कृत है।"

अमीर खुसरो के समय में हिन्दी में मुसलमानों द्वारा भी रचनाएँ होने लगी थीं और उसने स्वयं भी हिन्दी में रचनाएँ की थीं। 'खालिकबारी' उनका प्रसिद्ध फारसी हिन्दी शब्दकोष है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति हमारे संग्रह में भी है। खुसरो की पहेलियाँ आदि भी प्रसिद्ध हैं। पर वे प्राचीन प्रतियों के आधार से प्रकाशित नहीं हुईं। इसलिये उनकी मूल भाषा के संबंध में निश्चित नहीं कहा जा सकता। सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी के बड़े लड़के खिज्रखां ने हिन्दी में एक प्रेमाख्यान लिखा था जिसके आधार से खुसरो ने 'आशिक' नामक प्रेमकाव्य बनाया। उसमें खुसरो ने लिखा है कि "खिज्रखां के प्रेमाख्यान का जब मैंने प्रारंभ से अंत तक परीक्षण किया तो देखा कि इसके अधिकाँश शब्द हिन्दी के थे। मैंने बहुत देर तक विचार किया कि इस सुकोमल मलमल में टाट का पेबंद किस

---

१. वि० सं० ८३५ में रचित कुवलय माला में मध्यदेश की भाषा के जो शब्द दिये हैं वे हिन्दी में आज भी उसी रूप में व्यवहृत हैं। कविवर बनारसीदास ने अर्धकथानक की भाषा को मध्यदेश की बोली अध्याय १३ में हिन्दुगी कहा है।

प्रकार लगाऊं। परंतु चूंकि किसी न किसी प्रकार से सम्मिश्रण करना आवश्यक था। अतः मैंने समझा कि अनिवार्यता को कोई बुद्धिमान आदमी दोष नहीं मानेगा। मैं गलती पर था। अच्छी तरह सोचने पर हिन्दी भाषा फारसी से कम ज्ञात नहीं हुई। सिवाय अरबी के जो प्रत्येक भाषा की मीर और सब में मुख्य है, रई और साम की भाषाएँ भी हिन्दी से घटिया मालूम हुई। यदि फारसी का व्याकरण नियमबद्ध है तो हिन्दी में भी उससे एक अक्षर कम नहीं है। यदि मैं सचाई और न्याय के साथ हिन्दी की प्रशंसा करूं तब तो तुम विश्वास करोगे या नहीं ?" इन उल्लेखों से हिन्दी की प्राचीनता और महत्व का भली भाँति परिचय मिल जाता है।

दिल्ली के आसपास के प्रदेश में प्राचीनकाल से हिन्दी बोली जाती थी। मुसलमानों ने दिल्ली राजधानी होने के कारण वहीं की भाषा को अपनाया और खड़ी बोली के विकास में उनकी बहुत विशिष्ट देन है। प्राचीन खड़ी बोली के ग्रंथ अब प्राप्त नहीं होते क्योंकि उस प्रदेश में बहुत राज्य-विप्लव होते रहे। मारकाट और अत्याचार का बोलबाला रहा। फिर भी अमीर खुसरो से उसकी परंपरा बराबर प्राप्त है। यद्यपि उसका अनुसंधान अभी तक ठीक से नहीं किया गया।

ग्वालियर आगरा आदि प्रदेश भी हिन्दी भाषा का प्रधान केन्द्र रहा है। यहाँ के साहित्य का अनुसंधान हिन्दी की विकास परम्परा को जानने के लिये बहुत ही आवश्यक और महत्वपूर्ण है। ग्वालेरी भाषा के अनेक उल्लेख इधर-उधर में प्रकाश में आये हैं। मैंने भी प्राप्त उल्लेख व ग्वालेरी साहित्य का परिचय ग्वालियर से प्रकाशित 'भारती' में कई लेखों द्वारा प्रकाशित किया है। उस पत्र के सं० श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने तो ग्वालेरी भाषा के संबंध में एक ग्रंथ भी 'मध्यदेशीय भाषा' के नाम से प्रकाशित कर दिया है। उस प्रदेश के साहित्य का अनुसंधान चालू है ही। इसी तरह आगरे और उसके निकटवर्ती प्रदेश में रचित हिन्दी साहित्य का अनुसंधान स्वतंत्र रूप से किया जाना आवश्यक है। १७वीं शताब्दी से तो यहाँ सैकड़ों हिन्दी कवि एवं लेखक बराबर साहित्य-निर्माण करते आ रहे हैं। उससे पहिले की परम्परा का पता लगाना है, और जितने भी हिन्दी सेवी इस प्रदेश में हो गये हैं उनकी खोजकर एक ग्रंथ प्रकाशित किया जाना आवश्यक है। मुझे आश्चर्य होता है कि आगरा विश्वविद्यालय वर्षों से रिसर्च करने वालों को डाक्टरेट के पद से विभूषित कर रहा है। पर अभी तक उसने आगरा क्षेत्र के साहित्य के अनुसंधान का विषय किसी को क्यों नहीं दिया ? जैन-जैनेतर प्रचुर साहित्य इस प्रदेश में मिलता है। अब विश्वविद्यालय के हिन्दी-विद्यापीठ को इस अत्यावश्यक कार्य को हाथ में लेना चाहिये। आगरे और आसपास में जितने भी हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रहालय हों, उनकी छोटी बड़ी सभी प्रतियों को भलीभाँति देखकर 'आगरा प्रदेश के हिन्दी सेवी' नामक ग्रंथ प्रकाशित करना चाहिये।

आगरे में पचीसों जैन हिन्दी कवि हो गये हैं। उनमें से साहित्य प्रेमी जगतराय के सम्बन्ध में इस लेख में प्रकाश डाला जा रहा है।

पं० जगतराय का कवि के रूप में सबसे पहला उल्लेख बाबू ज्ञानचंद जैनी ने सन् १९०१ में लाहौर से प्रकाशित अपने 'दिगंबर जैन भाषा ग्रंथ नामावली' में किया था। उसके पृष्ठ ४ में कवि नं० ८-९-१०—पं० जगतराय, काशीदास और टेकचन्द की रचनाओं, पद्मनंदी पच्चीसी भाषा छंदोबद्ध जगतराय कृत सं० १७२१, और सम्यक्त्व कौमुदी भाषा छंदबद्ध तीनों को पंडित कृत लिखा था। उसके बाद सं० १९११ में पं० नाथूराम जी प्रेमी ने जैन हितैषी में प्रकाशित 'दिगंबर जैन ग्रंथकर्त्ता और उनके ग्रंथ' नामक सूची स्वतंत्र रूप से प्रकाशित की। इसके पृष्ठ ४२ में जगतराय की तीन रचनाओं का उल्लेख किया है।' ३०—जगतराय—आगमविलास पद्य-बद्ध, सम्यक्त्व कौमुदी छंदोबद्ध और पद्मनंदी पंचविंशतिका छंदोबद्ध (सं० १७२१ में)।' प्रेमीजी ने अपने हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास के पृष्ठ ७१ में भी यही उल्लख किया है।

अनेकान्त के वर्ष ४ अंक ६-७-८ में दिल्ली के नये मंदिर और सेठ के कूंचे के मंदिर के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची छपी है। उसमें आगमशतक (द्यानत संग्रह) संग्राहक पं० जगतराय, छंद रत्नावली (पिंगल) पं० जगतराय, समयक्त्व कौमुदी पं० जगतराय ज्ञानानंद श्रावकाचार पं० जगतराय (हिन्दी गद्य पत्र १५०) पद्मनंदी पच्चीसी पं० जगतराय कृत उल्लिखित है। मैंने इनमें से आगम शतक और छंद रत्नावली की प्रति मंगाकर देखी तो आगम शतक आदि द्यानतराय की रचनाओं का संग्रह 'आगम विलास' नामक ग्रन्थ में मिला और उसका परिचय वीरवाणी में 'कवि द्यानतराय व उनके ग्रन्थ'लेख में प्रकाशित किया था। छंद रत्नावली ग्रन्थ मुझे बहुत महत्व का लगा। उसका परिचय आगे दिया जायगा।

श्री कामताप्रसाद जैन ने अपने 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ १७० में दिया है "जगतराय अथवा जगतराम ने सं० १७२१ में पद्मनन्दी पच्चीसी छंदबद्ध रची। उनके रचे हुए आगमविलास और सम्यकत्व कौमुदी नाम ग्रंथ भी हैं।" यह लिख कर एक पद उद्धृत किया है। पर उसके अंतिम पंक्ति में 'रामदास' नाम आता है। अतः वह उनका नहीं लगता। अब इनकी रचनाओं की परीक्षा की जाती है।

सम्यक्त्व कौमुदी का परिचय अनेकांत वर्ष १० अंक १० में श्री ज्योति प्रसाद जैन ने प्रकाशित किया था। उसके अनुसार यह रचना जगतराय जी के नाम से बनी होने पर भी इसका वास्तव में रचयिता काशीदास सिद्ध होता है। सं० १७२२ के वैसाख सुदी १३ को इस ४३३६ श्लोक परिमित ग्रंथ की रचना आगरे में हुई। इस ग्रंथ में कवि ने जगतरायजी का परिचय इस प्रकार दिया है।

जगतराय हित कविता करी, रवि जो भूमंडल विस्तरी।
अग्रवाल है उत्तम जात, सिंघल गोत जगत विख्यात।
माईदास मही में जानिये, ता तिय कमला सम मानिये।
ता सुत अति सुंदर वर वीर, उपजे दाऊ गुणसागर धीर।

दाता भुगता दीन दयाल, श्री जिन धर्म सदा प्रतिपाल ।
रामचंद नंदलाल प्रवीन, सबगुण ज्ञायक समकित लीन ।
सहिर गुहाणा वनि जोई, पाणीपंथ आई है सोई ।
रामचंद सुत जगत अनूप, जगतराय गुण ज्ञायक भूप ।
तिन यह कथा ज्ञान के काज, वरणी आठों समकित साज ।
जगतराय सुत अति निपुण, टेकचंद सुखरासि ।
गंग जमुन ज्यों चिर सदा, कहि कवि काशीदास ।
विक्रम संवत तैं जानि, सत्रहसै बाईस बखान ।
माधवमास उजियारो सही, तिथि तेरस भृ सुत सौं लही ।
ता दिन ग्रंथ संपूर्ण भयो, समकित ज्ञान सकल तरु बयो ।
सहर आगरे में जू यह, कथा भई सुखखान ।
जगतराय हित जय करो, बढ़ो जु श्रीय कल्याण ।
समकित ज्ञान समाज को, यहै कोष गुण खानि ।
काशी कविता यों कहे, पढते बढ़ें जू ज्ञान ।

इति श्रीमन् महाराज श्री जगतराय जी विरचितायाम् सम्यक्त्व कौमुदी कथायाम् अष्टम कथानकम् संपूर्णम् ।

इस प्रश्न से बाबू ज्ञानचंद जैनी की भूल के कारण का स्पष्ट पता चल जाता है कि इसमें जगतराय, काशीदास और टेकचंद तीनों के नाम देखकर ही उन्होंने इस को 'तीनों पंडित कृत' लिख दिया है । पर वास्तव में कर्त्ता काशीदास ही है । जगतराय के लिये इसकी रचना की । और काशीदास उनका आश्रित रहा होगा, इसलिये अंत में 'श्रीमन् महाराज जगतराय विरचितायाम्' लिखा गया है । टेकचंद जगतराय के पुत्र थे । प्रेमीजी और कामता प्रसादजी ने तो इस ग्रंथ को जगतराय का ही बतलाया है क्योंकि उन्होंने प्रति व प्रशस्ति नहीं देखी ।

पद्मनंदि पंचविंशतिका भाषा का विवरण महावीरजी तथा क्षेत्र कमेटी जयपुर से प्रकाशित प्रशस्ति संग्रह के पृष्ठ २३३ में प्रकाशित हुआ है । उस ग्रंथ का भी सम्यक्त्व कौमुदी जैसा ही हाल है । इसको भी जगतराय के नाम से पाठक पुण्यहर्ष या उनके शिष्य अभयकुशल ने बनाया है । इसकी रचना भी सं० १७२२ के फाल्गुन सुदी १० को मंगलवार को आगरे में हुई है । इसमें जगतराय का परिचय देते हुए लिखा है—

पद्मनन्दी पचवीशी सार, जगतराय भाखी सुविचार ।
ओछो अधिको जे कछु होई, मो अपराध खमहै कवि सोई ।
पानीपंथ सुदेश, सहर गुहानो जाणिये ।

कबहिन दुख को देश, सुख वर्ते जहां सर्वदा।
अग्रवाल है उतम जाति, सिंघल गौत्र वसु विख्यात।
माईदास श्रावक परसिद्ध, उतम करणी कर जिस लिद्ध।
नंदन दोई भये तसु चीर, रामचन्द नन्दलाल सुवीर।
सालीभद्र कुल जुग में एह भाग्यदंन सब गुण को गेह।
पर उपगार आनि मन माँहि, जगतराय श्रावक उच्छाहि।
पद्मनन्दी पचवीशी कीद्ध, भाषाबंध भई पर सिद्ध,
पाठक अतिही प्रवीन पुण्यहर्ष गणि दीपे।
आगम युक्ति अनेक, भेद करि वादी जीपे।
कीनि भाषा एह, जगतराय जिहि विधि भाखी,
पंडित माह मतिमन्त, वीरदास जुहे साखी।
बाढे बहु विध सकल पाप सन्ताप हर।
एहूँ ग्रंथ सन्तनि कै सुनहुँ, करो विनति जोरि कर।
सुजानसिंह नन्दलाल सुनन्द, जगतराय सुत है टेकचन्द।
जोलों सागर शशिदिनकार, तालों अविचल ये परिवार।
अभयकुशल आणंद, पद्मनन्दी पचवीशी को।
भाषा भई निरदन्द, सुनियो भविजन सर्वदा।

इति श्री जगतराय विरचितायाम् पद्मनंदी पंचविंशतिकायां भाषा समाप्ता:

इस प्रशस्ति संग्रह के संपादक कस्तूरचंद कासलीवाल ने इसे जगतराय का माना है और उनके पिता का नाम नंदलाल लिखा है। जो वास्तव में ठीक नहीं हैं। सम्यक्त्व कौमुदी भाषा के अनुसार ये रामचंद्र के पुत्र थे। इस प्रशस्ति में नंदलाल का पुत्र सुजानसिंह होने का उल्लेख है। जगतराय के लिये जिन पाठक पुण्यहर्ष और अभयकुशल ने इस ग्रंथ की रचना की, वे खरतरगच्छ के ललितकीर्ति के शिष्य थे। पुण्यहर्ष की अन्य रचनाएँ जिनपालित जिन रक्षितरास, सं० १७०९ और हरिबल चौपाई सं० १७३५ सरसा में रचित प्राप्त है। पुण्यहर्ष के शिष्य अभयकुशल थे। उनके रचित रिषभदत्त रुपवती चौपाई सं० १७३७ महाजन, भर्तृ हरिशतक बालावबोध सं० १७५५, चमत्कार चिंतामणि बोलाबोधनी वृति और विवाह पडल भाषा प्राप्त हैं।

सम्यक्त्व कौमुदी और पद्मनंदि पंचविंशति भाषा दोनों एक ही संवत् की रचनाएँ है। और दोनों जगतराय की स्वयं की रचित न होकर उनके लिये दूसरों ने रचना की है। इससे जगतराय एक प्रभावशाली, धर्म प्रेमी और कवि आश्रयदाता-दानवीर सिद्ध होते

हैं। काशीदास ने इन्हें 'भूप' और 'महाराज' जसे उच्च विशेषणों के साथ उल्लेख किया है। इससे उनके राज्य प्रभाव की सूचना मिलती है। छंद रत्नावली की रचना सं० १७३० कातिक सुदी में आगरे में नवाब हिम्मतखान के कहने से जुगतराय ने की, इससे हिम्मतखान के साथ उनका घनिष्ठ संबंध प्रतीत होता है। इस ग्रंथ का विशेष परिचय आगे दिया जायगा। पहले इनकी जो और एक रचना आगम-विलास होने का उल्लेख प्रेमीजी और कामताप्रसाद जी ने किया है, उसी के संबंध में प्रकाश डाला जाता है। दिल्ली भंडार सूची के अनुसार जगतराय इसके कर्ता नहीं संग्राहक मात्र थे। द्यानतरायजी की रचनाओं का यह संग्रह सं० १७८४ के माघसुदी १४ को मैनपुरी में किया गया। इसकी प्रशस्ति में लिखा है कि द्यानतराय के (१७१३ में) स्वर्गवास होने के बाद उनके पुत्र लालजी ने आलमगंज के झाँझू को यह संग्रह दे दिया। जगतराय ने उससे लेकर मोतीकटरे में रखा। और फिर ये रचनाएँ नष्ट न हों इसलिये आगम-विलास के नाम से संग्रह कर दिया। ये जगतराय आगरे में रहते थे। अग्रवाल वंश के अध्यात्म प्रेमी विद्वान थे। आगरे के ताजगंज में रायसे बाग में रहने का उल्लेख किया गया है। यद्यपि यह जगतराय उपरोक्त जगतराय से भिन्न हो सकते हैं, क्योंकि सं० १७८४ में आगमविलास का संस्करण करने पर इनकी आयु काफी लंबी सिद्ध होती है। क्योंकि सं० १७२२ में उनके लिये दूसरों ने रचना की। तब के २२ वर्ष के हों तो जन्म सं० १७०० के आसपास का होगा। इस तरह आगम-विलास के संग्रह के समय इनकी ८४ वर्ष की आयु सिद्ध होती है। संभव है वे जगतराय भी इतनी ही आयु के हों।

छन्द रत्नावली छन्द शास्त्र का एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें उस समय के प्राप्त बहुत से छन्द ग्रन्थों का दोहन किया गया है। इस ग्रंथ में ७ अध्याय हैं। जिसमें छठा और सातवाँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। छठे अध्याय में फारसी के छन्दों का विवरण हैं और सातवें में तुकों के भेद बतलाये हैं। अभी तक मैंने जितने भी हिन्दी के छन्द ग्रन्थ देखे हैं, उनमें फारसी छन्दों का विवेचन तो किसी में नहीं मिला। और तुक के सम्बन्ध में भी इसमें जो वर्णन हैं; वह अन्य ग्रन्थों से अधिक महत्व का है। ग्रथ के आदि अन्त के कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं। जिनसे ग्रन्थ का विषय, रचना का आरम्भ, रचना-काल, ग्रथ का नाम व कवि का विवरण मिल जाता है।

श्री वानी करता पुरुष करयौ जू प्रथम उचार।
आगम निगम पुराण सब, तामें ताहि जुहार १।
पिंगल आगें गरुड कै रच्यौ कला प्रस्तार।
पहुंचो आप समुद्र करि, छंद समुद्र अपार।२।
जुगतराई सों यौ कह्यों, हिम्मतखान बुलाई।
पिंगल प्राकृत कठिन है, भाषा ताहि बनाई।३।
छंदो ग्रंथ जितेक है, करि इक ठौरे आनि।
समुझि सबन को सार ले, रतनावली बखानि।४।

नामछंद रत्नावली, याहि कहै सब लोग।
लाइक है प्रभु श्रवन को, कवि हिय राखन जोग।५।
सप्त अध्याय रतनावली, कर्यो ग्रंथ मत सूर।
प्रथम अध्याय कर्मरु क्रिया, गुरु लघु गन इम पूर।६।
असम मात्र छन्द दुतिय है, समकल छन्द त्रिय जान।
चौथी सम वर्नक कही, असम वर्न पंचमान।७।
छठी ध्याय छन्द पारसी, सप्तम तुक के भेद।
करें पंडित या ग्रन्थ में, मन वच क्रम सों खेद।८।

अंतः--

संवत् सहस सात सततीस, कातिक मास शुकल पक्ष दीस।
भयो ग्रन्थ पूरन सुभ थान, नगर आगरों महा प्रधान॥
दानमान गुणवान सुजान, दिन दिन बाढो हिंम्मतखान।
जुगतराइ कवि यह जस गायो, पढत सुनत सब ही मन भायो।
जो कुछु चूक मोहि तें होई, सो अपराध षमों सब कोई॥
विनती सबसों करी अपार, पण्डित गुण जन लेत सुधार।
इति छन्द रत्नावली पिंगल भाषा जुगतराइ कृत संपूर्ण।

इस ग्रन्थ की अभी तक एक ही प्रति नया मन्दिर धर्मपुरा के दिगम्बर जैन सरस्वती भण्डार में मिली है। पुस्तकाकार १० पत्रों की सजिल्द प्रति है। अन्तिम पत्र पर फारसी में मोहर भी लगी हुई है, नीचे फारसी में "हब्र अल फरमायस नबाब हिम्मतखान बिन इसलाम खान, तसनीफ जुगतराय" दिया है। प्रत्येक पृष्ठ में पंक्ति ९ और प्रति पंक्ति में अक्षर १८ के करीब हैं। प्रारंभिक के २ पद्यों में हिम्मतखान का यशोल्लेख है। उदाहरणों में उसका वर्णन नहीं हैं। उसके उल्लेख वाले २ पद्य इस प्रकार हैं।

उज्जल जस अंबर कर्यो, दसदिस हिंम्मतखान।
मुकता तजि सुर सुन्दरिन, भूषन कियो कान।
हिम्मतखाँ सों अरिकपत, भाजत लै लै जीय।
अरि रि हमें हूँ सँग लै, बोलत तिनकी तीय॥

वैसे ग्रन्थ में छन्दों का ही वर्णन है, पर प्रसंगवश २-४ जगह जैन पारिभाषिक शब्द भी आये हैं। इसलिये ये जुगतराइ पं० जगतराय ही निश्चित हैं।

ज्ञानानन्द श्रावकाचार की प्रति दिल्ली की सूची में उल्लिखित है पर मैंने उस ग्रन्थ को देखा नहीं। अतः विशेष विवरण ग्रन्थ देखने पर ही दिया जा सकता है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मैंने साहित्य-सेवियों के सहायक श्री पन्नालाल जी जैन को इस

ग्रन्थ की प्रति देखकर प्रशस्ति भेजने को लिखा तो उत्तर मिला कि ज्ञानानन्द श्रावकाचार की २ प्रति हैं पर यह जगतराय जी का बनाया हुआ नहीं है ज्ञानानन्द जी द्वारा रचित है। अन्त में प्रशस्ति नहीं है केवल "इति श्री श्रावकाचार ग्रन्थ की भाषा वचनिका सम्पूर्ण" ही लिखा हुआ है।

आगरे नगर का वर्णन खरतर गच्छीय जैन यति लक्ष्मीचन्द ने आगरा गजल में किया है, जो सँवत् १७८० में ६४ पद्यों में रची गई। आगरे के लिए प्रसिद्ध है कि "आतम ज्ञानी आगरे" कवि द्यानत ने भी कहा है।

"ज्ञानवान जैनी वसै, वसै आगरा माहिं।
आतम ज्ञानी बहु मिलै मूरख कोई नाहिं।५३।

[संबोध पंचविंश]

[श्री अगरचंद नाहटा]

टिप्पणी—६

उकार बहुला प्रवृत्ति की परम्परा और ब्रज की बोली[1]

आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी-विद्यापीठ के मुख पत्र 'भारतीय साहित्य' अक्तूबर १९५६ के अंक में मैंने श्री चन्द्रभान रावत का 'उकार बहुला प्रवृत्ति की परम्परा और ब्रज की बोली' शीर्षक निबन्ध ध्यान पूर्वक पढ़ा निःसंदेह निबन्ध की पृष्ठभूमि में लेखक का गहन और व्यापक अध्ययन निहित है और वह अभिनन्दनीय है। विद्वान लेखक ने पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के पाठ्य ग्रंथों तथा व्याकरण-पुस्तकों के उपयुक्त उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि ब्रज की बोली में उकारान्त की प्रवृत्ति पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश की परम्परा से आई है। वस्तुतः संस्कृत की विसर्ग रूपिणी प्रत्यय ने ही तो प्राकृत में ओकारान्तता का स्वरूप ग्रहण किया है। प्राकृत के 'खग्गो' (=तलवार) और 'सुत्तो' (=सोया हुआ) मूलतः संस्कृत: के 'खड्गः' और 'सुप्तः' ही तो थे। संस्कृत का 'मार्गः' पद ही तो पालि में 'मग्गो' बनता है। संस्कृत का 'अः' पालि तथा प्राकृत में पहले 'ओ' बना और फिर वही 'ओ' अपभ्रंश के मार्ग से ब्रज की बोली में आकर 'उ' हो गया। हम सब जानते हैं कि समय और मार्ग की लम्बी यात्रा से थकान और दुर्बलता आ ही जाती है। चलते-चलते गाड़ी का पहिया भी घिस जाता है, बेचारे शब्दों की तो बात ही क्या और मजाल ही क्या ? बेचारा 'यशः' संस्कृत के सदन से निकल कर जब प्राकृत की पक्की सड़क पर चलते-चलते ब्रज-भूमि में आया तब वह काफी बदल गया था (संस्कृत-यशः>पालि जसो>ब्रज जसु)। संस्कृत के बहुत से शब्द अपभ्रंश में उकारान्तता के साथ लिखे जाते हैं। 'कवँलु' और 'भवँरु' शब्द अपभ्रंश के ही हैं जो मूल में अकारान्त ('कमल' और भ्रमर) थे। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण देकर श्री रावत जी ने अपने निबन्ध को पुष्ट एवं सार-गर्भित बनाया है।

यदि हम ब्रजभाषा-साहित्य तथा ब्रज बोली के एक वचन द्योतक पुंल्लिग अकारान्त संज्ञा शब्दों पर विचार करें तो यह मानना पड़ेगा कि कर्ता की विभक्ति में वे अवश्य ही

---

१ 'ले० श्री चन्द्रभान रावत' 'भारतीय साहित्य' अक्तूबर सन् १९५६ के अंक में प्रकाशित निबन्ध, पृष्ठ ६५वें से ७९वें तक, प्रकाशक डा० विश्वनाथप्रसाद अध्यक्ष, आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी-विद्यापीठ आगरा।

उकारबहुल हो जाते हैं। जैसे—"रामु का ञा आवत्वै" (राम क्या यहाँ आता है)। किन्तु बहुवचन का द्योतक 'न' कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण में भी उकारबहुल होजाता है, जैसे—

(१) पौधनु कूँ नराओ। (२) आँखिनु ते नेंक देखौ। (३) गाइनु के लें न्यारु लाओ। (४) खेतनु ते माँटी लाओ। (५) जे बिटौरनु के कंडा हैं। (६) एकु बूढ़ौ डोकरा अध्यानेनु पै ही डोलतु रहत्वै।

कभी-कभी अकारान्त एक वचन पुल्लिग शब्द कर्म कारक में भी उकारान्त बन जाते हैं, जैसे 'तुम न्यारु लै आओ।' इस उक्त वाक्य का 'न्यारु' पद कर्म कारक के कारण ही उकारान्त बना है। खड़ी बोली की आज्ञा द्योतक ओकारान्त क्रिया ब्रज बोली में उकारान्त हो जाती है, जैसे तुम ह्वाँ जाउ (=तुम वहाँ जाओ) लेखक महोदय इस तरह यदि विभक्ति-विषय की ओर भी लेख में कुछ और प्रकाश डाल देते तो अधिक अच्छा होता।

प्रायः कर्ता और कर्म की विभक्तियों के वशीभूत ही अकारान्त एक वचन पुल्लिग शब्द ब्रज बोली में उकारान्त बनते हैं। क्यों ? कारण स्पष्ट है कि संस्कृत के पुल्लिग और नपुंसक लिंग शब्द प्रथमा तथा द्वितीया विभक्तियों के एक वचन में ही विसर्गान्त होते हैं जैसे 'राम' का 'रामः' और 'पयस्' का 'पयः'।

संपूर्ण निबन्ध में मुझे दो शब्द ही अशुद्ध मिले—(१) दृष्टव्य (पृष्ठ ६७ पर) (२) मायाणी (पृष्ट ६८ पर)। प्रथम शब्द के 'द्' में 'र' मिलना चाहिए था। 'दृश्' धातु में 'तव्यत्' के योग से 'द्रष्टव्य' शब्द बनता है। दूसरे शब्द में 'मा' के स्थान पर 'भा' होना चाहिए था; क्योंकि लेखक का नाम श्री भायाणी है। अन्ततोगत्मा सर्वांगीण दृष्टि से श्री रावत जी लेख के उपलक्ष्य में हमारी हार्दिक बधाई तथा धन्यवाद के पात्र हैं।

[डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन]

टिप्पणी—७

कोरकू भाषा के लोकगीत

[कोरकू भाषा मुंडा परिवार से सम्बन्धित है, इसके बोलने वाले बरार और पुराने मध्य प्रदेश के समीपवर्ती भाग में रहते हैं। १९०१ में इस भाषा के बोलने वालों की संख्या ८७६७५ थी।[1] मुंडा परिवार की सुदूर पश्चिमी शाखा ही 'कोरकू' है, जो मध्यप्रदेश की सतपुड़ा और महादेव पहाड़ियों पर बोली जाती है।[2] इस भाषा में कोरो का अर्थ है—मनुष्य और 'कोरकू' का अर्थ है—मनुष्यों। इस प्रकार 'कोरकू' में 'कू' बहुवचन द्योतक प्रत्यय है।[3] क्रेस्ट महोदय ने एक स्थल पर विचार प्रकट करते हुए लिखा था, कि कूर या कारकु मध्यप्रान्त में महादेव पहाड़ियों पर और पश्चिमी नदियाँ—ताप्ती और नर्वदा में भील देश तक रहते हैं। यहाँ पर कुछ परगने हैं जहाँ पर गोंड (द्रविड़) के मध्य रहते हुए भी उनकी भाषा कोलेरियन है। × × × × वे सभी अशिक्षित हैं। होशंगाबाद और बेतूल जिलों में इन लोगों की संख्या ५९००० से अधिक है।[4]

'मुवासी' तथा 'निहाली' इसकी बोलियाँ हैं। इस भाषा के बोलने वाले आर्य-भाषा भाषियों तथा गोंडियों से घिरे हुए हैं, और इन पर दोनों ही परिवारों का प्रभाव पड़ रहा है। जनसंख्या की दृष्टि से १९३१ व १९५१ में इसके बोलने वाले ९ प्रति सहस्र रहे। इस समय इसके बोलने वाले कुल १७०६०७ हैं, जिसमें केवल १४ पूर्वी भारत में हैं और शेष मध्यभारत में। इन बोलियों में कोई लिखित साहित्य नहीं है, फिर जन समुदाय में फैले हुए जन-जन के कंठों में व्याप्त लोकगीतों का यदि संग्रह किया जाय, तो साहित्य

---

1. Sten Konow—Korkū (Journal of Royal Asiatic Society London 1904 Page 423.)
2. T. Burrow—Sanskrit, Page 376.
3. R. N. Crest—Korkū (Journal of Royal Asiatic Society London —1884 Page 164.)
4. R. N. Crest—Sketch of the Modern Indian Languages of East Indies (Journal of Royal Asiatic Society London —1878.)

एवं भाषा-विज्ञान दोनों ही दृष्टियों से हितकर होगा। यहाँ पर दो लोकगीत दिये जा रहे हैं, जो आदिवासी प्राथमिकशाला धार्णी (अमरावती) के प्रधान पाठक श्री अर्जुन जाड़े पटेलजी के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं। आप अमरावती के भेलघाट तहसील के निवासी हैं और आपकी मातृभाषा कोरकू है।]

१ होरिया रा सिरिज

(होली का गाना—इस प्रकार के गाने होली के समय में गाये जाते हैं। गाते समय गाने वालों के दो दल आमने सामने खड़े हो जाते हैं। उनके पास एक ढोल व एक लकड़ी होती है। लकड़ी के सिरे पर बैलों के गले में बांधने की घुंघरू बंधी रहती है। पहले एक दल गाना प्रारम्भ करता है, फिर दूसरे दल वाले उसे दुहराते हैं तथा लकड़ी को गाने के ढोके के साथ जमीन पर पटकते हैं वे ढोल बजाते हुए धीरे धीरे सरकते जाते हैं। इस प्रकार यह रात्रि भर गाते हुए जागरन करते हैं।)

मूल गीत नागरी लिपि में

भिवला खे मन-जा पेट-ला, भिवला खे मनाये ।।टेक।।
पेट-ला चुदिरि खिचिड़ा पुजा, घूंयुर घुयुर मांडिये।
लंबा-जा ससन सोट जा गोडाल, कुचुव कुचुब लो जाये ।।टेक।।
कुचुबा कुचुबा लो चा-ये जा, असिड-पसिड पुजाये ।।
गुगुरा सिंदुर टिका टोला, भिवला-खे पुजाये ।।टेक।।
चवनी चिनी चिनी घेंघा, भिवला खे पुजाये।
इनिजा गवा रई नि डुकी, भिवा अँगेना सयारे ।।टेक।।
रइ डो सुवरा मेंढा बकरा, भिवला-खे पुजाये ।।टेक।।

अनुवाद—हे पटेल ? भिवला को मनाओ। पटेल और चौधरी खिचड़ी की पूजा[1] करने के लिए धीरे धीरे आपस में बातचीत करते हैं। लंबी हल्दी को छोटे से लोढ़े से कुचलते हैं। हल्दी अच्छी तरह कुचल कर उसे इधर उधर छिटकते हैं। भिवला को[2] गुगल, सेंदुर, टीका आदि से पूजते हैं। सेर भर चिनी (एक जाति की घास का

---

१. खिचड़ी की पूजा—भिवला देव की पूजा के लिए चीनी (एक प्रकार की घास का बीज) की खिचड़ी पूजी जाती है। यह प्रथा अब प्रचलित नहीं है, उसका केवल उल्लेख भर रह गया है। अब प्रायः चावल, दाल, पूरी तथा सेंदूर, गूगल, कुकू, मिस्सी आदि से पूजन किया जाता है।

२. भिवला—होली के समय इस नाम के अलग देव होली के ठीक विपरीत दिशा में खड़ा किया जाता है। साधारणतया टेंबरू नाम की एक झाड़ की एक डाली को उस वृक्ष के पास अक्षत (हल्दी, कुकू, चावल) छोड़कर, ले आते हैं। और उसे गाढ़ देते हैं।

बीज) की खिचड़ी से भिवला को पूजते हैं। चिनी की खिचड़ी के साथ गठालू[3] का साग भी पूजा की सामग्री में होता है। गांव की बीमारी, खाँसी, सरदी, जुकाम आदि भिव अपने यहां ले जाय, उसके लिए प्रार्थना करते हैं। बड़ा सा सूअर और मेंढ़ा बकरा फिर भिवला को बलि स्वरूप दिया जावेगा। होली सब गांव वाले मिलकर गांव के बाहर मैदान में शाम के ५ बजे के लगभग जलाते है। दूसरे दिन सुबह प्रातः ५ बजे भिवला को जला देते हैं। होली और भिवला की पूजा उसके पहले दिन रात्रि को ८-९ बजे तक कर लेते हैं। होली से पंचमी तक इस प्रकार के गाने गाये जाते हैं। यह भिवला पांडवों के भीम से बिल्कुल भिन्न हैं। सम्भवतः इनका कुछ सम्बन्ध दैत्यराज रावण के वंश से हो। कुछ लोक गीतों के भान से ऐसा प्रतीत होता है, कि होली और भिवला भाई बहिन हों।

२. गोंगोल्या[4] सिरिंज

टोनै मजा देवता खे, रजा बई मनिले ।।
गोंगोल्ला रें र रंगी, नाचे बई कनियां ।। टेक ।
घेरती मजा अस-मान रवे, रजा बई मानि ले ।।
गोंगोल्या रे र रंगी नाचे बई कनिया ।। टेक ।
चाँदे मजा सुरू जो रवे, रजा बई मनिले ।
गोंगोल्या रे र रंगी नाचे, बई कनिया ।। टेक ।।
भिव म-जा अर्जुन-खे, रजा बई मनिले ।
गोंगोल्या रे र रंगी, नचे नई कनिया ।। टेक ।।
जाड़-म जा जोध खे, रजा बई मनिले ।
गोंगोल्ला रे र रंगी, नचें बई मनिले । टेक ।
खिला म-जा मुढुवा रचे, रजा बई मनिले ।।
गोंगोल्या रे र रंगी; नचे बई कनिया ।। टेक ।

---

३. गठालू का साग—एक प्रकार की कंद है। यह दो प्रकार की होती है—घरेलू और जंगली। जंगली गठालू बहुत कड़वी होती है और घरेलू कड़वी नहीं होती है। वर्षा के प्रारम्भ में इसकी एक गांठ को जमीन में गाड़ देते हैं। कुछ दिनों बाद यह बेल का एक रूप धारण कर लेती है। जमीन के अन्दर जड़ों के पास कंद के समान गांठें लगती हैं और फूलने पर ऊपर भी गाँठ के रूप में फल लगते हैं। इसका साग भी बनता है।

४. यह एक नाच व गाने का नाम है, जो होली की पंचमी से आरम्भ होता है और ज्येष्ठ की अमावस्या तक चलता है। नाच और गाने प्रायः रात्रि में १०-१२ आदमियों के टोल द्वारा होते हैं। नाचने वाले गोलाकार खड़े हो जाते हैं और घूम घूम कर नाचते व गाते रहते हैं।

कुंडा म जा रान-रबे, रजा बई मनिले ।।
गोंगोल्या रे र रंगी; नचे बई कनिया ।। टेक ।

हिन्दी अनुवाद--

हे राजन् ! गोंगोल्या खेलने के लिए किस देवता को मनाना चाहिए ! हे राजन् ! अपने कन्हैया जी के साथ गोंगोल्या खेलेंगे ! हे राजन् ! अपनी धरती और आसमान, चाँद और सूरज; भीम और अर्जुन; जाड़ और जोधा, खेड़ा और महुवा तथा कुंडा और राना[५] को मनाकर कन्हैया जी के साथ गोंगोल्या खेलेंगे ।

---

५. ये इस जाति के किसी समय वीर पुरुष रहे होंगे, जिनकी बाद में देवों में गणना होने लगी । इनमें से खेड़ा और मुढुवा नाम की पत्थर की मूर्तियाँ प्रत्येक गाँव में प्राय: मध्य में स्थित हैं । समय समय पर इनकी पूजा भी की जाती है । ये गाँव के मालिक समझे जाते हैं । जाड़ और जोधा तथा कुंडा और राना का उल्लेख केवल लोक गीतों में ही है, इनकी कोई मूर्ति विशेष प्राप्त नहीं होती है ।

[श्री कैलाशचन्द्र भाटिया]

टिप्पणी--८

काव्य रूढ़ियों का अनुपम संग्रह-ग्रन्थ—काव्यकल्पलतावृत्ति

संस्कृत काव्य-शास्त्र के इतिहास में कवि-शिक्षा-विषयक ग्रन्थों की एक अलग परम्परा है। दशम शताब्दी के कविराज राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' इनमें सर्वाधिक ख्याति प्राप्त ग्रंथ है। काश्मीर के राजा अनन्तदेव की सभा में वर्तमान महाकवि क्षेमेन्द्र का 'कविकण्ठाभरण', बारहवीं शताब्दी के जयसिंह सिद्धराज के समय में रचित जयमङ्गल की 'कविशिक्षा', हलायुध का 'कविरहस्य', तेरहवीं शती की अमरचन्द्र यति की 'कव्यकल्पलतावृत्ति' और देवेश्वर की 'कवि कल्पलता' इस परम्परा के अन्य ग्रंथ हैं। प्राय: इन सब ग्रंथों में कविता-निर्माण के उपयुक्त साधनों को एकत्रित करने का प्रयास हुआ है, पर 'काव्यकल्पलतावृत्ति' ही इस दृष्टि से अकेला ऐसा ग्रंथ है जिसमें एतद्विषयक उपयोगी सामग्री ग्रन्थकर्त्ताओं ने प्रभूत मात्रा में जुटाई है। देवेश्वर की 'कवि कल्पलता' इस ग्रन्थ का अनुकरण मात्र है। 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में अरिसिंह के सूत्र तथा अमरचन्द्र यति की वृत्ति एक साथ मिलती है। अमरचन्द्र ने वृत्ति में समग्र काव्य-साहित्य के मन्थन से प्राप्त अनेक काव्य रूढ़ियों का अद्भुत संग्रह प्रस्तुत कर दिया है। अरिसिंह और अमरचन्द्र दोनों ही धोल्काराणा वीरधवल तथा बीसलदेव के जैन मन्त्री वस्तुपाल (१२४२ ई०) के समकालीन थे।[1] सूत्रकार अरिसिंह श्वेताम्बर जैन संप्रदायी थे। 'प्रबंधकोश' के रचयिता जैन कवि राजशेखर के मत से वृत्तिकार अमरचन्द्र अरिसिंह के शिष्य या सहाध्यायी थे।

यद्यपि 'काव्यकल्पलतावृत्ति' का उद्देश्य काव्य-रूढ़ियों का संग्रह करना नहीं है पर कविता बनाने के लिए उपयोगी सामग्री तथा नियमों का निर्देश करते हुए साहित्य में प्रचलित काव्य-रूढ़ियों का संग्रह यहाँ अनिवार्यत: हो गया है। वे रूढ़ियाँ ग्रन्थ के विभिन्न प्रसंगों में अनुषङ्गिक रूप से उल्लिखित हैं। प्रस्तुत निबन्ध में हम इन रूढ़ियों का आकलन करके उन्हें एक साथ उपस्थित करने का प्रयत्न करेंगे। वृत्ति में उपलब्ध रूढ़ियों का संग्रह इतना प्रचुर और सर्वाङ्गीण है कि यह ग्रन्थ काव्य-रूढ़ियों का एक कोष सा प्रतीत होता है। संस्कृत-साहित्य की ये चिराचरित रूढ़ियाँ हिन्दी साहित्य पर भी अपना अक्षुण्ण प्रभाव छोड़ गई हैं और इसलिये इन रूढ़ियों का आकलन हमारे साहित्य के परम्परा-प्राप्त वैभव को निरखने-परखने के लिए बहुत उपयोगी है।

1. S. K. De: Sanskrit Poetics Vol. I

सुविधा के लिए इन रूढ़ियों को हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं।

१. उपमान २. संख्या ३. आकार ४. वर्ण ५. वर्ण्य विषय ६. सदृश वस्तु संग्रह ७. विरोध ८. आनुकूल्य ९. आधार १०. आधेय ११. कवि समय १२. श्रेष्ठ पदार्थ १३. वाद १४. पुराण १५. शैलीगत रूढ़ियाँ १६. अन्य।

इनमें से तीन या चार शीर्षकों को छोड़कर शेष वृत्तिकार द्वारा ही दिये गये हैं। प्रस्तुत निबंध में प्रथम तीन का उल्लेख हम करेंगे। शेष का विवरण अन्य निबंध में देंगे।

सर्व प्रथम हम उपमान संबंधी रूढ़ियों को ही देखें। संस्कृत साहित्य में अनवरत व्यवहार के कारण ये उपमान अपनी उपमेय वस्तुओं के साथ अविच्छेद्य रूप से जुड़ गए थे। वृत्ति में अनेक रूढ़ उपमान इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। नीचे इनका आकलन किया जाता है :—

उपमेय	उपमान	पृष्ठ[1]
वक्त्र (स्त्री)	इन्दु	४७, १०५, १०६
पाद	पङ्कज	४७
कबरी	अलि	४७
तनु	कर्णिकार	४७
उरोज	कुम्भि-कुम्भ	४७
भ्रूलता	काम कोदण्ड दण्ड	४७
लोचन	हरिण	१०५
उपकण्ठ	सहस्रपत्र	१०६
वक्षोज	रथाङ्गमिथुन	१०६

इसके उपरान्त पृष्ठ १०६ से १०७ तक उपमा वाचक उपमानों और धर्मों का संग्रह दिया गया है। इन दो पृष्ठों में रूढ़ उपमानों की ढेर सारी सामग्री एकत्रित है। यह इस प्रकार है :—

उपमेय	उपमान
राजा (आदि शब्द भी जुड़ा है)	शिव, ब्रह्मा, विष्णु, शेष, सुरेश्वर, सूर्य, इन्दु, जलद, उदन्वत्, अग्नि, सिंह, अद्रि, हस्ति, भू, भूरुह नभ, अम्भोज, मराल, गरुड, अनिल, पुर, आरण्य, सर (ये मुख्य हैं, ऐसे ही अन्य उपमानों की कल्पना की जा सकती है।)
वेणी	सर्प, असि, भृङ्गालि
केशपाश	चामर, नीलकण्ठ कलाप

१. ये पृष्ठ चौखम्बा पुस्तकालय की काशी संस्कृत सीरीज (९०) के १९३१ के संस्करण के हैं।

उपमेय	उपमान
धम्मिल्ल	विधुन्तुद्
सीमन्त	अध्व, दण्ड
ललाट	अष्टमी का विधु, फलक
कपोल	चन्द्रमा, मुकुरस्थल
भ्रू	खड्ग, धनु, यष्टि, रेखा, पल्लव, वल्ली
दृश्	चकोर, हरिण, मदिरा, खञ्जन, अम्बुज, नीलोत्पल कुमुद
श्रुति	दोला, पाशक
नासा	वंश, अधोमुख तूणीर, शुक चञ्चु, तिलप्रसन, दण्ड
अधर	नव पल्लव, बिम्बाफल, प्रवाल
दन्त	मौक्तिकावलि, कुन्द, दाडिम बीज, हीरक
स्मित	ज्योत्स्ना, दुग्ध, पीयूष
श्वास	अम्भोज-सौरभ
जिह्वा	अञ्चल, दोला
वाणी	भृङ्गी और पिकी के रव, सुधा, मधु
वक्त्र	शशि, पङ्कज, दर्पण
कण्ठ	कम्बु
अंस	दो कुम्भ
बाहु	वल्लरी, मृणाल लहरी, शाखा
पाणि और पद	पल्लव, अम्बुज
अंगुली	पल्लव
नख-पद्धति	रत्न, तारा, प्रसून
स्तन	दो स्तबक, दो घट, कुम्भ कुम्भिद्वय, गिरिद्वय, चक्रवाक् मिथुन,
मध्यभाग	वेदिका, सिंह, शक्ति
रोमाली	रेखा, मृणाल, वल्ली
नाभि	अम्भोज, आवर्त्त, ह्रद, विवर, कूपक
त्रिवली	वीचि, सोपान, निश्रेणि
जघन	पुलिन, पीठ, फलक
नितम्ब	स्थल
ऊरु	कदलिका-स्तम्भ, इभ-करद्वय, करभ
जङ्घा-युगल	स्तम्भ
गति	हंस, मतङ्गज

(ये तथा अन्य यथोचित उपमान स्त्रियों के लिए जुटाये जा सकते हैं।)

पुरुषों के अङ्गों के विशेष उपमान

उपमेय	उपमान
स्कन्ध	वृष
बाहु	अहीश्वर, हस्तिहस्त, पवि, स्तम्भ, अर्गला, दण्ड

कुछ अन्य विकीर्ण उपमान निम्नलिखित हैं :—

उपमेय	उपमान	पृष्ठ
नवराग	पल्लव	१०६
कटाक्ष	षट्पद	१०६
स्मित हास	पुष्प	१०६
नारी नख*	तारा	१२६
चन्द्र	यश	
वेणी*	सर्प	
तारे	मुक्ता	
अधर	प्रवाल	१३१
अङ्ग-सौकुमार्य	शिरीष-कुसुम	१३१
मणि आँगन में प्रतिबिम्बित शशाङ्क	कैरव	१३६
लावण्य	अमृत-द्रव	१३७
निस्त्रिंश	कल्पलता	

स्थैर्य, गांभीर्य, लावण्य, भीरुत्व आदि भावों के स्थिर उपमानों का संग्रह वृत्ति में 'आधार' शीर्षक से मिलता है ।

(२) संख्या

काव्य की एक बहुप्रचलित रूढ़ि संख्या-विषयक है । संख्याओं का निर्देश करने के लिए कवि लोग उस संख्या का उल्लेख न करके उस संख्या का द्योतन करने वाली वस्तुओं का उल्लेख करते हैं और संख्याओं का क्रम उलट देते हैं । इस काव्य-पद्धति का अनुसरण करने के लिये किन-किन संख्याओं का उल्लेख करने के लिये किन-किन वस्तुओं का निर्देश करना चाहिये, इसकी तालिका वृत्तिकार[1] ने दी है । यह इस प्रकार है ।

संख्या	पदार्थ
एक	आदित्य, मेरु, चन्द्र, प्रासाद, दीपदण्ड, कलश, खड्ग, हरनेत्र, शेष, स्वर्दण्ड, अङ्गुष्ठ, हस्तिकर, नासा, वंश, विनायक-दन्त, पताका, मन, शक्राश्व, अद्वैतवाद
दो	भुज, दृष्टि, कर्ण, पाद, स्तन, सन्ध्या, राम-लक्ष्मण, शृङ्ग, गजदन्त, प्रीति-रति, गङ्गा-गौरी, विनायक-स्कन्द, पक्ष, नदीतट, रथ-धुरी, खड्ग-धारा, भरत-शत्रुघ्न, राम-सुत, रवि-चन्द्र

*ऊपर भी आ चुके हैं ।

१. काव्य कल्पलता वृत्ति—पृष्ठ १४४ से १४८ और पृष्ठ ६७

संख्या	पदार्थ
तीन	भुवन, वलि, वह्नि, विद्या, सन्ध्या, गज-जाति, शंभुनेत्र, त्रिशिरा, मौलि, दशा, क्षेत्रपाल-फण, काल, मुनि, दण्ड, त्रिफला, त्रिशूल, पुरुष, पलाश-दल, कालिदास-काव्य, वेद, अवस्था, कम्बु-ग्रीवा-रेखा, त्रिकूट-कूट, त्रिपुर, त्रियामा यामा, यज्ञोपवीतसूत्र, प्रदक्षिणा, गुप्ति, शल्य, मुद्रा, प्रणाम, शिव, भवमार्ग, शुभेतर
चार	ब्रह्मा के मुख, वेद, वर्ण, हरि-भुज, सुर-गज-रद, चतुरिका स्तम्भ, संघ, समुद्र, आश्रम, गो-स्तन, आश्रम कषाय, दिशाएं, गज जाति, याम, सेना के अङ्ग, दण्ड, हस्त, दशरथ पुत्र, उपाध्याय, ध्यान, कथा, अभिनय, रीति, गो-चरण, माल्य, ङ्गकरालि, संज्ञा, असुर भेद, योजनक्रोश, लोकपाल
पाँच	स्मर, बाण, पाण्डव, इन्द्रिय, कराङ्गुलि, शम्भुमुख, महायज्ञ, विषय, व्याकरणाङ्ग, व्रत वह्नि, पार्श्व, फणि फण, परमेष्ठि महाकाव्य, स्थानक, तनु-वात, मृगशिर, तारा, पञ्चकुल, महाभूत, प्रणाम, पञ्चोत्तर, विमान, महाव्रत, मरुत्, शस्त्र, श्रम
छः	रस, राग, व्रज-कोण, त्रिशिरा के नेत्र, गुण, तर्क, दर्शन, गुहमुख,
सात	विवाह, पाताल, शक्रवाह मुख, दुर्गति, समुद्र, भय, सप्तपर्ण-पर्ण
आठ	दिशा, देश, कुम्भिपाल, कुल, पर्वत, शम्भु-मूर्ति, वसु, योगाङ्ग, व्याकरण, ब्रह्म, श्रुति, अहिकुल
नौ	सुधा-कुण्ड, जैन पद्म, रस, व्याघ्री स्तन, गुप्ति, अधिग्रह
दश	रावण-मुख, अंगुली, यति-धर्म, शम्भु, कर्ण, दिशाएं, अङ्ग द्वार, अवस्था-दश
संख्या	पदार्थ
ग्यारह	रुद्र, अस्त्र, नेत्र, जिनमतोक्त अङ्ग, उपाङ्ग, ध्रुव, जिनोपासक प्रतिमा
बारह	गुह के नेत्र, राशियाँ, मास, संक्रान्तियाँ, आदित्य, चक्र, राजा, चक्रि, सभासद
तेरह	प्रथम जिन, विश्वेदेव
चौदह	विद्या-स्थान, स्वर, भुवन, रत्न, पुरुष, स्वप्न, जीवाजीवोपकरण, गुण, मार्ग, रज्जु, सूत्र, कुल, कर, पिण्ड, प्रकृति, स्त्रोतस्विनी
पन्द्रह	परम धार्मिक तिथियाँ, चन्द्रकलाएं
सोलह	शशिकला, विद्या देवियाँ

सत्रह	संयम
अट्ठारह	विधायें, पुराण, द्वीप, स्मृतियाँ
उन्नीस	ज्ञाताध्ययन
बीस	करशाखा, सकल-जन-नख और अंगुलियाँ, रावण के नेत्र और भुजाएं
शत	कमल दल, रावणाङ्गुलि, शतमख, जलधि-योजन, शतपत्र-पत्र, आदिम जिन-सुत, धृतराष्ट्र के पुत्र, जयमाला, मणि हार, स्रज, कीचक
सहस्र	अहिपति मुख, गङ्गामुख, पङ्कजदल, रवि-कर, इन्द्र-नेत्र, विश्वामित्राश्रम वर्ग, अर्जुन-भुज, सामवेद की शाखायें, पुण्य-नर-दृष्ट-चन्द्र

(३) आकार

संस्कृत साहित्य में ऐसी अनेक उपमाएँ प्राप्त होती हैं जिनमें दो वस्तुओं के आकार-मात्र में साधर्म्य मिलता है। माघ ने पर्वत के दोनों ओर दिखाई देने वाले सूर्य और चन्द्रमा के बिम्बों की उपमा हाथी के दोनों ओर लटकते हुये घण्टों से दी है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ऐसी उपमाओं की बड़ी भर्त्सना की है। पर संस्कृत साहित्य में इस परम्परा का प्रचलन था और इस प्रकार से दो बिल्कुल भिन्न पदार्थों को एक साथ रखकर अर्थ-चमत्कार उत्पन्न करने की रूढ़ि काव्य में प्रचलित थी। जैसे वृत्तिकार कहता है[1] कि 'पुस्तक' वर्ण्य है उसकी उपमान है 'मञ्जूषा' (आकार साम्य के कारण), वह भी रत्नों का स्थान है, अतः कहेंगे काव्य-रस-धारिणी पुस्तक मञ्जूषा के समान है। इस प्रकार की अर्थोत्पत्ति के लिए काव्य में जिन समान आकार के पदार्थों का एक साथ वर्णन हो सकता है उनकी तालिका वृत्ति में मिलती है।[2] यह इस प्रकार है :—

चतुरस्त्र आकार के पदार्थ—

व्यजन, कुम्भिका, पताकिका, चातुरी, मञ्चिका, सिंहासन, पार्थिवमण्डल

प्रलम्ब चतुरस् पदार्थ—

खट्वा, स्थण्डिल, तूलिका, कपाट पट्टिका, पेटापट्ट, प्रालक, पुस्तक, इष्टका, तिलक, केतु, पट, प्रसारित पाणि, प्रशस्ति पट्टिका, शय्या, पट्ट, शकट, मञ्चक, गवाक्ष, सार-फलक, कट-द्वार-पट

वृत्त पदार्थ—

मुख, पद्म, इन्दु, दर्पण, कपोल, कुण्डल, ताल, सूर्य, भाजन, झल्लरी, कमठ, पुण्ड्र, स्फुरा, छत्र, व्यजन-चालिनी, मृदङ्ग-पुट, पूपक, घरट्ट मण्डक, कन्दु, आलवाल,

---

१. पृष्ठ १२४
२. पृष्ठ १२३ से १२८

सर, मही, द्वीप, शराव, कंसाल, कटिश्रवण, कौशिक, कुलाल, रथ और कृष्ण के चक्र, शाणीयन्त्र, तुला, वेला, कैवर्त-जाल, आवर्त, अरघट्टक

गम्भीर-मध्य-वृत्त पदार्थ—

नाभि, स्थाली, गुहा, नद, कुण्ड, वापी, श्रुति, कूप, मुख गर्भ, कचोलक, कमण्डलु, घट, ग्रीवा, चक्र, नाभि, उलूखल, कराह, मणिक, कुण्डी, कम्बु, कुतप, पङ्कज, चषक, कुम्भ, भृङ्गार, श्री भाजन, हारका, सेनिका, पल्ली, करण्ड, धूपवर्तक, कपाल, खर्पर, तुम्ब, समुद्ग, करका, दृति, घण्टा, शिरस्क, सुमन, भेरिका, हल, नाल, प्रणाल, नलिका, शरधि, धमनी, घटी, गर्तापिधान, चङ्गेरी, कुम्पिका, आलोकन, अलि, तिल, इक्षु-पेपुकृत् यंत्र, पालक, द्यूत गर्तिका।

पिण्डिताकृति वृत्त पदार्थ—

गोल, स्तबक, कन्दुक, कन्द, इभ कुम्भ, धम्मिल्ल, नितम्ब, स्तन, मौलि, दूष्य, घण्टिका, मुष्टि, अंस, करोटि, ककुद्, अण्ड, राहु, अक्षणपिण्डोध, कपि, शीर्ष, घटा, फल, गुल्म, फाल, वयः सार, रथाङ्ग, हंस, मोदक, कलश, तुम्ब, कमण्डलु, समुद्गक, नारङ्ग, चूत, करुण, बिल्व, जम्बीर, दाडिम, बीज, पूरी, नारिकेल, फलावली

गर्भ-प्रकाश-वृत्त पदार्थ -

घटी, मुकुट, कण्टिका, ताडपत्रक, कटक अङ्गद, कङ्कण, ऊर्मिका, हस्त-सूत्र, नूपर. दृक्, ऋक्ष, पुष्प, स्रक, मेखला, हार, रुण्डमाला, कपर्दक, कट्या, स्रजगुण, मौञ्जी, जप-घर्घर-मालिका, परिवेष, कुण्डलना, प्राकार, परिखा, कर्णपाश, बाहुपाश, पालि, बाह्यालि, वागुर, घट, कण्ठ, कृष्ट चाप, चष, आल, व्योम-मण्डल, दिव्यार्थ-मण्डल, श्रोणी कुण्डली, भूत कुण्डली, पर्यस्तिका, योगपट्ट, वल्गा, उपवती रश्मि

सूक्ष्मश्वेत वृत्त पदार्थ—मुक्ता, आमलक, तारक, दाडिम फल के बीज, दन्त, बिन्दु, वराटक, करट, अक्षि, पयोबिन्दु, बुद्बुद्, स्वेद बिन्दु, प्रसून, पिटक, पीलु-फल, जातीफल, कण।

सूक्ष्मरक्त वृत्त पदार्थ—

नख, रत्न, इभ-बिन्दु, गुञ्जा, इन्द्रगोप, खद्योत् स्फुलिङ्ग, क्रुद्ध लोचन, पूग, शोण अश्म, बन्धूक, बदरी और वट के फल

सूक्ष्मश्याम वृत्त पदार्थ—

जम्बू, भृङ्ग, कनीनिका, चूचुक, साञ्जनाश्रु, इन्द्रनील, गुञ्जा,

त्रिकोण पदार्थ—

दम्भोलि (इन्द्र का वज्र), शूल, शान, दृश, हल, सन्ध्यक्षराद्य, शृङ्गाट (सिंघाड़ा) कामाक्षी, वन्हि-मण्डल, करपत्र, निरङ्ग, अद्रितल, श्रोणिस्थ पाणि, क्षुरप्र, शृङ्ग, गोक्षुर, रोहिणी, शंकर।

दीर्घ पदार्थ—

वेणी, सीमन्त, नासिका, बाहुयें, अङ्गुलि, रोमाली, पृष्ठ, वंश, उरु, जंघा. अन्त्र-नलिका, शिरा, मौर्वी, धनु, शर, प्रास, कृपाण, लकट, अर्गला, आषाढ़, मुशल,

आरित्र, यष्टि, मन्थानक, ध्वजा, स्तम्भ, स्तूप, कूप, यशस्तम्भ, इन्द्रध्वज, अर्हत, पुरोध्वज, स्वर्दण्ड, छत्र दण्ड. ऊर्मि, निर्भीक, अश्व, अहि, निम्नुगा, मृणाल, हार, शेष, स्रज, जटा, वल्ली, द्रुम, इक्षु, कुशी, प्राजनक, बाहुयुग, वेत्र, कश, झष, हस्ति हस्त, रद, पुच्छ, नाडी, शृखला, कीलक, दाम, करभ, नकुल, जलूक, एर्वारु, कूष्माण्ड, मृदङ्ग, वायुमण्डल, वर्तन, लेखनी, काष्ठ-करण नखभेदिनी, केतकी-दल, मञ्जरी, नाराच, अर्क रश्मि, इन्दुरश्मि

वक्र पदार्थ —

अलक, भाल, भ्रू, नख, अङ्क, अङ्घ्रि, ललाटिका, कटाक्ष, इन्द्रधनु, विद्युत, अर्ध-चन्द्र, हल, अङ्कुश, कुञ्चि, मित्राङ्गुलि, तल्प, कन्दुक-दण्डक, तडाग, पालि, कुद्दाल, तोरण, सुखासन, रथ, वंश, शाकच्छदक, खेटक, चन्दन, बालेन्दु, किंशुक, इभा-ङ्गुलि, रद, शवपुच्छ, अश्वमुख, शृङ्ग, चञ्चु, वृश्चिक-कण्टक, करिदंष्ट्रा, मयुग्रीवा, सिंह-नख, कुक्कुट-नख, केसर, चन्द्रक, लग्न-कङ्कण, फणी साँप का फन, पुरोधःकर, कौपीन, केकि-मंजरी, कुक्कुट मञ्जरी

उच्च पदार्थ—

भद्रासन, वप्र, प्रासाद, अट्टालकालय, सज्जनों के मनोरथ, हस्ति, हस्तिशाल

अन्य शीर्षकों के अन्तर्गत आने वाले विषयों का विस्तार भी बहुत है। अतः उसका निर्देश दूसरे निबन्ध में ही उचित होगा। वास्तव में 'वृत्ति' इन रूढ़ियों का एक कोश ग्रन्थ ही है।

[श्री रमेश चन्द्र दुबे]

शुभ-कामना

[आदरणीय डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा भाषा-विज्ञान के अग्रगण्य आचार्य हैं। अपने देश के भाषा-विज्ञानियों में आपका श्रेष्ठ स्थान है। अनेक भाषाओं और बोलियों का आपने अध्ययन किया है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में आपके अनुसंधानों का असाधारण महत्त्व है। इस समय आप भारत सरकार के शिक्षा-मन्त्रणालय में हिन्दी के प्रधान विशेषज्ञ के पद पर काम कर रहे हैं और आपके ही निरीक्षण में विज्ञान-शासनादि से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावलियों का निर्माण हो रहा है।

यहाँ मैं उस पत्र को अविकल रूप से उद्धृत करना चाहता हूँ, जिसे आपने अभी हाल में हमारे पास भेजने की कृपा की है। इसे मैं अपने तथा अपने विद्यापीठ के लिए बहुत बड़े बल और प्रोत्साहन का आधार मानता हूं। आप जैसे विद्यावयोवृद्ध हितैषियों के आशीर्वाद पाकर हम अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं।

आपके इस पत्र में कई विचारपूर्ण सुझाव हैं, जो 'भारतीय साहित्य' के सुविज्ञ लेखकों, पाठकों तथा हम सबके लिए बहुत ही मूल्यवान और उपयोगी सिद्ध होंगे। आशा है, आप जैसे गुरुजनों के मार्ग-प्रदर्शन का लाभ बराबर हमें होता रहेगा।] ---संपादक

डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा

सुहृद्वर,

"भारतीय साहित्य" १९५७ की एक प्रति जो आपकी कृपा से शिक्षा मंत्रालय द्वारा मुझे उपलब्ध हुई थी, मेरे लिये एक उत्सव सिद्ध हुई है। पृष्ठ ८-१० में एक भारतीय भाषा का जो विशाल और सर्वाङ्गीण दृष्टिकोण आपने प्रतिपादन किया है, उसने मेरे हृदय में वह दूरगामी उमंगें, वह रसमयी तरंगें, और वह भविष्य की झांकियां उत्पन्न करदी हैं, जिनका वर्णन यहां असम्भव है। यदि अपनी संस्था के शैशव में ही आपने तमिल तैलगु और कन्नड़ का समावेश कर दिया, तो दस वर्ष के पश्चात् कौन-कौन से और साहित्य तथा विज्ञान हिन्दी के वास्तविक तत्त्व को समझने के लिये अनिवार्य हो जायेंगे, यह प्रश्न कल्पना में एक मस्ती सी पैदा कर देता है।

इस लेखसंचय में सब से महत्वपूर्ण उक्ति पृष्ठ १४ में कुलपति की है जो हिन्दी की "जिन्दगी और मौत" के प्रश्न को उठाती है। "यदि हमें हिन्दी को जीवित भाषा बनाना है तो उसमें शब्दों की पांडित्य-शैली के जो घाट बनाये हैं उसको तोड़ना चाहिए।" इस विचाराधारा का प्रबल समर्थन इसी ग्रंथ में एक और लेख "कृषक जीवन सम्बन्धी शब्दावली" पृष्ठ १६६ में इन शब्दों में हो गया है :—"हम अपनी भाषा और साहित्य को जन-जीवन से बहुत कुछ दूर ही दूर हटाते चले जा रहे हैं। यह दुःखद स्थिति है; यदि हमारी राष्ट्र-भाषा (हिन्दी) का सम्बन्ध जन-बोलियों से टूट जायगा, टो यह सदा के लिए निष्प्राण हो जायगी।" परन्तु तमाशे को बात तो यह है कि जनबोलियाँ तो दूर रहीं अपनी बोलचाल की हिन्दी से भी हमारी साहित्यिक हिन्दी प्रतिदिन दूर ही दूर जा रही है। श्री सुमित्रानन्दन पंत ने क्या खूब कहा है कि "यह अत्यन्त हास्यजनक तथा लज्जास्पद हेत्वाभास है कि हम सोचें एक स्वर में, प्रकट करें उसे दूसरे स्वर में, हमारे गद्य का कोष भिन्न पद्य का भिन्न हो" ("पल्लव" संवत् २००५, पृष्ठ ५), यह एक भयानक परिस्थिति है, जिसकी निवृत्ति के लिये एक विशाल योजना अत्यन्त आवश्यक है। इस परिस्थिति की व्यापकता के उदाहरण इसी ग्रन्थ से ही मिल सकते हैं, जैसे पृष्ठ ४ में "डायरी" के स्थान में "दैनंदिनी" शब्द इस समन्वयभंग का ज्वलन्त दृष्टान्त है।

पृष्ठ ११ में कुलपति के भाषण में संस्कृत के प्रभाव पर जोर दिया गया है, और यह बतलाया गया है कि श्री शंकराचार्य ने भारत में संस्कृत के द्वारा विचार और आचार

में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया।" परन्तु प्रश्न यह उपस्थित होता है कि शंकर से तीन सौ वर्ष के बाद भारत में जो समान भक्ति आदि आन्दोलन होते रहे क्या उनमें भी संस्कृत की प्रधानता थी ? भारतीय भाषाओं का इतिहास हमें बताता है कि संस्कृत का स्थान एक और व्यापक भाषा ले रही थी, जिस पर सविस्तार अनुसन्धान अपेक्षित है।

'आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त' यह लेख विचारगर्भित और परिश्रम मूलक है। परन्तु पृष्ठ १३८ में सहजावास्था का निरूपण बहुत स्थूल और अधिकतर बाह्य लक्षणों द्वारा किया गया है। सहजावस्था की स्वाभाविकता, उसकी अनायास आध्यात्मिकता, रसस्वरूपता, इत्यादि भावों का सविस्तर निरूपण आपेक्षित था। इसी सहजावस्था का प्रतिपादत कालिदास ने पार्वती की विद्या-प्राप्ति के सम्बन्ध में ऐसे किया है कि पार्वती को विद्याएँ इस प्रकार स्वभाव से ही उपलब्ध हो गई जैसे शरदऋतु में हंस स्वयमेव गंगा में आ जाते हैं (कुमारसंभव १-३०)

"अंगरेजी 'ट' और 'ड' तथा हिन्दी में उसके विभिन्न स्वरूप" यह लेख व्यापकता और बहुपक्षता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें अनेक यूरोपीय तथा भारतीय भाषाओं की सामग्री केवल दो ध्वनियों पर जो बतालायी गयी है, वह बहुत गम्भीर अध्ययन की द्योतक है : परन्तु खेद है कि पृष्ठ ७३ में एक भयानक भ्रांति हो गयी है। अंग्रेज़ी बर्स्व (alveolar) (हैदराबाद विश्वविद्यालय ने अनेक वर्ष हुए इस ध्वनि की संज्ञा "दांत बठकी" निश्चित की थी) के सम्बन्ध में लिखा गया है "हिन्दी में इस ध्वनि का पूर्णतः अभाव है," हमारे यहाँ दिल्ली के भाषाशास्त्र मंडल (Linguistic circle) की तीन बैठकों में बहुत से संमदों के अनुभवों के आधार पर यह स्थिर हो गया है कि यद्यपि मुख्यस्वन (phoneme) के रूप में अंग्रेज़ी ट ड हिन्दी में नहीं है, तथापि संस्वन में (allophone) के रूप में यह निस्सन्देह हिन्दी में वर्तमान है। उदाहरणार्थ यद्यपि "टक्कर, डाक", इन में "ट" और "ड" मूर्धन्य है, तथापि निम्नलिखित शब्दों में ट, ड, दान्तबैठकी (बर्स्व) ही है : -

"मटका, पटका, लटका, खड्ड में, काट कर, इन शब्दों में 'ट' 'ड' के उच्चारण में जिह्वाग्र कुंडलित होकर पीछे को नहीं जाता, परन्तु 'दान्त बैठक' की ओर ही जाता हैं।

इस उदाहरण से अनुसन्धान के प्रकार पर भी बहुत कुछ प्रकाश मिलता है। भौतिक विज्ञान में तो अब यह महामन्त्र हो गया है कि अनुसन्धान का कोई भी कार्य एक व्यक्ति पर छोड़ना नहीं चाहिये। प्रत्येक अनुसन्धान क्रिया एक टीम या मंडली के हाथ में सौंपना अनिवार्य है। आशा है कि साहित्य और भाषाओं में भी अनुसन्धान विधियों में एक महाक्रान्ति किसी न किसी दिन अवश्य होगी।

जहाँ अनुसन्धान विधियों में क्रांति की अपेक्षा है, वहाँ अनुसन्धान क्षेत्रों में भी एक नये युग की कल्पना अपेक्षित है। उदाहरणार्थ यद्यपि हिन्दी में मौलिक दार्शनिक ग्रन्थों का अभाव है, बरसों से साधुओं के साथ सत्संग से मुझे निश्चय है कि स्थान-स्थान

में आपको अनेक हिन्दी भाषी साधु ऐसे मिलेंगे लो शताब्दियों की परम्परा से भारतीय दर्शन को नई धाराओं में ले आये हैं। इनके सिद्धान्त कोल्हू के बैल के समान केवल प्राचीन शास्त्रों की व्याख्या नहीं, बल्कि नये प्रवाहों को जतलाते हैं। हमें प्रत्याशा हो सकती है कि किसी दिन इन अभिनव सिद्धान्तों का संकलन करने के लिये अनुसंधान-मंडलियाँ संगठित की जा सकेंगी।

मुझे निश्चय है कि आप जैसे भावुक के संचालन में हिन्दी अनुसन्धान एक नया मार्ग निकाल लेगा, और हिन्दी साहित्य किसी दिन एक स्वतन्त्र स्रोत बन जाएगा।

इस 'भारतीय साहित्य' ने मुझ पर यह उपकार किया है कि इसने मुझे एक अनोखा कल्पना-रस प्रदान किया है।

श्री डाक्टर विश्वनाथ प्रसाद
संचालक
हिन्दी विद्यापीठ,
आगरा।

भवदीय,
सिद्धेश्वर वर्मा

भाषातत्त्व-मण्डल आगरा

जनवरी १९५७ में भाषातत्त्व-मण्डल की स्थापना की गई। डॉ० विश्वनाथ प्रसाद संचालक, हिन्दी विद्यापीठ मंडल के अध्यक्ष तथा प्रो० गोलोक बिहारी धळ, सहायक प्रोफेसर, भाषातत्व मंडल के मंत्री-पद के लिए निर्वाचित हुए। मंडल की स्थापना का मुख्य उद्देश्य भारत में भाषातत्त्व का विज्ञान के रूप में प्रचार तथा भाषातत्त्व-विदों को उनकी समस्याओं पर विचार विवेचन करके सहायता प्रदान करना है।

मंडल का उद्‌घाटन २३ फरवरी १९५७ को लिंग्युस्टिक सोसायटी ऑव इंडिया के अध्यक्ष डा० बाबूराम सक्सेना ने किया। सभापति थे डा० विश्वनाथ प्रसाद। डा० सक्सेना का उद्‌घाटन भाषण अगले अंक में प्रकाशित किया जायगा। देश-विदेश के अनेक भाषा-विदों ने मंडल के लिए शुभकामनाएँ प्रकट करते हुए अपने संदेश भेजे। इसी अवसर पर एक भाषायी परेड हुई जिसमें एक अवतरण विभिन्न आठ भाषाओं में पढ़ा गया।

मंडल की प्रथम औपचारिक बैठक १५ अप्रैल १९५७ को हुई। इस अवसर पर एक अमेरिकन विद्वान डा० लेविस लेविन ने 'भाषा तथा संस्कृति' के पारस्परिक संबंध पर अपना सारगर्भित भाषण दिया। बैठक की समाप्ति डा० प्रसाद के रोचक एवं मनोरंजक साथ ही विद्वत्तापूर्ण अध्यक्षीय भाषण के साथ हुई। भाषण के मध्य आपने भाषा एवं संस्कृति के पारस्परिक सबंधों के अनेक उदाहरण भारतीय जन-जीवन एवं उसके साहित्य से दिये।

मंडल की द्वितीय बैठक २२ अप्रैल १९५७ को हुई। इस अवसर पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा, अध्यक्ष अँग्रेजी विभाग, बलवन्त राजपूत कॉलेज आगरा ने 'भाषा एवं सामाजिक संस्कृति' के पारस्परिक संबंध पर एक विद्वत्ता पूर्ण लेख पढ़ा जिसमें नवीन पद्धति पर विचार करने के लिए एक दिशा दिखाई गई। श्रोताओं ने निबंध की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

गोलोक बिहारी धळ
मन्त्री
भाषातत्व-मंडल, आगरा

२
त्त्व
था
ाएँ
कया
को
ायी
भी
ास
।''
गी,
ाप्त
ाओं
लिए
साह

[illegible] एक मण्डल की स्थापना हो रही है। मैं तुम्हारे प्रयत्नों की सराहना करता हुआ मंडल की सफलता के लिए हार्दिक इच्छा प्रकट करता हूँ।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

'यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप लोगों ने आगरा में भाषा-विज्ञान के अध्ययन का एक केन्द्र स्थापित किया है। मुझे विश्वास है, कि यह एक अत्यन्त उपयोगी कार्य कर सकेगा। अपने देश में भाषा-विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहित करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

भारतीय साहित्य

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ का मुख पत्र)

पत्रिका का उद्देश्य

"भारतीय भाषाओं तथा उनके साहित्यों के समन्वयन की दृष्टि से भाषाविज्ञान, साहित्य, लोक-वार्ता तथा विश्व साहित्य के अध्ययन को मौलिक शोध स्तर पर और तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करना ।"

सूचना

१. प्रति[illegible]

२. पत्रि[illegible] ...ौर मौलिक लेख[illegible]

३. पत्रि[illegible] ...पुस्तकों की विस्त[illegible] ...तो अवश्य ही ...ेष रूप से

...ानपरक

...भाषा